प्रयाग के प्राचीन स्थलों का संजाति इतिहास
(झूँसी क्षेत्र के विशेष र्भ में)

मानव विज्ञान में

डाक्टर ऑफ फिलासफी

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध
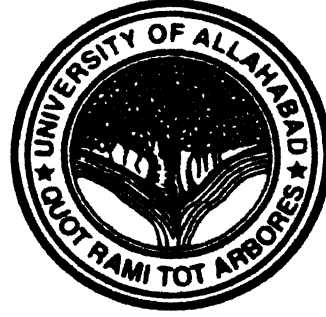
निर्देशक

डॉ० चन्द्र देव पाण्डेय

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्ता

विनय प्रकाश यादव

मानव विज्ञान विभाग

मानव विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

आभार

प्रस्तुत शोध प्रयाग के प्राचीन स्थलों का संजातीय इतिहास (झूँसी क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में) का विवरणमूलक अध्ययन है। प्रस्तुत अध्ययन प्रतिचयन के आधार पर आधारित नहीं है, तथापि हमने निम्न समुदायों को अपना अध्ययन केन्द्र बनाया - यथा निषाद, पण्डा, ब्राह्मण, श्रीवास्तव, यादव, बहेलिया, बिन्द, चमार, पासी, धोबी, मुसलमान आदि। प्रत्येक समुदाय के अध्ययन के स्थायी परिवारों के साथ सम्पर्क किया और अनुभवी लोगों से मिल कर इस क्षेत्र की ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त की।

शोध के विषय चयन निष्पादन में प्रो. ए.आर.एन. श्रीवास्तव विभागाध्यक्ष मानव विज्ञान विभाग तथा शोध निर्देशक डा. चन्द्रदेव पाण्डेय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा प्रेरणा ही मूल रही है। शोधकर्ता अपने शोध निर्देशक के मार्गदर्शन एवं शोध के प्रत्येक स्तर पर उनके द्वारा प्रदत्त ऐतिहासिक एवं मानववैज्ञानिक परिदृश्य के स्पष्टीकरण के लिए सदैव आभारी रहेगा।

शोधकर्ता सामाजिक मानव विज्ञान विभाग के डा0 विजय शंकर सहाय, डा0 शुभो रे एवं प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश यादव, प्रो0 वी.डी. मिश्र, डा0 जे.एन. पाल, डा0 डी. पी. दूबे, डा0 मानिक चन्द्र गुप्ता एवं विभाग के अन्य गुरुजनों का सदैव आभारी रहेगा।

शोधकर्ता मानव विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 ए.आर.एन. श्रीवास्तव के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है जिनके शिक्षण एवं प्रेरणा के अभाव में इस शोध कार्य को पूरा कर पाना दुरूह होता।

शोधकर्ता उन सभी समुदायों का आभारी है जिन्होंने अपने अमूल्य समय में शोध हेतु साक्षात्कार का अवसर एवं सहयोग प्रदान किया जिससे शोध कार्य को समय से पूरा करने में सफलता प्राप्त हुई है।

शोधकर्ता अपने पूज्यनीय दादा श्री रामसरन यादव, पिता श्री राजा राम यादव एवं माता श्रीमती मनु देवी के आशीर्वाद एवं सतत प्रेरणा एवं अपने भाइयों श्री चन्द्र प्रकाश यादव, दीपक प्रकाश यादव, प्रेम भूषण पाण्डेय शोध-छात्र, मानव विज्ञान, श्री तेज प्रताप तिवारी के सतत सहयोग एवं उत्साहवर्धन के प्रति सदैव आभारी रहेगा।

शोधकर्ता अपने सभी मित्रों, ग्रन्थालय कर्मियों एवं विभागीय सदस्यों के सहयोग हेतु उनका आभार व्यक्त करता है।

शोध प्रबन्ध के कम्प्यूटर पर सुरुचिपूर्ण टंकन हेतु शोधकर्ता श्री जी.आर. मैनी का सदैव आभारी रहेगा।

Vinay Prakash Yadav

दिनांकः दिसम्बर 23, 2002 (विनय प्रकाश यादव)

<u>विषयानुक्रमणिका</u>

अध्याय 1

पृष्ठ 1 - 96

अध्याय 1

भूमिका

सांस्कृतिक मानव विज्ञान में इतिहास की महत्ता

मानव विज्ञान और इतिहास

मानव विज्ञान और इतिहास के बीच क्या सम्बंध है, इस प्रसंग पर आरम्भ से ही सैद्धांतिक विवाद चल रहा है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपनी सम्पूर्णता के दृष्टिकोण से ''मानव-शास्त्र'' मनुष्यों की शारीरिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन ऐतिहासिक एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करता है। मारवीन हैरिस ने अपनी भारी भरकम पोथी The Rise of Anthropological Theory" (1968) की प्रथम पंक्ति में ही लिखा है ''मानव विज्ञान इतिहास का विज्ञान है''[1]। इस कथन के अंतिम शब्द 'इतिहास' से तात्पर्य है – ''संस्कृति व समाज का इतिहास''

मानव विज्ञान की निम्न शाखाएं इतिहास से जुड़ी हैं:- पुरातात्विक मानव विज्ञान और मानव जाति-विज्ञान या जनवृत विज्ञान (Ethnology)। वास्तव में अमेरिकी परम्परा के अनुसार सांस्कृतिक मानवविज्ञान के क्षेत्र में ही ये दोनों समाहित हैं। अतएव अमेरिकी मानववेताओं का झुकाव शुरू से ही ''इतिहास'' की ओर रहा है।

ब्रिटिश मानवशास्त्री सामाजिक विज्ञान को सैद्धान्तिक और विधि के दृष्टिकोण से जनवृत विज्ञान या मानव-जाति-विज्ञान से पृथक करते है।

ईभान्स-प्रीचार्ड ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक Social Anthropology (1951) में बड़े ही स्पष्ट ढंग से लिखा है [2] – ''पिछले जमाने में मानव जाति विज्ञान

और सामाजिक मानव विज्ञान में कोई स्पष्ट भेद नहीं माना जाता था। मानव-जाति-विज्ञान में लोगों का वर्गीकरण उनकी प्रजातीय और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर किया जाता था और फिर प्रजाति समूहों के स्थानान्तरण और उनके शिक्षण तथा संस्कृतियों के प्रसार के आधार पर अतीत या वर्तमान में घटित विभाजनों की व्याख्या की जाती थी। यद्यपि मानव-जाति विज्ञानी व समाज मानव विज्ञानी दोनों अधिकतर एक ही प्रकार के लोगों का अध्ययन करते हैं फिर भी उनके अध्ययन के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते थे। इसका परिणाम हुआ कि दोनों में भेद नहीं किया जाता था। लेकिन मध्य 20वीं सदी के बाद यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि उद्देश्य और पद्धति की दृष्टि से दोनों एक नहीं है।

"इतिहास" हमें उन्हीं घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ बताता है जो कि वास्तव में घटित हो चुकी हैं, न कि उन घटनाओं के विषय में जिनके सम्बन्ध में केवल यह अनुमान हो कि वे घटित हुई होंगी और फिर इतिहास केवल यही नहीं बताता है कि घटनाएं घटित हुई हैं वरन् यह भी बताता है कि वे कैसे और कब घटित हुई और कभी-कभी उसका कारण भी बताता है। चूँकि मानव-जति-विज्ञान आदिम समाजों के पिछले सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में कम बताता है इसलिए उसके द्वारा किये गये वर्गीकरण का आधार कल्पनाएं हो जाती हैं। ये कल्पनायें पारस्थितिकी प्रमाणों पर आधारित रहती है। इसे "सम्भाव्य अनुमान" ही कहा जा सकता है अंतिम प्रमाण नहीं। अतः मानव जाति विज्ञान सामान्य अर्थो में इतिहास नहीं है (ईमान्स प्रीचार्ड, 1951)।

उपरोक्त कारणवश सामाजिक मानवविज्ञान मानव-जाति-विज्ञान से अलग हो जाता है, क्योंकि सामाजिक मानवविज्ञान का कार्य बिल्कुल भिन्न है, यह विज्ञान सामाजिक व्यवहार का सामान्यतः संस्थागत सामाजिक व्यवहार यथा परिवार, विवाह, नातेदारी, आर्थिकी, राजनीतिक, धार्मिक आदि के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है। सामाजिक मानवविज्ञानियों की अध्ययन प्रणाली भी भिन्न होती है। वे

क्षेत्रीय कार्य पद्धति द्वारा जन वृतान्त (Ethnography) तैयार करते है। एक मानव जाति विज्ञानी प्रशिक्षित जनवृतान्तवेत्ता यानि सामाजिक मानवविज्ञानी हो भी सकता है और नहीं भी। प्रारम्भिक मानवजाति-विज्ञान प्रशिक्षित समाज मानवविज्ञानी नहीं होते थे अतः वे गलती कर बैठते थे।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश समाज विज्ञानी विशेषकर प्रगतिवादी इतिहास को कोरी कल्पना मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार सामाजिक मानवविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है और इसकी पद्धति भी प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति जैसा होनी चाहिए। चूँकि प्राकृतिक विज्ञान में इतिहास की अवहेलना की जाती है, अतः सामाजिक मानव विज्ञान और इतिहास में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है।

इसका यह अर्थ नहीं कि सभी प्रगतिवादी इतिहास से दूर भागते हैं। इस प्रसंग पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रचलित हैं। रैडक्लिक-ब्राउन के शिष्य ईभान्स प्रीचार्ड इतिहास की प्रासंगिकता पर बल देते हैं। यह लेख उनकी पुस्तिका "Social Anthropology and other Essays 1964" के दो लेखों पर आधारित है।

<u>इतिहास की प्रासंगिकता : ईभान्स प्रिचार्ड का मत-</u>

''सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन मे मैं उन संस्थाओं के इतिहास की प्रासंगिकता का विवेचन कर रहा हूँ – उस इतिहास की प्रासंगिकता का जो हमें निर्विवाद रूप से और विवरण सहित ज्ञात हो''।

<u>अट्ठारहवी शताब्दी में इतिहास की भूमिका</u>

18वीं शताब्दी के नीति शास्त्रीय दार्शिनिकों ने और विक्टोरिया युगीय उनके उत्तराधिकारियों ने इस समस्या का अनुमान भी नहीं किया था, क्योंकि यह तथ्य कभी उन्हें सूझा ही नहीं कि संस्थाओं का अध्ययन उनके विकास के अध्ययन से

भिन्न कुछ भी हो सकता है। उनका अंतिम उद्देश्य तो मानव समाज का एक व्यापक प्राकृतिक इतिहास प्रस्तुत करना था। इसलिए उन्होंने समाजशास्त्रीय विधानों की अवधारणा प्रगति के विधानों (Principles of Progress) के रूप में की।

अमेरिका में मानव विज्ञान आज भी अधिकांश रूप में इतिहासपरक उद्देश्यों को लेकर ही चल रहा है। केवल विधानों की खोज नहीं की जाती, क्योकि इस संबंध में अमेरिकी मानव-विज्ञानवेत्ता उतने ही संशयशील हैं जितना कि मैं स्वयूं हूँ। इसी कारण अमेरिकी मानवविज्ञान को इंग्लैंड के प्रगतिवादी सामाजिक मानव विज्ञान के बजाय मानव जाति विज्ञान या जनवृत विज्ञान (Ethnology) अधिक मानते है। उनके अनुसार सामाजिक मानववेताओं का यह काम नहीं है कि जिन समाजों का वे अध्ययन करते हों उनके इतिहास की भी खोज पड़ताल करें। वे यह भी मानते है कि समाजों के इतिहास का ज्ञान उन समाजों की संस्थाओं की क्रियावृत्ति को समझने में हमारी कोई सहायता नहीं है। उनकी यह मान्यता है कि मानव समाज प्राकृतिक व्यवस्थाएं है, जिनका अध्ययन करने में उन्हीं रीति विधानों का प्रयोग किया जाना चाहिए जिनका प्रयोग जीवविज्ञान और रसायनशास्त्र के विद्वानों द्वारा किया जाता है।

<u>इतिहास की अवहेलना नहीं की जा सकती है</u>

आज जब कि सामाजिक विज्ञानी ऐतिहासिक संस्कृतियों वाले समाजों का अध्ययन कर रहे हैं, उपरोक्त प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया है। जब तक वैसे समाजों का अध्ययन किया जाता रहा, जिनका कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है, तब तक बड़े सरल ढंग से इतिहास की अवहेलना की जा सकती है, किन्तु अब भारत और यूरोप तथा अन्य स्थानों के कृषक समाजों का अध्ययन किया जा चुका है, हमें सोच समझ कर यह निर्णय देना होगा कि इनके वर्तमान सामाजिक स्वरूपों का अध्ययन करने में इनके अतीत का विचार किया जाय या नहीं।

वर्तमान का भूतकाल के साथ लगाव

किसी भी समाज के वर्तमान स्वरूप का और उसके पिछले विकास का अध्ययन अलग-अलग किया जाना जरूरी है और इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की विश्लेषण प्रविधियों का उपयोग आवश्यक है। इतिहास एक विकास है। अतीत वर्तमान में निहित रहता है और वर्तमान भविष्य में। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि किसी भी समाज के अतीत के ज्ञान के माध्यम से ही उसका सामाजिक जीवन समझा जा सकता है। ईभान्स प्रिचार्ड का यह मत है कि अतीत का ज्ञान उसके वर्तमान स्वरूप को अधिक पूर्णता के साथ समझने में सहायता करता है। यदि यह ज्ञान हमें उपलब्ध न हो तो वर्तमान स्वरूप को इतनी पूर्णता से नहीं समझा जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि संतोषजनक इतिहास उपलब्ध हो पाता है तो प्रकार्यवादी मतों की पुर्नजांच की जा सकती है।

ऐतिहासिक अध्ययन के आयाम

ऐतिहासिक अध्ययन की कुछ विशिष्ट शाखाएं जैसे सामाजिक इतिहास तथा सामाजिक विचारों के इतिहास ''सामाजिक मानव विज्ञान'' से अधिक मिलता जुलता है। इन दोनों के बीच की समानता को छिपाए रखने वाला तथ्य यह है कि सामाजिक विज्ञानवेत्ता सामाजिक जीवन का अध्ययन प्रत्यक्ष स्वरूप में करते हैं जबकि इतिहासकार उसका अध्ययन प्रलेखों तथा अन्य साधनों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप में करते हैं। इस तथ्य ने भी यही काम किया है कि सामाजिक मानव विज्ञानवेत्ता सामान्यतः समकालिक समस्याओं का अध्ययन करते है, जबकि इतिहासकार अतीतकालिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं। मैं तो प्रोफेसर क्रोबर (A.L. Kroeber) के साथ सहमत हूँ कि यह अन्तर तो तकनीक में बल देने के और दृष्टिकोण में अन्तर है, न कि उद्देश्य अथवा रीति-विधान में और तत्वतः इतिहास

लेखन और वर्णनात्मक एकीकरण है। यद्यपि मानव विज्ञान द्वारा किया जाने वाला संश्लेषण प्रायः ऐतिहासिक संश्लेषण की अपेक्षा भाव-सूक्ष्मता की एक उच्चतर भूमि पर किया जाता है और इतिहास की अपेक्षा मानव विज्ञान में तुलनीय और सामन्यीकरण अधिक स्पष्ट रूप से किया जाता है।

ईवान्स प्रीचर्ड मानवविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान नहीं मानते हैं और इसी कारण वे रैडक्लिफ ब्राउन और उनके अनुयायियों के विपरीत मत रखते हैं कि सामाजिक मानवविज्ञान की व्याख्या प्राकृतिक विज्ञान की भाषा में होनी चाहिए।

ईवान्स-प्रीचर्ड ने बल देकर कहा है-

> ''सामाजिक मानवविज्ञान समाजों का अध्ययन नैतिक अथवा प्रतीकात्मक पद्धतियों के रूप में करता है न कि प्राकृतिक पद्धतियों के रूप में कि अभिकल्पना के बजाय वह प्रक्रिया में कम दिलचस्पी लेता है और इसलिए वह स्वरूपों का अन्वेषण करता है, विधानों का नहीं, सामाजिक कार्यकलापों की संगति सिद्ध करता है, उनके बीच आवश्यक सम्बन्ध नहीं और व्याख्या करता है कारण नहीं बताता। यह अन्तर प्रत्यात्मक है। केवल शाब्दिक अन्तर नहीं हैं (सामाजिक मानवविज्ञान 1951 से उद्धरित)।

कुछ अमेरिकी मानवशास्त्री ने (यथा जी.पी.मरडॉक) ब्रिटिश प्रकार्यवादी मानवशास्त्रियों की आलोचना की है कि वे इतिहास की अवहेलना करते हैं। किन्तु ईवान्स प्रीचर्ड का उपरोक्त कथन स्पष्ट करता है कि ऐसी बात नहीं है। यहां तक कि ब्रिटिश प्रकार्यवादी रेमण्ड फर्थ और कुछ हद तक एडमन्ड लीच (1961) ने प्रकार्यवाद को स्थिर नहीं माना हैं उनकी पुस्तक "Social Change in Tikopia" (1964) प्रकार्यवाद में गतिशीतलता को महत्व देता है। उन्होनें गतिशीतलता को ऐतिहासिक संदर्भ में आंकने का प्रयत्न किया है। ऐसा ही लीच ने अपनी पुस्तक

"Political System of Highland Burma" में प्रस्तवित किया है किन्तु लीच के विश्लेषण का दृष्टिकोण भिन्न है।

<u>इतिहास के प्रति अमेरिकी सांस्कृतिक मानववेत्तओं का मत-</u>

ए.आर.एन. श्रीवास्तव ने विभिन्न मतों को यो बताया है।[3]

1- अमेरिकी प्रसारवादियों ने इतिहास को महत्ता दी है। ''क्रोबर'' इसके मुख्य प्रवर्तक हैं।

2- सांस्कृतिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण के समर्थकों जिसके मुख्यिा ''फ्रान्ज बोआज थे - ने स्थानिक इतिहास की पुनर्रचना (Local reconstruction of history) पर बल दिया। इस संदर्भ में क्लार्क विस्लर, ड्राईवर, शेपियर, क्रोबर, हर्षकोविट्स द्वारा प्रतिपादित संस्कृति क्षेत्र और संस्कृति संकुल जैसी अवधारणा की अध्ययन पद्धति उल्लेखनीय है।

3- कुछ प्रकार्यवादी सांस्कृतिक मानवशास्त्री ''सोल टैक्स, फ्रेड ईगन जो कि ब्रिटिश प्रकार्यवादी उपागम से प्रभावित थे - ने इतिहास पर बल दिया।

4- जार्ज पीटर मरडॉक ने अपनी पुस्तक (सामाजिक संरचना 1949) में इतिहास के साथ मानवविज्ञान को सम्बन्धित किया। इस सन्दर्भ में उनके द्वारा प्रतिपादित "Human Area Relation file (HARF) उल्लेखनीय है। फिल के द्वारा कई एक समाजों की तुलना की जा सकती है।

5- अमेरिकी भाषाई मानवशास्त्री ने ''विवरणात्मक भाषा'' अध्ययन प्रणाली के द्वारा संस्कृति और इतिहास को सम्बद्ध करने का प्रयास किया है।

6- संस्कृति और व्यक्तित्व अध्ययन क्षेत्र में भीड़, लिंटन ने व्यक्तित्व में परिवर्तन की बात स्वीकार की है। परिवर्तन की दशा और दिशा बताने का तात्पर्य है

पूर्व इतिहास (यदि उपलब्ध न हो तो) को मानना। राष्ट्रीय चरित्र अध्ययन में ऐतिहासिक दस्तावेजों का उपयोग किया गया है।

7- लोककला (Folklore) तथा कला (Art) के मर्मज्ञ मानवशास्त्री संस्कृति विशेष के संदर्भ में इतिहास की पुनर्रचना करना चाहते हैं

8- नवविकासवादी विशेषकर रूढ़िवादी और उसके अनुयायियों ने स्थानीय इतिहास का पुनरनिर्माण करने की साधारण नीति अपनाई है।

संक्षेप में अमेरिकी मानवशास्त्री इतिहास को मान्यता देते है।

<u>प्रयाग और झूँसी का इतिहास</u>

प्रस्तुत अध्याय में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अध्ययन क्षेत्रों का इतिहास बताने का प्रयास किया गया है।

तीर्थराज प्रयाग के नामकरण के संबंध में मुख्यतः पुराणों और गौणतः अन्यान्य ग्रन्थों में उल्लेख देखने को मिलता है। "प्रयाग" शब्द की व्युत्पति के संबंध में अनेक प्रकार के विवरण मिलते हैं। महाभारत के वन पर्व (87/18-19) में कहा गया है कि गंगा-यमुना-सरस्वती के लोकविश्रुत संगम पर पुरातन काल में जीवों के स्वामी पितामह ब्रह्मा ने यज्ञ किया था।[4] अतः यजन-भूमि होने के कारण विष्णु-महेश आदि देवताओं ने उसे "प्रयाग" नाम दिया। स्कन्दपुराण में भी "प्र" एवं "याग" से युक्त इस प्रयाग स्थली को समस्त यज्ञों के लिए उत्तम निरूपित किया गया है। वहां भी कहा गया है कि उत्कृष्ट यज्ञ-यागादि और दान-दक्षिणा आदि से परिपोषित (सम्पन्न) देखकर विष्णु एवं शंकर आदि देवताओं ने इसका "प्रयाग" नामकरण किया।

इसी प्रकार "मत्स्यपुराण" में प्रयाग को अन्य तीर्थों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट बताया गया है। "ब्रह्मपुराण" में भी यज्ञ-यागादि और इस

पुण्य के सर्वथा उपयुक्त अर्थात प्रधानता के कारण "प्रयाग" और प्रकृष्टता के कारण "राज" (प्रयागराज या तीर्थराज) शब्द से सम्मन्वित किया गया है।[5]

प्रयाग को "त्रिवेणी" भी कहा गया है। प्रयाग में गंगा-यमुना-सरस्वती के संधि स्थल को ही "संगम" कहा गया है। पुराणों का कथन हैं कि जो लोग श्वेत (सित) तथा कृष्ण (नील या असित) दो नदियों के मिलन स्थल (संगम) पर स्नान करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। जो धीर लोग वहाँ शरीर त्याग करते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

स्मृतियों तथा पुराणों में प्रयाग का महत्व विस्तार से वर्णित है। वहां श्रुतियों में केवल ऋग्वेद के दो स्थलों पर ही उसका उल्लेख हुआ है। "तीर्थ चिन्तामणि" में उद्धृत ऋग्वेद (खिल 10/24) के एक सूत्र में कहा गया है कि[6]- "जिस स्थान पर श्वेतवर्णा (धवला) गंगा और असितवर्णा (नीलवर्णा) यमुना, ये दो नदियाँ मिलती हैं उस स्थल पर स्नान करने से स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। जो जन उस स्थान पर शरीर विसर्जन करते है, वे भी अमर हो जाते हैं।"

ऋग्वेद मंत्र से प्रभावित होकर महाकवि कालीदास ने "रघुवंश" में कहा है कि सितासित धाराओं से संयुक्त गंगा-यमुना के संगम पर जो स्नान कर पवित्र होते हैं वे तत्वज्ञानी न होने पर भी संसार के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। इस संदर्भ में कालिदास ने भी 'सरस्वती' की चर्चा नहीं की है। श्रुति, स्मृति तथा पुराणों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि प्रयाग में त्रिवेणी के संबंध में मत-मतान्तर हैं। इस संबंध में नागेश भट्ट के "तीर्थेन्दु शेखर" में उद्धृत ऋग्वेद (खिल 9/113/12) का वह मंत्र है, जिसमें गंगा, यमुना तथा सरस्वती के संगम का उल्लेख किया गया है।[7]

"यत्र गंगा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती" ऋगवेद के इस मंत्र के अतिरिक्त कतिपय पुराणवचनों तथा निबंधकारों के निर्देशों से भी इसकी पुष्टि होती है। भीभासेक नारायण भट्ट ने "त्रिस्थलीसेतु" में प्रयाग की तीन नदियों का संगम बताते हुए लिखा है कि - "आकारस्वरूप सरस्वती, उकार-स्वरूप यमुना और भकारस्वरूप गंगा" से संबंधित "प्रणव" (ओंकार) ही प्रयाग हैं। उनके इस मन्तव्य का आधार पुराण सम्भवतः "ब्रह्मपुराण" का यह वचन रहा है [8]

"एवं" त्रिवेणी विख्याता वेदवीर्ज प्रकीर्तिता"। उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त "तीर्थ चिन्तामणि" में भी तीनों नदियों के संगम का इस प्रकार उल्लेख हुआ है-

"सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्मिता"[9] समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वी में जितने भी तीर्थ हैं, उन सब में श्रेष्ठ तीर्थराज प्रयाग की महिमा वेदों से लेकर विभिन्न शास्त्रों, धर्मग्रन्थों, पुराणों और परवर्ती साहित्य में प्रचुर रूप से वर्णित है। उसे समस्त तीर्थों के पुण्यफलों का प्रदाता और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस चतुर्वर्ण की प्राप्ति का साधन बताया गया है। प्रयाग के संबंध में कहा गया है कि विभिन्न स्थानों पर किये गयें पापों का उपशमन अन्य तीर्थो पर जाकर किया जा सकता है, किन्तु विभिन्न तीर्थो पर जो दुष्कृत किये जाते हैं प्रयागराज के दर्शन मात्र से ही वे क्षीण हो जाते हैं। यह प्रयागराज देवलोक और पितृलोक हैं। उसके दर्शन करने, उसका नामोच्चारण करने या शरीर पर उसकी मृतिका का स्पर्श करने मात्र से ही मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जो यहाँ स्नान करते हैं, वे स्वर्ग धाम को प्राप्त होते है। जो यहाँ आकर मरते हैं उन्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

स्वयमेव शरीर त्याग या आत्महत्या को सभी शास्त्रकारों ने महापाप माना है। किनतु स्मृतिकारों औरं निबंधकारों ने घोषणा की है कि - "अक्षयवट" के मूल में प्राणोत्सर्ग करने या आत्महत्या करने से मुक्ति लाभ होता है। और उससे आत्मा

हत्याजनित पातक नहीं लगता तथा विधि-निदेश का भी उलंघन नहीं होता है। इसी उद्देश्य से अनेक लोग, यहाँ तक कि बड़े-बड़े ज्ञानी और तत्ववेता भी ऐसा करते थे।[10]

सभी पुराणों का एक मत से यह कथन हैं कि देवोपम स्वर्गीय वट प्रयागराज में है। पुराणों में इसे "आदि वट" के नाम से कहा गया है, जो प्रलय और कल्पान्तर के बाद भी अक्षय बना रहता है। भगवान विष्णु, देवी महालक्ष्मी, भगवती पार्वती, भगवान शंकर और कोटि-कोटि देवता उसमें निवास करते हैं। वह अनेक सिद्धियों का प्रदाता है। उसके स्मरण मात्र से ही सारे पाप छूट जाते हैं। उसके दर्शनों से वेद, शास्त्र, पुराण, तीर्थयात्रा, ब्रत और दान आदि सभी का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है। पद्यमपुराण में उसकी महिमा इस प्रकार कही गयी है:-

"आदिवटः समाख्यातः कल्पान्ते अपि-च दृश्यते।
शेते विष्णुर्यस्य पत्रे अतो अयमव्ययः स्मृतः।।"[11]

यह अक्षय वट 'आदि वट' के नाम से कहा गया है ओर वह कल्पान्त (प्रलय) में भी स्थिर देखा जाता है या वर्तमान रहता है। उसके पत्र पर भगवान विष्णु शयन करते है। अतः उसको 'अक्षय वट' कहा गया।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है

1- उस अक्षयवट का मूल (जड़) स्वयं साक्षात् विष्णु है, स्कन्ध (तना) स्वयं मंगलमयी लक्ष्मी है, देवी सरस्वती उसके पत्र है और देवेश्वर शंकर पुष्प, सभी फल ब्रह्मा है। इन सबके आधार भगवान विष्णु हैं।

2- प्रयाग के इस शुभ वट में समस्त वेद, शास्त्र, और पुराण तथा सम्पूर्ण दान तीर्थ और व्रत विराजमान है।

अक्षयवट के अस्तित्व के संबंध में सम्प्रति मत-मतान्तर हैं। ''रामायण'' (अयो0 55/4-6) में अक्षयवट का जो स्वरूप तथा महत्व बताया गया है, तदनुसार उसे ''श्यामवट'' कहा गया है।

ह्यवेनसांग (7वीं शती) जब प्रयाग आया था तो उसने अक्षयवट को संगम की पश्चिम दिशा में होना बताया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग का निर्माण करते समय अकबर ने उसे कटवा दिया था, किंतु ''अक्षयवट'' होने के कारण वह समूल नष्ट न हो सका। इस दृष्टि से विद्वानों का अभिमत है कि आज दुर्ग के तथा संगम स्थल के आस-पास जो छोटे-बड़े वट वृक्ष दिखाई देते हैं, वे उसी अक्षयवट की जड़ों की शाखायें हैं और इस लिए उतने ही पूज्य एवं विश्वस्त है, जितना कि अक्षयवट। (अक्षयवट के पादमूल में आत्महत्या करना मोक्षत्व का प्रदाता कहा गया है।[12]

प्रयाग देवाधिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश की निवास भूमि है। गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूसी) की उत्तर दिशा में ब्रह्मा गुप्त रूप में निवास करते हैं, विष्णु वेणीमाधव के रूप में विद्यमान है और शिव अक्षयवट के रूप में रहते हैं। वेणीमाधव स्वरूप विष्णु योगमूर्ति के रूप में विराजमान हैं। कल्पान्त में जब रुद्र के ताण्डव से प्रलय की स्थिति उत्पन्न होती है, तो इन त्रिदेवों के कारण प्रयाग तब भी अपने सदाशय रूप में स्थिर एवं अक्षय रूप में बना रहता हैं इसी कारण प्रयाग में देव, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, साधक, ऋषि और मुनिजन एक साथ निवास करते हैं।

प्रयाग के स्नान, तीर्थाटन और निवास से जो फल प्राप्त होते हैं, उनकी संख्या अनन्त हैं। किन्तु कोसों सुदूर बैठकर भी यदि उसका पवित्र अन्तःकरण से स्मरण किया जाय तो उतने से ही मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे सहज ही परम विष्णुपद की प्राप्ति हो जाती है। उसके स्मरण मात्र से ही सम्पूर्ण

मनोरथ पूरे हो जाते हैं। प्रयागराज में शरीर त्याग करने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु जो व्यक्ति उसका स्मरण करते हुए शरीर त्याग करता है उसको सीधे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मपुराण में लिखा है-

"तीर्थराजं तु येयान्ति ये स्मरन्ति सदा मुनि।
ते सर्वपाप निर्मुक्ताः पदेगच्छन्त्यनामयम् !!"[13]

इस धरती पर जो मनुष्य सदा तीर्थराज प्रयाग को जाते रहते हैं और सदा उसका स्मरण करते रहते हैं, वे समस्त पापों से मुक्त हो जाते है, और अन्त में निरामय (मुक्ति) पद को प्राप्त करते हैं।

देवताओं की यजन भूमि प्रयाग में स्नान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। तप, दान, यज्ञ आदि जितने भी धार्मिक कृत्य हैं, प्रयाग स्नान से सब का पुण्य प्राप्त होता है। प्रयाग स्नान के लिए किसी विशेष तिथि या अवस्था की अपेक्षा नहीं है। सभी तिथियों और कालों में वहाँ स्नान करने से पुण्य होता है। प्रयाग स्नान से सभी पापों का विनाश होता है और सभी मनोवांछित उत्तम योग प्राप्त होते हैं। उससे देवलोक प्राप्त होता हैं।

ब्रह्मपुराण के अनुसार तीर्थराज का स्नान सर्वत्र ओर सर्वदा दुर्लभ है। प्रयाग में देश, काल आदि का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। सभी दिन और सभी काल यहाँ के लिए कल्याणमय होते हैं।

भविष्यपुराण में लिखा है किः-

"गंगायमुनयोश्चैव संगमोलोकविश्रुतः ।
स एव कामिकंतीर्थं तत्र स्नानेन भक्तितः ।।
मस्य यस्य च मः कामस्तस्य भवेद्धिः सः ।"

गंगा और यमुना का संगम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वह सभी मनोकमानाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ है। यहाँ पवित्र भावपूर्वक स्नान करने से जिसकी जो कामना होती है वह निश्चित ही पूरी हो जाती है।[14] इस कथन की पुष्टि मत्स्यपुराण और स्कंदपुराण से भी होती है।[15]

गंगा-माहात्म्य

भारतीय संस्कृति का मूल उत्स एकत्व की भावना है। नाना भेदात्मक प्रपंच की व्याख्या दर्शन-शास्त्र में विद्वान इस प्रकार करते हैं, जो इस भावना को बलवती बनाये। भारतीय चिंतनधारा सम्पूर्ण चराचर जगत को ब्रह्म में अध्ययन तथा चेतन पुरुष की प्रकाशात्मिका भित्ति में उन्मीलित मानती है। आर्य मनीषियों ने सभ्यता के विकास की सरणियों में सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक मान्यता एवं् दार्शनिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हुए चतुर्दिक् परिदृश्यमान विविधता में एकता का सूत्रपात बाँधा। ऋग्वेद (1/164/46) की एक ऋचा इस एकत्वभाव का उद्घोष करती है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति अग्निर्यमो मातरिश्वानमाहुः ।।[16]

आधुनिक नृतत्त्ववेत्ताओं की मान्यता है कि प्राचीन भारत में लगभग 5000 कबीले थे। इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली, मानसिक रूप से अत्यन्त विकसित एवं ज्ञान-विज्ञान से मण्डित कबीला आर्यों को कहा जाता है। ये आर्यगण श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों से अनुप्राणित थे। डा0 गयाचरण त्रिपाठी का मत है कि ये आर्य इसलिये कहलाये क्योंकि वे अन्य कबीलों की भांति किसी अन्य अपरिचित पर आक्रमण की नीति नहीं अपनाते थे, बल्कि अपरिचितों को आदर देते थे। यह

सिद्धांत काल्पनिक नहीं है, अपितु आर्य शब्द के अर्थानुसन्धान के फलस्वरूप स्थिर किया जा सकता है।

इन आर्यों के सम्पर्क में आने वाले कबीलों पर इनके अत्यन्त उदार व्यवहार ने स्वाभाविक रूप से प्रभाव डाला। आर्य भी अन्य कबालाई आचार-व्यवहार एवं विश्वासों से अछूते नहीं रहे। परस्पर प्रभावित होने की यह प्रक्रिया धीमें सम्पर्क एवं यातायात के माध्यमों की कमी के कारण मन्थर गति से सहस्त्रों वर्षों तक चलती रही। इसी दौरान स्मृतियों की मूल संकल्पनाओं ने जन्म लिया। सम्पूर्ण विश्व को एकात्ममय मानने वाले आर्य ऋषिगणों ने 5000 विभिन्न परम्पराओं एवं धार्मिक मान्यताओं वाली जनजातियों को मात्र 4 वर्णों में विभाजित करके, वर्णाश्रम धर्म की नैतिक एवं सुविचारित व्यवस्था में बांध कर, आसेतु-हिमाचल एक संस्कृति का विस्तार किया। इस सांस्कृतिक एकीकरण की प्रक्रिया में वैदिक शिक्षा का भी प्रसार हुआ। इस शिक्षा के प्रसार ने पुराणों को जन्म दिया। जहां वेद आर्य सभ्यता की आदर्श अभिव्यक्ति हैं, वहीं पुराण आर्यों के महान, उदार एवं विशाल सहृदयता के परिचायक हैं। पुराणों ने सम्पूर्ण भारत की सभी धार्मिक वृत्तियों को संहृत करके 5 मुख्य धार्मिक धारायें प्रचारित कीं - सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव और वैष्णव। इनमें अनादिकाल से चली आ रही आर्य तथा आर्येतर पूजा पद्धतियों को सम्यक् रूप से समायोजित किया गया है। विभिन्न आकृतियों वाले जन देवताओं, नदियों, वृक्षों एवं पर्वतों आदि को, उनमें पारमेश्वरी कला का दर्शन करते हुए चैतन्याभिन्ना प्रकृति का मानव मात्र के प्रति कृपा प्रसाद मान कर उनके आत्मरूप चैतन्य का अनुसंधान किया गया है।

सुरसरिता पुण्यजला गंगा सभी हिन्दू धार्मिक धाराओं में समान रूप से सर्वातिशायिनी है। विष्णुपदोद्भवा तथा ब्रह्मकमण्डल निःसृता गंगा भूतभावन शिव की

चूड़ा पर चन्द्रकला के ऊपर अपनी धवलिमा से चन्द्र को भी तिरस्कृत करती हुई विराजमान है। कवि पद्माकर ने गंगा की सर्वोच्चता का बड़ा मनोरम वर्णन किया है-

कूरम पै कोल कोलहू पै शेष कुण्डली है

कुण्डली पै फेली शैल सुफन हजार की ।

कहै पद्माकर त्यौं फन पै फबी है भूमि

भूमि पै फबी है स्थित रजत पहार की ।

रजत पहार पर शम्भु सुरनायक हैं,

शम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ।

शम्भु जटाजुट पै सुचन्द्र की छुटी है छटा

चन्द्र की छआन हू पै छटा गंगधार की ।

आचार्य शंकर ने गंगाष्टक में भगवती गंगा के दिव्य एकात्म चैतन्यस्वरूप का वर्णन अनूठी रीति से किया है। परमेश्वर की निराकार चित्कला परा शक्ति प्रथमतः ईश्वर में आत्मरूप में निहित थी। सृष्टि का प्रसार होने पर कर्मबद्ध देवता, असुर, मनुष्य, सभी को कर्मजन्य भोगरूप दुख के अगाध सागर में देखकर, करुणाविभूत हो कर, कृपापूर्वक सभी प्राणियों का उद्धार करने के लिये, वही परापारमेश्वरी शक्ति जल का रूप धारण कर धरती पर भगीरथ को बहाना बनाकर प्रकट हुई -

निराकारा सृष्टेरभवदिवमीशात्मनि पुरा ।

जगद् दृष्ट्वा देवॉसुर-नर-मुख-भ्रान्ति-निविडम ।

निमग्नं दुःखाब्धो दुरितचरिते वीक्ष्य कृपया।

समुद्धर्तुं नीराकृतिमिह् विधायाविरभवत् ।।

कवि पद्माकर ने गंगा के द्वारा पापभंजन किये जाने का हृदयग्राही वर्णन किया है। गंगा पापियों के पाप भस्म कर देती है। यम का नरक खाली-सा हो गया है। यमराज अपनी बेकारी से खीझ कर अपना कार्यालय ही बन्द करने लगे-

गंगा को चरित्र लखि भाख्यो जमराज यह,
ऐ रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दे।
कहैं पद्माकर नरक सब मूंदि कर,
मूंदि दरवाजेन को तजि यह ध्यान दे।
देखु यह देवनदी कीन्हे सब देव याते,
दूतन बोलाइ विदा को बेगि पान दे।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ ,
खाता खति जानि दे बही को बहि जानि दे।

चले गये यमराज गुस्से में ब्रह्मा के पास। कहा कि अच्छा मजाक किया आपने मेरे साथ ! मुझे कह दिया कि पापियों को दण्ड दो, उधर गंगा को भेज दिया धरती पर सभी को तारने के लिये, अब या तो उसे वापस कमण्डल में बुलाइये नहीं तो मेरा इस्तीफा लीजिए। रत्नाकर गंगावरण में इस बात को कितनी वक्रता से कहते हैं-

पापिनी की मण्डली लुकाय देति जाने कहाँ,
धाये तिहुँ लोक पै न पावति पतीजिये।
कहैं रतनाकर विधाता सौं पुकारि जम,
खाता खीस होत सबै याही दुख दीजिए।
पूछैं उठै गाजि तापै हँसत समाज' सबै,
लाजनि कहाँ लगि लहूँ की घूँट पीजिये।
कै तो कैद कीजिये कमण्डलु में गंगा फेरि,
कै तो यह साहबी हमारी फेर लीजिये।।

गंगा प्रतिनिधि है परब्रह्म की। तत्त्वदर्शी उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की समष्टिरूपा कहते हैं। वह सरस्वती, लक्ष्मी एवं उमा की पुंजीभूत रूप है। गंगा परम

रहस्यमयी एवं निराकार ब्रह्मस्वरूपा है। जल रूप में वह पामर जनों के कल्याणार्थ धरा को पवित्र कर रही है। यह आचार्य शंकर का कथन है-

विधिर्विष्णुः शम्भुस्त्वमसि पुरुषत्वेन सकला।
रमोमागीर्मुख्या त्वमसि ललना जह्नुतनये।
निराकारागाधा भगवति सदा त्वं विहरसि।।
क्षितौ नीराकारा हरसि जनतापान् स्व कृपया।।

मत्स्य, स्कन्द, ब्रह्माण्ड प्रभृति सभी पुराण गंगा के देवत्व की महिमा का बखान करते नहीं अघाते। सभी भारतीय तीर्थ जल-प्रधान हैं। भवसागर तारण में समर्थ होने के कारण उनका तीर्थ नाम सार्थक है। इन तीर्थों के जलों की पवित्रता की तुलना गंगाजल से नहीं की जा सकती - भौतिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी। वृहन्नारदीय पुराण (6/11) की मान्यता है कि पृथ्वी पर जितने तीर्थ है, उनमें स्नान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है, वह गंगाजलाभिषेक की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है-

सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै।
गंगाबिन्द्वभिषेकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।[17]

अनेक सतत प्रवहमान नदियाँ हैं भारतवर्ष में, किन्तु जलीय गुणवत्ता एवं पवित्रता के कारण गंगा सर्वोपरि है। इसकी पवित्रता की सार्वभौम स्वीकृति हुई। देश की अन्य नदियों एवं जलाशयों का गंगाकरण हुआ। उदाहरणार्थ कावेरी नदी दक्षिण भारत की गंगा के नाम से अभिहित हुई। गोदावरी विन्ध्य पर्वत के दक्षिण की गंगा मानी गई, यह गौतमी गंगा के नाम से प्रसिद्ध है। गंगा की पवित्रता देश की सीमाओं को पार कर दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भी सामदृत हुई। वहाँ के कई जलाशयों में गंगा की सूक्ष्म उपस्थिति की कल्पना की गयी। आधुनिक काल में गंगा को सम्मान मारीशस देश में मिला। मारीशस में एक सरोवर को गंगा सागर कहते

हैं, जिसमें मार्जन वहाँ के हिन्दू धर्मावलम्बी उसी आस्था से करते हैं जिस श्रद्धा से भारतीय गंगा में करते हैं। वस्तुतः गंगा भारत एवं भारतीयों की ही देवी नहीं है, वह अन्य देशों में भी उतनी ही सम्माननीय है। गम् धातु से निष्पन्न गंगा शब्द का अर्थ है, 'सतत प्रवहमान जलधारा'। किन्तु गंगा मात्र अजस्त्र जलधारा नहीं है। गंगाजल अनेकानेक रोगों की अचूक दवा भी है। यह तथ्य आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध भी हो गया है। इस तथ्य से प्राचीन ऋषिगण परिचित थे। तभी तो गंगा सहस्त्रनाम से इसे महौषधजला कहा गया है।

प्राणदा प्राणनीया च महौषधस्वरुपिणी।
महौषधजला चैव पापरोगोत्तरामृता।।

गंगाजल की पवित्रता एवं क्रिमिमारक क्षमता के ही कारण संभवतः पुराणों ने कहा है कि चाण्डाल के परम अपवित्र पात्र में रहने पर भी गंगाजल दूषित नहीं होता-

अपि चाण्डलभाण्डस्थं गांगं वारि न दुष्यति।

गंगा की इस दिव्य लोकोत्तर गुणवत्ता को मुसलमान शासक भी पहचानते थे। वे बड़े सम्मान से गंगाजल का प्रयोग करते थे। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के लिये गंगाजल प्रतिदिन दौलताबाद जाता था। इसका वहाँ पहुँचने में 40 दिन का समय लग जाया करता था, ऐसा इब्ने बतूता लिखता है। अबुल फजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि बादशाह अकबर गंगाजल को अमृत समझते थे। घर और यात्रा में वे सदा गंगाजल ही पीते थे। कुछ विश्वासपात्र लोग गंगा तट पर इसी लिये नियुक्त रहते थे ताकि वे घड़ों में गंगाजल भराकर और उस पर मुहर लगाकर बराबर भेजते रहें। जब बादशाह सलामत राजधानी आगरा या फतेपुर सीकरी में रहते थे तब गंगाजल सोरों से आता था, जब वे पंजाब जाते थे तब हरिद्वार से। खाना पकाने के लिये वर्षाजल या यमुनाजल, जिसमें थोड़ा गंगाजल मिला लिया जाता था, काम में

लाया जाता था। इसी प्रकार फ्रांसीसी यात्री बर्नियर लिखता है कि बादशाह औरंगजेब नियमित रूप से गंगाजल का प्रयोग करता था। टैवरनियर के यात्रा विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि वैवाहिक अवसरों पर लोग गंगाजल का ही प्रयोग करते थे। इसके लिये काफी खर्च करके गंगाजल मँगाया जाता था। ध्यातव्य है कि मरते समय प्राणी को गंगाजल पिलाना आज भी जन-जन में प्रचलित है। टेवरनियर लिखता है कि दूर दक्षिण में भी यह प्रथा थी। विजयनगर के विख्यात शासक कृष्णदेव राय को 1525 ई0 में मरणासन्न अवस्था में गंगाजल पिलाया गया तथा वे स्वस्थ हो गये थे।

बौद्ध परम्परा भी गंगा को पवित्र मानती है। भूटान युद्ध के अन्त में तूशीलामा ने वारेन हेस्टिंग्स के पास दूत भेज कर गंगा तट पर भूमि माँगी थी। उसने वहाँ एक मठ एवं मन्दिर बनवाया था।

गंगा के परम दिव्यत्व के कारण कहा गया है कि "गंगेतव दर्शनात् मुक्तिः" अर्थात् हे गंगा तेरा दर्शन ही मोक्षदायक है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि मुक्ति उसी की सम्भव है अथवा पुण्यलाभ उसी को प्राप्त हो सकता है जो गंगा को हृदय से पुण्यजलवाहिनी स्वीकार करता हो, उसे प्रदूषित न करे और न होने दे। ब्रह्माण्ड पुराण ने गंगा में 14 कार्य वर्जित किये हैं-(1) शौच, (2) कुल्ला करना, (3) मल विसर्जन, (4) निर्माल्य बहाना, (5) शरीर मल कर नहाना, (6) शारीरिक मैल साबुन आदि द्वारा धोना, (7) जलक्रीड़ा करना, (8) चोरी आदि करना, (9) मैथुन करना, (10) दूसरे तीर्थ की प्रंशसा, (11) अन्य तीर्थों के प्रति प्रेम प्रदर्शन, (12) कपड़े फेंकना, (कपड़े धोना) और, (13) तैरना।

गंगा पुण्यजलां प्राप्य चतुर्दश विवर्जयेत् ।
शौचमाचमनं सेकं नैर्माल्यं मलवर्षणमु ।
गात्रसंवाहनं क्रीड़ां प्रतिग्रहमथो रतिम् ।।

अन्यतीर्थरतिं चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ।

वस्त्रतयागं तथा घातं सन्तारं च विशेषतः ।।

स्कन्द पुराण ने गंगा में तेल लगाकर एवं गन्दगी से ओत-प्रोत शरीर वालों को स्नान करने से मना किया है तथा आगे कहा है कि स्नान करते समय किसी से बात न करे, इधर-उधर न देखें और न झूठ बोले।

नाभ्यङ्गितः प्रविशेत्तु गंगायां न मलार्दितः।

न जल्पन्न मृषा वीक्षन्न वदन्नणृतं वचः।।[18]

ये सारी क्रियायें प्रदूषणकारी हैं, वह भी अत्यन्त सामान्य प्रदूषण। फिर आधुनिक विषमय रासायनिक प्रदूषण की बात ही क्या। ऐसे प्रदूषणकारियों तथा उसे रोकने की चेष्टा न करने वालों को गंगा दर्शन-मार्जन-जन्य पुण्य लाभ कदापि सम्भव नहीं । ये शास्त्रोक्त विधान के उल्लंघन के दोषी एवं अक्षम्य पाप के भागी होते हैं। गंगा स्वयं कहती है- ''मैं पास होते हुए भी दूर हूँ उनके लिये जो कर्म विक्षिप्त वाले हैं। मैं दूर होते हुए भी भक्तों के हृदय में सदा निवास करती हूँ। मैं केवल भक्ति के द्वारा ही ग्राह्य हूँ, न मैं ध्यान से लभ्य हूँ न दर्शन से।''

अदूरस्थापित दूरस्था कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ।

दूरस्थापि हृदिस्थाहं सदा भक्तिमताहि ।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यी न ध्यानान्न च दर्शनात् ।।[19]

गंगा सर्वतीर्थमयी है। पाषण्डयुक्त नैतिक मूल्य विहीन तीर्थयात्रा को भारतीय संस्कृति में कभी स्वीकार नहीं किया गया है। यद्यपि गंगा स्वर्गीय सुख की मूल है, किन्तु समग्र रूप में नीतिवान, आचारवान् मनुष्य ही उस अमोघ पुण्य के भागी होते हैं। ऐसा व्यक्ति ही भारतीय एकात्म के दर्शन को समझ पाता है तथा अपनी मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करता है।

यमुना माहात्म्य

भारतीय संस्कृति में आदिकाल से माहात्म्य कथन की परम्परा रही है। यह वेदों और पुराणों के पर्यालोचन से स्पष्ट है। वैदिक युग का अर्थवाद का सिद्धांत ही कालान्तर में महात्त्य शब्द से जाना गया। माहात्म्य परम्परा में प्रसिद्ध नदियों का माहात्म्य विशिष्ट स्थान रखता है। प्रायः सभी नदियों का अपना इतिहास है, माहात्म्य है। भारतीय संस्कृति की यह गौरवमयी परम्परा है कि सभी प्रसिद्ध नदियों का मानवीकरण न होकर देवीकरण हुआ। नदियां न केवल सुनती हैं, प्रसन्न होती हैं, अपितु अभीष्ट फल एवं सिद्धि देती हैं। वे मनुष्य को भौतिक सुख समृद्धि देने के साथ साथ उसे पारलौकिक सुख भी देती हैं।

पुराकाल में नदियों का महात्म्य तब प्रस्फुटित हुआ होगा जब तपती धूप में एक अज्ञात आवश्यकता से व्याकुल मनुष्य किसी नदी को देखकर उसके रसमय स्वरूप को पा कर प्रसन्न हुआ। उसके जल से तृप्त हुआ। यह तृप्ति की आवश्यकता प्यास थी और उसका निदान थी नदी। मनुष्य क्या, प्राणिमात्र ने उसका महत्व समझा। यह बात हमारे क्रान्तदर्शी ऋषियों के हृदय में पैठ गयी और उन्होंने वेदों से ले कर प्रायः समस्त पुराणों में में नदियों का महत्व दर्शाया। उन ऋषियों ने जिन प्रमुख नदियों का महात्म्य समझा और कहा उनमें यमुना अग्रगण्य है।

यमुना हिमालय में यमुनोत्तरी से निकलती है और प्रयाग पर्यन्त उत्तर भारत के एक बड़े भूखण्ड का निरन्तर अपने अमृतमय जलाभिषेक से धन्य करती हुई देवापगा गंगा को समर्पित होती है। अन्य नदियों के समान यह अपना अस्तित्व समाप्त नहीं करती अपितु ऐसा संगम करती है जो इतिहास में सर्वप्रसिद्ध है, जिसके कारण प्रयाग तीर्थराज है और अनादिकाल से त्रैलोक्य में पूज्य है। प्रयाग के तीर्थत्व का कारण इस स्थल का त्रैलोक्यपावनी यमुना का सुरसरिता गंगा से मिलन ही है।

ऋग्वेद में यमुना को असिता और गंगा को सिता कहा गया है और इन दोनों के संगम स्थान को बहुत महत्व प्रदान किया गया है।

सितासिते सरिते यत्र संगते यत्राप्लुतासो दिवुत्पतन्ति ।

ये वै नत्वं दि'सृजन्ति धीरास्ते जनासी अमृतत्वं भजन्तु ।।[20]

यमुना एक पवित्र नदी है। गंगा के समानान्तर बहने के कारण यह यमुना (युग्म में से एक) कहलाती है। इसका उल्लेख ऋग्वेद में तीन बार हुआ है। ऋग्वेदानुसार वित्सु एवं सुदास ने यमुना तट पर शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त की थी। अथर्ववेद में यमुना के अञ्जन त्रिककुद के साथ हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण एवं शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ भी यमुना को उद्धृत करते हैं। भारत की सात पवित्र नदियों में इसकी गणना है -

गङ्गे च यमुने गोदावरी सरस्वति ।

कावेरी नर्मदे सिन्धोर्जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु ।।[21]

यमुना कालिन्दी, सूर्यतनया, शमनस्वसा, तपनतुजा, कालिन्दकन्या, यमस्वसी, श्याामा, तापी, कलिन्दनन्दिनी, यमनी, यमी, कलिन्दशैलजा, सूर्यसुता आदि नामों से संस्कृत वाङ्गमय में जानी जाती है।

मार्कण्डय पुराण में लिखा है कि यमुना सूर्यकन्या और यमकी भगिनी है। यमुना की उत्पत्ति के संदर्भ में इस पुराण में कहा गया है कि सूर्यपत्नि ने सूर्य को चञ्चल दृष्टि से देखा। सूर्य के शाप से उन्होंने चञ्चल शरीरा नदी और यम को जन्म दिया।

ततः स चपलां दृष्टि देवीं चक्रे भयाकुला ।

विलुलितदृशं दृश्ट्वा पुनराह च तां रविः ।।

यस्माद्विलोलललितादृष्टिर्मयिदृष्टे त्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलां तनयां नदीं तां प्रसविष्यसि ।।
ततस्तस्यान्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ।
यमनश्च यमुना चैव प्रख्याता सुमहानदी ।।[22]

हरिवंश पुराण के अनुसार सूर्यमण्डल के तीव्र वेग से संज्ञा दगधांग होती है। उसकी सुन्दर कान्ति निखर उठती है। यम और यमी उसके गर्भ से यमज (जुड़वे) उत्पन्न हुए। उनका वर्ण काला था। हरिवंश पुराण में ही यमी के यमुनारूप में ही सशिद्धरत्व प्राप्ति की बात कही गयी है। देवी पुराण के 45वें अध्याय में भी यमुना के यम की भगिनी होने की बात लिखी है -

सर्वाणि हृदयस्थानि मंगलानि शुभानि च ।
ददाति चेप्सितान लोके तेन सा सर्वमन्गाला ।।
सन्गमाद् गमनाद् गंगा लोके देवी विभाव्यते ।
यमस्य भगिनी जाता यमुना तेन सा मता ।।

यमुना सभी प्रकार के शुभ, मंगल एवं हृदयगत अभीष्ट कामना की पूरक है, तभी लोक में सर्वमंगला है। ब्रह्पुराण के सागरोपाख्यान में भी यमुना को यम एवं शनि की भगिनी होने का गौरव प्राप्त है -

भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ।
तताार्यवीयसी या तु यमस्वसा यशस्विनी ।
अवभत् सर सरिष्छ्रेष्ठा यमुना लोकंपावनी ।।

इसलिये जनमानस में ऐसा विश्वास है कि यमुना स्नान करने वाले को यम से अर्थात् मृत्यु से भंय नहीं होता और न शनि जैसे प्रबल ग्रह की बाधा ही उसे सताती है।

बहुत प्राचीन काल से जन साधारण में इस नदी का माहात्म्य व्याप्त हुआ है। आर्य संस्कृति के उन्नायक वैदिक जन यमुना के किनारे उपनिवेश स्थापित कर यागादि सम्पन्न करते थे। ऋक्‌ संहिता के 5/52/17 मंत्र में लिखा है 'यमुनायमाधि श्रत मुंद राघो गव्यं मृजे नि राघो अश्व्यं मृजे'[23] अर्थात् मैं यमुना किनारे बैठ कर प्रसिद्ध गोधन प्राप्त करूँ।' यमुना किनारे की गायें वैदिक काल में भी श्रेष्ठ समझी जाती थीं। अतएव यमुना के किनारे कालान्तर में भगवान् श्रीकृष्ण का गोधन रक्षा और गोपालन स्वाभाविक लगता है।

ऋग्वेद के अन्य मन्त्र 10/75/5 में[24] यमुना के लिए आदरणीय सम्बोधन से यमुना के किनारे आर्यों के उपनिवेश की बात और यमुना का महात्म्य स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण (8/23),[25] शतपथ ब्राह्मण (13/5/11),[26] पंचविंश ब्राह्मण (9/4/11),[27] शांख्यायन श्रौतसूत्र (13/29/25),[28] कात्यायन श्रौतसूत्र (24/6/10),[29] शांख्यायन श्रौतसूत्र (10/19/9),[30] आश्वलायन श्रौतसूत्र (2/4/10)[31] आदि में यमुना के उल्लेख से यह प्रतीन होता है कि आर्य यमुना किनारे रहकर यागादि सम्पन्न करते थे।

यद्यपि हरिवंश पुराण से ज्ञात है कि यम और यमुना जन्म से काले थे तथापि श्रेष्ठ नदी के रूप में परिवर्तित यमुना का जल काला क्यों हुआ, इस सम्बंध में वामन पुराण के छठें अध्याय में उल्लेख है कि दक्ष के यज्ञ विनाश के बाद महादेव अत्यन्त दुखी हो इतस्ततः विचरण कर रहे थे। उस समय उन्हें पत्नी के विरह से दुःखी देखकर कुसुमायुध कामदेव ने उन्मादन अस्त्र चलाया। इस अस्त्र के प्रभाव से महादेव अत्यन्त उत्मत्त हो सती का बारम्बार स्मरण कर अत्यन्त व्याकुल हो उठे -

यदा दक्षसुता बहाद् सती याता यमक्षयम ।
विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचन ।।
ततो वृष्ध्वजं दृष्ट्वा कंदप।ः कुसुकायुधः ।
अपत्नीकं तदास्त्रेण उन्मादेनाभ्यताड्यत् ।।
ततः हतः शरेणाथ उन्मादेनाभिताडितः ।
विचचार तदोन्मत्तः काननानि सरांसि च ।।
स्मरन् सतों महादेवस्तथोन्मादेन ताड़ितः ।
न शर्म्म लेभे देवर्षे वाणविद्ध इस द्विपः ।।
ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरिते मुद ।
निमग्ने शंकरे चापे दग्ध्वा कृष्णत्वमागता ।।
तदा प्रभृति कालिन्द्यः दृगंजननिभं जलूम् ।
आस्पदं पुण्यतीर्थानां केशपाशमिवावनेः ।।

यमुना प्रयाग में अपनी सहचरी गंगा से मिलती है। व्यावहारिक दर्शन से स्पष्ट होता है कि प्रयाग तक गंगा का जल प्रायः श्वेत है किन्तु इसके बाद ईषत् श्याम हो जाता है। इसका कारण यमुना का प्राधान्य ही है। उसका वर्ण एवं अगाध जल अपना आस्तित्व खो ही नहीं सकता। 'प्राधान्येव व्ययदेशा भवन्ति' इसी आधार पर बड़ी सहचरी गंगा का ही नाम आगे सागत तक जाना जाता है। मत्स्य पुराण (108/32) में कहा भी गया है -

गंगा च यमुने चैत्र उभे तुल्यफले स्मृते ।
केवलं ज्येष्ठभावेन गंगा सर्वत्र पूज्यते ।।[32]

विष्णु पुराण के अनुसार स्वायम्भुव मनुपुत्र प्रियव्रततनय ध्रुव को देवर्षि नारद ने यमुना तीर के पवित्र मधुबन में जा कर तपस्या करने का निर्देश दिया और बताया

'पुण्यं मधुवन यंत्र सान्निध्यं नित्यपदा हरेः'।

ध्रुव ने इसी यमुना तट पर भगवद्दर्शन किया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण के अवतार के पूर्व से ही यमुना तट का माहात्म्य है। जन्माष्टमी व्रत में सुना जाता है कि पूर्व जन्म में तपस्या कर यमुना ने भगवान् के श्रीचरणों की प्रार्थना की थी। श्रीकृष्ण रूप में भगवान ने जब अवतार लिया और वसुदेव जी बालक कृष्ण को सिर पर रख कर यमुना पार कर नन्दजी के घर जा रहे थे तो यमुना श्री कृष्ण के स्पर्श के लिये व्याकुल हो बढ़ने लगी। कण्ठ तक जल पहुँचने पर वसुदेव जी घबड़ा उठे। उस समय शिशु रूप भगवान कृष्ण ने अपने चरण तत्काल नीचे बढ़ा दिये। चरण स्पर्श से कृतार्थ यमुना का वेग घटा और वसुदेव कुशल से यमुना पार कर नन्दजी के घर पहुँचे। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने शिशु काल से यमुना का स्पर्श कर उसे महिमामयी बनाया। भगवान् श्रीकृष्ण का यमुना प्रेम भागवत पुराण सहित अन्य कई पुराणों में वर्णित है। श्रीकृष्ण इसी तट पर खेले और बड़े हुए। श्रीकृष्ण के सम्पर्क के कारण यमुना का महत्व और बढ़ गया जैसे भगवान् राम के सम्पर्क से सरयू नदी का।

रामायण में राम वन-गमन के समय प्रयाग में पुण्यतोया यमुना तट की महिमा का उल्लेख है। सीता जी द्वारा राम के मंगल हेतु यमुना की प्रार्थना का वर्णन इस ग्रन्थ में है।

यक्ष्ये त्वां गोसहस्त्रेण सुराघटशतेन च ।
स्वस्ति प्रयागते रामे पुरीमिस्वाकुषलिताम् ।।
कालिन्दीमथ सीता तु याचमान कृतान्जलिः ।
तीरमेवाभिसम्प्राप्ता दक्षिणं वरवर्णिनी ।।[33]

तदनन्तर सीता यमुना तट पर स्थित शीतलचूछाय पवित्र श्यामवट को भी प्रणाम करती हैं। इस प्रकार भगवान् राम और सीता द्वारा भी यमुना को महत्व दिया जाना प्रमाणित है।

पद्‌म पुराण (उत्तर खण्ड 195/18-12) के अनुसार विष्णू को यज्ञ से प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले इन्द्र को वृहस्पति ने त्रैलोक्यपाविनी यमुना के तट पर यज्ञ करने का आदेश दिया था, क्योंकि यमुना स्मरण मात्र से स्वर्ग और उसके तीर पर मरने पर ब्रह्मपद प्रदान करती है।

यत्रास्ति यमुना पुण्या धन्या त्रैलोक्यपावनी ।
ददाति स्मरणे स्वर्ग मरणे ब्रह्मणः पदम् ।।
तत्तीरे यत्र देवेश केश्वं बहुभिर्मखैः ।
तदीच्छसि स्वीकायानां कल्याणं त्वं निरन्तरम् ।।[34]

विष्णु पुराण के अनुसार ज्येष्ठ मास की शुक्ल एकादशी को यमुना में स्नान कर दानादि धर्म कार्य व पिण्डदान, श्राद्ध आदि पितृकार्य करने से सब प्रकार का मंगल होता है। यमुना स्नानतर्पण व्रत यमुना महात्म्य को द्योतित करता है। इस व्रत के अनुसार यमुना जल में खड़े होकर यमराज के भिन्न-भिन्न नामों के साथ तिल मिश्रित जल की तीन तीन अञ्जलियों से उनका तर्पण करना चाहिए। इससे मनुष्य यम (मृत्यु) के भय से मुक्त रहता है।

यम-द्वितीया व्रत भी यमुना का स्मारक व्रत है। भविष्योत्तर पुराण के अनुसार कार्तिक शुक्त द्वितीया को यमराज के प्रीत्यर्थ यह व्रत किया जाता है। बहने अपने भाइयों की मृत्यु के देवता से रक्षार्थ यह व्रत करती हैं। इसे भ्रातृ-द्वितीया भी कहते हैं। यम द्वितीया के दिन यमस्वसा सूर्यतनया यमुना में स्नान करने का विधान

है। इससे यमराज प्रसन्न होते हैं। इस पर्व पर यमुना में स्नान पुण्यकारक माना गया है।

संगम में आठ मील दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित वीकरक्षेत्र में यमुना की जलधारा के मध्य उत्थित टेकरी पर एक मध्यकालीन मन्दिर है जिसे 'सुजावन देव' के नाम से जाना जाता है। वहां यमद्वितीया को विशाल जनसमूह स्नान कर शिवरूप सुजावन देव की आराधना करता है।

<u>त्रिवेणी रहस्य</u>

भारतीय संस्कृति में जल का अति विशिष्ट स्थान है। हमारे धर्मशास्त्रों में जगत के मूल तत्व का विवेचन करते समय जल को ही कारण माना गया है। वृहदारण्यकोनिष्द् (5/5/1) के अनुसार "जल से सत्य की उत्पत्ति हुई। सत्य से ब्रह्म का उद्भव हुआ। ब्रह्म से प्रजापति का उदय हुआ और प्रजापति से देवताओं की सृष्टि हुई।"[35]

> आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सम्यमसृजन्त सत्यं ब्रह्म प्रजापति प्रजापतिर्देवपास्ते देवाः सत्यमेवोपासते ।

गंगा और यमुना अपने जलीय वैशिष्टय के लिसे सर्वविदित हैं। देवात्मा हिमालय से निःसृत ये दोनो नदियां उत्तर भारत की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्था की रीढ़ हैं। इन नदियों के मिलन स्थली को विशिष्ट पवित्रता से युक्त माना गया है। इसके धार्मिक माहात्म्य की गाथाओ से भारतीय वाङ्गमय के अनेक स्थल भरे पड़े हैं। संगम के कारण ही प्रयाग तीर्थराज है। प्रयाग और संगम का सम्बंध अन्योन्याश्रित है, एक शरीर है तो दूसरा प्राण है। संगम विहीन प्रयाग की कल्पना प्राणहीन शरीर जैसी है। संगम प्रयाग का मर्मस्थल है। प्रयाग की धार्मिक

एवं सांस्कृतिक महत्ता गंगा और यमुना की पवित्र धाराओं के साथ निरन्तर प्रवहमान है। सभ्यता का मंगलमय प्रभात यहीं से आरम्भ होता है। यह संगम भारत की अनेक संस्कृतियों के संगम का प्रतीक है।

गंगा और यमुना का संगम प्राकृतिक और भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। देश में अनेक नदियों के संगम हैं किन्तु गंगा और यमुना का संगम अतुलनीय है। आदि काल से ही यह देव, दनुज और मानव सभी के आकर्षण का केन्द्र रहा है। महाकवि कालिदास इन नदियों के संगम स्थल की नैसर्गिक छटा से अभिभूत थे। उन्होंने इस स्थल की सुषमा का मनोहारी चित्र खींचते हुए इसके माहात्म्य का उल्लेख रघुवंश नामक महाकाव्य (13/54-58) में पांच छन्दों में किया है। असितवर्णा यमुना एवं श्वेतवर्णा गंगा जब परस्पर मिलती हैं तो कृष्णसर्प से अलंकृत भस्म लगाये हुए शिवजी के साक्षात शरीर की परिकल्पना साकार हो उठती है। यह है एक कवि हृदय द्वारा संगम का सजीव चित्रण। संगम की शोभा और उसके महत्व का वर्णन उन्हीं के शब्दों में -

क्वाचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रजीलै
मुॅक्तामयी यष्टिरिवनुविद्धा ।
अन्यत्र माला सितपंकजा-
मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ।।
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां
कादम्बसंसर्गवतीव पंक्ति ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेन ।।
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभि
श्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।।

अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा

रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ।।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव

भस्मान्गरागा तनुरीश्वरस्य ।

पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा

भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ।।

समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते

पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।

तत्वावबोधेन विनापि भूय

स्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ।।[36]

अर्थात् ''यमुना की तरंगों से मिश्रित प्रवाह वाली गंगा कहीं ऐसी शोभित होती है मानों कान्तिमयी इन्द्रनीलमणियों के साथ गूंथी हुई मोतियों की माला हो और ऐसी शोभायमान है मानों नीले कमलों के बीच-बीच में गुंथे हुए श्वेत पद्मों की हारावली हो। कहीं पर कृष्ण हंसों से मिली हुई मानसरोवर विहारी राजहंसों की श्रेणी के समान पृथ्वी देवी के मुखमण्डल पर लगे हुए श्वेत चन्दन के प्रलेपन के ऊपर कृष्ण चन्दन के द्वारा की हुई श्रृंगार रचना के सदृश प्रतीत होती है। कहीं पर गंगा छाया में स्थित अन्धकार के द्वारा चित्रित की हुई चांदनी के समान और कहीं शरद ऋतु की उस धवल मेघमाला के समान शोभा पा रही है, जिसके बीच में से कुछ कुछ आकाश का नीला अंचल दिखायी पड़ता है। कहीं पर यह कृष्ण सर्पों से विभूषित भस्म रूपी अंगराग से सुशोभित भगवान शिव के शरीर के समान शोभायमान हो रही है। इन समुद्र-पत्नियों अर्थात् गंगा और यमुना के संगम में स्नान करने वालों की आत्मा पवित्र हो जाती है और बिना तत्वज्ञान प्राप्त किए हुए भी शरीर छोड़ने के उपरान्त आवागमन से रहित हो जाते हैं।''

प्रयाग में गंगा और यमुना की धाराएं अलग-अलग दिखायी पड़ती हैं। यमुना का जल शरद् ऋतु से ले कर वर्षा काल तक एकदम नीले रंग का रहता है और गंगा का सफेद। वर्षा ऋतु में यमुना लाल जल वाली हो जाती है और गंगा का जल मटमैला हो जाता है। भिन्न-भिन्न रंगों वाली दोनो जलधाराओं के सम्मिलन का दृश्य मन को मोह लेता है। महाकवि मुरारि ने अनर्घराघव (7/125) में इस दृश्य का कितना यथार्थ वर्णन किया है -

एते भगवत्यो भूमिदेवानां मूलायतनमन्तर्वेदीं कृष्णगुरुमलयजमयमंग-
रागमिवान्योन्यस्य कुर्वाणे कलिन्दकन्यामन्दाकिन्यौ संगेच्छेत ।
हिमालयोत्संगसदाधिवासतो जातेव पाण्डुः प्रतिभाति जाह्नवी ।
निदाघभानोः पितुरंकलालनात्कृतेव काली यमुना च दृश्यते ।।[37]

अर्थात् ''यह दोनों ब्राह्मणों के आदिम पासस्थान अन्तर्वेदी नामक प्रान्त के पूर्व भाग अपने पिता सूर्य की गोद में दुलारी जाने के कारण यमुना काली हो गयी हो ऐसा प्रतीत होता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने संगम की मनोहारी शोभा का इस प्रकार वर्णन किया है -

सोहे सितासित को मिलबो, तुलसी हुलसैं हिय हेरि हिलोरे ।
मानो हरे तृन चारु चरें वगरे सुरधेनु के धौल कलोरें ।।

अर्थात् ''यमुना की नीली हिलोरें गंगा की श्वेत तरंगों से मिलकर इस तरह उनमें लीन हो जाती है जैसे इधर-उधर कामधेनु के सफेद रंग के छिटके हुए बछड़े हरी घास पर चल रहे हों।

श्वेत-श्याम नदियों के संगम की रमणीयता वर्णनातीत है। प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम क्षेत्र में बहुत बारीक बालू के चमकते हुए छोटे-छोटे कण ऐसे जान पड़ते हैं मानो अति छोटा रूप धर कर दिव्य देवता सन्धिरथल की सेवा कर रहे हों।

त्रिवेणी जल की पीली, सफेद और काली चमक ऐसी प्रतीत होती है मानों भरतखण्ड रूपी राजा ने कस्तूरी, चंदन और केसर घिस कर मस्तक पर तिलक लगाया हो। हिन्दी साहित्य में 'कठिन काव्य के प्रेत' विरुदधारी कवि केशव इसकी निराली सुषमा देखकर भाव-विभोर हो उठे और रामचन्द्रिका (1/32-33) में कहते हैं-

भवसागर की जनु सेतु उजागर सुन्दरता सिगरी बस की।
तिहुँ देवन की दुति सी दरसै गति सोखै त्रिदोषन के रस की।
कहि केशव वेदत्रयी मति सी परितापत्रयी तल को मसकी।
सब बर्दे त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेणिहिं केतु त्रिविक्रम के जस की।

"यह त्रिवेणी मानों भवसागर के लिए प्रकट सेतु-रूप है। इसने समस्त शोभा को अपने वश में कर लिया है। यह तीनों देवों की द्युति-सी दीख पड़ती है। (ब्रह्मा की द्युति पीली-सी सरस्वती, विष्णु की द्युति कृष्ण-सी यमुना और शिव की द्युति सफेद-सी गंगा है) और वात, पित्त तथा कफ-जनित दोषों से पैदा मृत्यु-दुःख की गति को सोखती है (अर्थात त्रिवेणी-सेवन से त्रिदोष में पड़कर नहीं मरना पड़ता। इनका सेवक सदेह स्वर्ग को जाता है)। यह त्रिवेणी तीनों वेदों की मति से पवित्र है और तीनों पापों को दबाकर पाताल को भेज देती है। त्रिलोक के लोग तीनों कालों में इसकी वन्दना करते हैं, क्योंकि यह (गंगा के सम्बन्ध से) त्रिविक्रम के यश की पताका है"।

संगम का इतना सुन्दर चित्रण कदाचित ही किसी ने किया हो। वे आगे कहते हैं-

भूतल की वेणी सी त्रिवेणी शुभ शोभिजति,
एक कहैं सुरपुर मारग बिभात है।
एक कहैं पूरण अनादि जो अनन्त कोऊ,
ताको यह केशोदास द्रवरुप गात है।
सब सुखकर सब शोभाकर मेरे जान,

कौनो यह अद्‌भुत सुगंधि अवदात है।
दरस परस ही ते थिर चर जीवन की,
कोटि-कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात है।

"यह त्रिवेणी पृथ्वीतल की चोटी-सी सोहती हैं कोई कहता है कि यह सुरपुर की सड़क-सी है। कोई कहता है कि परिपूर्ण, अनादि और अनन्त ईश्वर का जलमय शरीर ही है। यह त्रिवेणी सब सुख और शोभा को पैदा करने वाली है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह कोई अद्‌भुत और शुद्ध निर्मलकारी सुगन्ध है, जिसके दर्शन और स्पर्श मात्र से चराचर जीवों के असंख्य जन्मों की गन्दगी (पाप) मिट जाती है।"

प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम को त्रिवेणी भी कहा जाता है क्योंकि मान्यता है कि सरस्वती नदी यहाँ अन्तःसलिला हो कर मिलती है। किन्तु प्रयाग में सरस्वती नदी गंगा और यमुना के साथ मिलती है इस बात की पुष्टि वेद, महाभारत, रामायण और कालिदास प्रभृति संस्कृत साहित्य के कवियों की रचनाओं से नहीं होती। महाभारत में गंगा-यमुना के संगम का उल्लेख कई बार आता है किन्तु कहीं भी गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम का उल्लेख नहीं है। यथा-

यमुना गंगया सार्धे संगता लोकपावनी ।
गंगायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।।
चतुर्विद्ये च यत्पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत् ।
स्नात एव तदाप्नोति गङ्गयमुनसंगमे ।।[38]

रामायण में कई बार गंगा और यमुना की सन्धि का उल्लेख प्राप्त हो होता है।

यत्र भागीरथीं गंगा यमुनाभिप्रवर्तते ।
जग्मुस्तं देशमुद्दिश्य विगाह्य सुमहद्वनम् ।।

गंगायमुनयोः सन्धिमासाद्य मनुजर्षभौ ।

कालिन्दीमनुच्छेतां नदी पश्चान्मुखाश्रिताम् ।।[39]

मध्यकालीन अभिलेखों एवं पूर्ववर्ती पुराणों में भी केवल गंगा-यमुना के संगम का जिक्र आता है। कूर्म पुराण (1/37/1-2) में कहा गया है कि प्रयाग में यमुना-गंगा में निम्नगा होकर समाहित हुई है और दोनों नदियों का जल मिलकर आगे की ओर प्रवाहित होता है-

तपनस्य सुता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।

समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा ।

येनैव निःसृता गंगा तेनैव यमुना गता ।

योजनानां सहस्त्रेषु कीर्तनात् पापनाशनी ।।[40]

नारदीय पुराण (2/63/5) प्रयाग में गंगा के पश्चिमाभिमुखी होकर यमुना से मिलने की बात करता है।

पश्चिमाभिमुखाी गंगा कालिन्द्या सह संगता ।

हन्ति कल्पशंत पापं सा माघे देवि दुर्लभा ।।[41]

वस्तुतः त्रिवेणी की कल्पना काफी बाद की जान पड़ती है। प्रयाग में सरस्वती नदी का उल्लेख मध्यकाल के पूर्व नहीं मिलता। यह उत्तरवर्ती पुराणों, संस्कृत निबन्धों और भाषा साहित्य में ही संकल्पित है। वैदिक सरस्वती नदी हिमालय से निकलकर पश्चिम में समुद्र से मिलती थी। ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में यह नदी मरूभूमि में विनशन नामक स्थान में लुप्त हो गयी। इसका उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण (24/17/1)[42] में मिलता है- 'सरस्वती विनशने दीक्षन्ते'। हिसार के पास विनशन तीर्थ में सरस्वती नदी के अदृश्य होने का जिक्र महाभारत (3/82/111) में भी आया है। यथा-

ततो विनशनं गच्छेन्नियतो नियताशनः।

गच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती।।[43]

पुराणों में सरस्वती नदी का वर्णन प्रस्रवण से समुद्र तक, विनशन में लुप्त हो जाने तथा कई स्थानों में पुनः प्रकट और पुनः लुप्त होते हुए, सौराष्ट्र में सोमनाथ के पास समुद्र में मिल जाने का प्राप्त होता है। विनशन मध्यप्रदेश की पश्चिमी सीमा है और प्रयाग को इस भूखण्ड की पूर्वी सीमा बताया गया है। सरस्वती पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली नदी थी जैसा कि ऋग्वेद (7/95/2) की इस ऋचा से स्पष्ट है कि हे सरस्वती ! तू पूर्व पर्वत से निकल कर पश्चिम सागर में गिरती है-ऐकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात।"[44] पश्चिम की ओर बहती हुई यह नदी विनशन में भूगर्भा हो जाती है। प्रयाग की ओर मुड़ने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। प्रयाग में इसके भौतिक स्वरूपों को स्वीकार करना सभी नैसर्गिक नियमों को तिलांजलि देना है। गति दिशा बदलने हेतु गतिरोध आवश्यक है। प्रागैतिहासिक समय से आज तक पश्चिमवाहिनी सरस्वती नदी के मार्ग परिवर्तित कर प्रयाग आने का कोई पुष्ट एवं विवेकसम्मत कारण नहीं है। प्रयाग इसके प्रवाहमार्ग के विरुद्ध दिशा में है और विनशन से सैंकड़ो मील दूर है। विनशन से 30 से 50^0 का कोण बनाकर सरस्वती नदी के प्रयाग की ओर यानि विरुद्ध दिशा में बहने के लिए किसी विशाल गतिरोध का होना आवश्यक है। इस गतिरोध की उपस्थिति का कोई भूगर्भीय एवं भौगोलिक प्रमाण नहीं है। ऐतिहासिक गवेषणा में श्रद्धा एवं भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। सरस्वती नदी की विद्यमानता सिद्ध नहीं की जा सकती है।

वैदिक काल में सरस्वती एक अति पवित्र नदी थी जिसके तट पर आर्य संस्कृति का उद्‌भव एवं विकास हुआ। इसके तट पर ऋषियों ने आश्रमों की स्थापना करके वैदिक धर्म का प्रचार किया। इस सरस्वती के किनारे वेदों की रचना हुई।

इसके तट पर यज्ञों का सम्पादन हुआ। वैदिक वाङ्गमय में इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं कि सरस्वती नदी अधिकृत करके मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने सस्वर स्त्रोत पाठ किया। वास्तव में सरस्वती नदी यज्ञ जैसे पुण्य कर्म करने तथा ज्ञान प्राप्ति जैसे कठोर तप करने का प्रतीक थी। जव इस नदी का जलप्रवाह पृथ्वी में विलीन हो गया तो इसके किनारे गुंजायमान होने वाला सामगान, उर्ध्व गतिमान यज्ञ-धूम्र, वेगवान रथों की गड़गड़ाहट और आश्रमों की सजीवता नष्ट हो गयी। वैदिक सभ्यता के उन्नायक सारस्वत प्रदेश को छोड़कर पूर्व के क्षेत्रों में बिखर गये। किन्तु वे सरस्वती की छवि से मुक्त न हो सके। यह नदी भारतीय मनीषा की प्ररेणा-स्त्रोत बनी रही। जैसे आज बिना गंगाजल के कोई भी धार्मिक कृत्य नहीं होता वैसे ही बिना सरस्वती की प्रतिष्ठा के किसी स्थान की पवित्रता को आर्यो के लिए स्वीकार करना असम्भव था। इसीलिए हम सरस्वती को काशी, प्रयाग, पुष्कर आदि तीर्थों में प्रच्छन रूप से उपस्थित पाते हैं। वस्तुतः प्रयाग में सरस्वती नदी का कोई प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता।

प्रयाग का नामकरण यहाँ प्रकृष्ट यज्ञों के आयोजनों के कारण हुआ। प्रयाग के यजनभूमि होने की सार्थकता यज्ञों से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई सरस्वती नदी की कल्पना के बिना अधूरी रहती। इसीलिए पौराणिक धर्म के संवर्तन काल में वैदिक स्वचारधारा का निर्वाह करते हुए पौराणिकों ने इस तीर्थ की ओर श्रद्धालु जन-मानस को आकर्षित करने के लिए यहाँ सरस्वती की परिकल्पना किया। प्रयाग यज्ञपरक धार्मिक परिवेश के कारण ही इसके साथ सरस्वती का सम्बन्ध बताया गया है। यहाँ सरस्वती की संकल्पना एक वैचारिक प्रक्रिया मात्र है, जिसके माध्यम से वैदिक और पौराणिक तत्त्वों को सुसंगत बनाने की चेष्टा की गयी ।

प्रयाग में सरस्वती आकार-सापेक्ष नहीं है। यह पौराणिक चिन्तन का परिणाम है। प्रयाग में वैदिक वारिवाहिनी को विदर्भित घोषित करके वैदिक मान्यताओं

को पौराणिक परम्पराओं से सन्निबद्ध करने का प्रयास किया गया है। इसके द्वारा पौराणिक चिन्तन इस विशिष्ट तीर्थ को अति पावन बनाना चाहते थे। इसकी अनुगूँज नारदीय पुराण (2/63/23) के इस कथन में मिलती है कि सित और असित धाराएँ जहाँ सरस्वती द्वारा विदर्भित होती हैं वह ब्रह्म द्वारा निर्मित ब्रह्मलोक का मार्ग है-

सितासिता तु या धारा सरस्वत्या विदर्भिता।
तं मार्ग ब्रह्मलोकस्य सृष्टिकर्ता ससर्ज वे।।[45]

पद्म पुराण (6/23/34) में कहा गया है कि सरस्वती गंगा और यमुना के संगम में अक्षत यज्ञ के रूप में विद्यमान है। इस त्रिवेणी संगम पर प्राण त्याग करने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। स्कन्द पुराण (4/7/64) के अनुसार यहाँ सरस्वती रजोरूपा है, यमुना तमोरूपा है, गंगा सत्त्वगुण की प्रतीक है। इन तीनों का संगम निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है यथा-

सरस्वती रजोरुपा तमोरुपा कलिंदजा।
सत्त्वरुपा च गंगात्र नयन्ति ब्रह्मनिर्गुणम्।।[46]

प्रयाग में सरस्वती अन्तर्भावित है। गंगा और यमुना के साथ इसका मिलन ब्रह्मपद प्राप्त कराने के लिए है। प्रयाग ब्रह्मा की वेदी है। सरस्वती ब्रह्मा प्रेयसी अथवा पुत्री है। प्रयाग का तीर्थराजस्व बिना सरस्वती के मुकुटहीन राजा जैसा होता है। वैदिक धर्म में यज्ञ की प्रधानता थी। पौराणिक धर्म में प्रमुख स्थान तीर्थ और तीर्थयात्रा को मिला। पौराणिकों ने प्रयाग में याज्ञिक विधानों एवं तीर्थयात्रा में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की, सरस्वती के विदर्भण द्वारा तीर्थ सम्बन्धी भावना के गति विस्तार में योगदान दिया और गंगा-यमुना की संगत धारा को विदर्भित करने वाले सरस्वती निर्मित मार्ग को ब्रह्मलोक से सम्बन्धित कर दिया।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयाग में केवल गंगा और यमुना का संगम होता है। सरस्वती नदी के विषय में कल्पना कर ली गयी कि वह भी प्रयाग में अन्तर्हित भाव से बहती है। कुछ लोगों का मत है कि गंगा-यमुना की संयुक्त धारा का ही नाम सरस्वती है। अन्य लोगों का विचार है कि पहले प्रयाग में गंगा-यमुना संगम स्थल पर ससुरखदेरी नामक एक छोटी सी नदी आकर मिलती थी, जिससे त्रिवेणी नाम की उत्पत्ति हुई। ध्यातव्य है कि प्राचीन काल में गंगा-यमुना का संगम बलुआघाट के पास होता था। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर आज भी ससुरखदेरी नामक एक बरसाती नदी यमुना में मिलती है। किन्तु मात्र गंगा और यमुना के संगम को भी त्रिवेणी कहा सकता है। जहाँ तीन वेणियाँ (जलधाराएँ) मिलती हों उस स्थान को त्रिवेणी संगम कह सकते हैं। प्रयाग में प्राचीन काल की भाँति आज भी केवल गंगा-यमुना का ही संगम दिखाई देता है और संगम पर तीन वेणियाँ स्पष्ट परिलक्षित होती है- एक वेणि गंगा की धारा की, दूसरी वेणि यमुना की धारा की, तीसरी वेणि गंगा-यमुना की सम्मिलित धारा की। यदि प्रयाग में गंगा-यमुना के साथ किसी सरस्वती नाम की नदी का संगम होता तो फिर इस संगम को त्रिवेणी न कह कर चतुर्वेणीं संगम कहना पड़ता। यह बात इस प्रकार भी भली-भाँति समझ में आ सकती है कि जब एक सड़क में दूसरी सड़क आकर मिलती है तो इस स्थान को द्विपथ (दोराहा) नहीं अपितु त्रिपथ (तिराहा) कहते है। स्पष्टतः प्रयाग में केवल दो ही नदियों का संगम होता है। अदृश्य रूप से जिस सरस्वती की प्रयाग में उपस्थिति है वह नदी नहीं अपितु ज्ञान है। सरस्वती देवी है ज्ञान-विज्ञान की । माघ मास में संगम का बालुकामय प्रान्तर कथा-प्रवचन तथा ज्ञान की चर्चाओं से ओत-प्रोत हो जाता है। माघ महीने में गंगा-यमुना सरस्वती के संगम की परिकल्पना साकार हो उठती है, जिसे शब्द दिया है गोस्वामी तुलसीदास ने-

भरत वचन सुनि माँझ त्रिवेनी।
भइ मृदु बानि सुमंगल देनी।

पुराणों में लिखा गया है कि इस भू-लोक में प्रयाग में माघ मास के स्नान का सुयोग प्राप्त होना सर्वथा दुलर्भ हैं। पहले तो माघ मास में प्रयागराज का दर्शन तथा तीर्थाटन ही असहज है, यदि माघ मास में वहाँ प्रतिदिन स्नान किया जाय तो उससे मनुष्य को अत्यन्त पुण्य फलों की प्राप्ति होती है। करोड़ों गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, प्रयाग में माघ मास के स्नान से वह फल सहज ही सुलभ हो जाता है। इसी प्रकार अश्वमेघ करने से जो फल होता है वही फल माघ स्नान में होता है। संगम में माघ मास के स्नान से मनुष्य की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और उसको दिव्यधाम प्राप्त होता है।

प्रयाग स्नान के लिए सभी तिथियाँ और सभी काल शुभ बताये गये हैं किन्तु यदि माघ मास और विशेष रूप से माघ की मकर संक्रान्ति को स्नान किया जाय तो उसके फल का कोई अंत नहीं है।

पुराणें में एक मत से यह निर्देश किया गया है कि मकर संक्रान्ति के दिन प्रयाग में गंगा-यमुना में स्नान तथा दान-धर्म करने से महत् पुण्य का अर्जन होता है। यही कारण है कि अत्यन्त पुरातन काल से प्रयाग में मकर संक्रान्ति के दिन देश के कोने-कोने से आकर विभिन्न मतावलम्बी जनता जिनमें धार्मिक, धनिक, विद्वान और महात्मा सभी सम्मिलित होते है, वे संगम में स्नान कर पुण्य लाभ करते हैं। बांध के नीचे गंगा-यमुना तट पर उसी दिन से कल्पवासी एक महीना कल्पवास करते हैं। प्रति दिन गंगा स्नान करते हैं और कथा-वार्ता के अलावा राम तथा कृष्ण की लीलायें देखते हैं। यहाँ माघ भर लगभग 25 लाख श्रद्धालु, दूकानदार, प्रशासन आदि डेरे ओर झोपड़ियों में रहते हैं। अतः एक अस्थायी नगर वहाँ बस जाता है।

महाकुम्भ, कुम्भ तथा अर्द्धकुम्भ

माघ महीने में सूर्य तो मकर राशि में रहता है, परन्तु बारह वर्ष में एक बार बृहस्पति माघ में वृष राशि में संचरण करता है। उसी काल में प्रयाग में कुम्भ

स्नान का पर्व पड़ता है। मकर संक्रान्ति या पौष पूर्णिमा से यह मेला प्रारम्भ होता है और मेले का सरकारी प्रबंध शिवरात्रि तक रहता है। कल्पवासी और धार्मिक संस्थाओं के कार्यक्रम प्रतिवर्ष की तरह पूरे महीने चलते ही है परन्तु बड़े-बड़े महात्मा मकर संक्रान्ति के पहले आते हैं और बंसत का स्नान कर चले जाते हैं। उस अवसर पर प्रति वर्ष वहाँ डेरा लगाने वाले साधु-सन्यासी, धर्मप्रचारक और कल्पवासियों के अतिरिक्त देश के सभी प्रमुख अखाड़ों का जमघट होता है जिनकी सवारियाँ (जुलूस) मकर संक्रान्ति, मौनी अमावस्या और बसंत पंचमी को संगम स्नान के लिए शाही स्नान से जाती हैं। उनके स्नान करने के क्रम इस प्रकार हैं – पहले निर्वाणी, फिर निरंजनी, जूना, वैरागी, दिगम्बर, निर्मोही, उदासी और अन्त में निर्मल अखाड़े के साधु स्नान करते हैं। जुलूस में हाथी, बैण्ड, झंडे आदि सभी शाही अंग होते हैं। उस समय देश के कोने-कोने से करोड़ों यात्री त्रिवेणी स्नान के लिए आते हैं। साथ ही विदेशों से भी हजारों लोग उस मेले का आनन्द लेने के लिए आते हैं।

प्रत्येक कुम्भ के बीच छः वर्षों में अर्द्ध-कुम्भ का मेला लगता है। उसमें सब कुछ वही रहता है, वैसा ही प्रबंध रहता है, केवल भीड़ कम होती है।

कुम्भ का अर्थ घड़ा है। पुराणें की कथा के अनुसार समुद्र-मंथन के अन्त में अमृत का घड़ा निकला जिसे देवता लेकर भागे और दानवों ने उनका पीछा किया। बारह रात्रि-दिवस की उस दौड़ में कुम्भ चार स्थानों पर गिर पड़ा था जिससे कुछ अमृत छलक पड़ा था। उन्हीं चार स्थानों पर अर्थात् हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में प्रति बारह वर्षों में कुम्भ का पर्व पड़ता है। अर्द्धकुम्भ का पर्व केवल प्रयाग और हरिद्वार में ही होता है।

ऐसे तो पौराणिक काल से ही प्रयाग स्नान का महत्व प्रतिपादित है, किन्तु कुम्भ या अर्द्धकुम्भ का पहला ऐतिहासिक वर्णन सातवीं शताब्दी में महाराजा हर्ष के

समय का मिलता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री हेनसांग ने अपनी यात्रा वर्णन में उसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार प्रति छः वर्षों में महाराजा हर्षवर्धन प्रयाग आ कर अपना सम्पूर्ण एकत्रित धन गंगा तट पर निवास कर बौद्धों, ब्राह्मणें और अन्य लोगों में वितरित कर देते थे। वे यहां लगभग 75 दिन निवास करते थे। आज भी त्रिवेणी क्षेत्र में दान की महिमा समझ कर देश के धनाढ्य लोग कुम्भ और अर्द्धकुम्भ में लाखों रुपयों का दान कर देते हैं।

प्रयाग राज को तीर्थराज भी कहते हैं। गंगा-यमुना और सरस्वती (अंतःसलिला सरस्वती) के संगम पर खड़े हो कर अकबर को अल्लाह के नूर का ज्ञान हुआ, इसलिए प्रयाग में स्थित अक्षयबट के स्थान का नाम अल्लाहाबाद (ईश्वर का स्थान) रखा। अंग्रेजों की जीभ मोटी थी इसलिए अल्लाहावाद उच्चारण न कर पाये और उन्होंने इलाहाबाद उचारण किया। तबसे प्रयाग का नाम इलाहाबाद पुकारा जाने लगा। प्रयाग नाम वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक तथा काव्य ग्रन्थों में मिलता है। प्रयाग वैदिक युग से ही विद्यापीठ (यूनिवर्सिटी) रही है। आयुर्वेद ग्रन्थों में भारद्वाज के गुरुकुल में हर बारह वर्ष आयुर्वेद विदों की एक माह व्यायी संगत होने का विवरण मिलता है। वह महाकुम्भ पर्व ही होता था। कुम्भ हर '12' वर्षों बाद होता है। जब 12वां कुम्भ होता है उसे 'महाकुम्भ' या 'पूर्णकुम्भ' कहते हैं यानि 12 ॰ 12 '144' वर्षों में महाकुम्भ होता है।

कुम्भ और महाकुम्भ नासिक, उज्जैन तथा हरिद्वार में भी होते है। मगर प्रयाग के कुम्भ का महत्व इन सबसे बड़ा है, क्योंकि प्रयाग में गंगा यमुना तथा अदृश्य सरस्वती का संगम होता है। दूसरा कारण भारतवर्ष उत्तरार्द्ध में है। पृथ्वी मकर संक्रान्ति के दिन से सूर्य को सिर झुका कर प्रणाम करती हुई छः माह तक सूर्य नारायण की वंदना करती है।

जब सूर्य मकर राशि में, बृहस्पति वृष राशि में हो तब प्रयाग में कुम्भ होता है। सूर्य और मकर विष्णु के प्रिय हैं तो वृष शिवजी का वाहन है, चन्द्र और गंगा शिव के शीश पर विराजमान हैं। अतः वैष्णवों और शैवों के लिए प्रयाग कुम्भ सबसे महत्व वाला है। सभी स्नानों में माघ की अमावस्या के दिन का स्नान सबसे तहत्वपूर्ण माना गया है। इसे मौनी अमावस्या कहा गया है। प्रयाग पर मकर संक्रान्ति, बसंत पंचमी, माघ पूर्णिमा और महाशिवरात्रि भी बड़ी हैं। माघ अमावस्या के दिन चन्द्र और सूर्य दोनों मकर राशि पर होते है। मकर मां गंगा का वाहन है, चन्द्र शिव को प्यारा है, यमुना सूर्य-पुत्री है।

आदि शंकराचार्य ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व माघ मौनी अमावस्या और शिवरात्रि पर नागा संतों को प्रथम स्नान का अधिकार इसलिए दिया है। यह परम्परा अन्य कुम्भों में भी मान्य मानी जाती है। इसका विधान आदि शंकराचार्य ने किया था।

कुम्भ बारहवें वर्ष में ही क्यों मनाया जाता है ? यह क्या कपोल-कल्पित है? जी नहीं, हिन्दु धर्म एक वैज्ञानिक आधार पर खड़ा हुआ धर्म है। इसाई तथा इस्लाम जन्म के पूर्व से ही यह कुम्भ मनाया चला आ रहा है। (यह ज्योतिषाशास्त्रानुसार मनाया जाता है) ज्योतिष वास्तव में खगोल शास्त्र (Astronomy) है। ज्योतिष शास्त्र में काल गणना के लिए सूर्य, चन्द्र और राशियों को आधार बनाया गया है। इसी के साथ पृथ्वी पर प्रभाव डालने वाले ग्रह हैं - सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। पुराणों में उल्लिखित रूपकों में कथा को काल्पनिक रूप दे कर भले ही वर्णन किया गया हो, परन्तु उसका आधार ज्योतिष शास्त्र है। केवल अंग्रजी शिक्षा का चश्मा या मार्क्सवादी चश्मा पहन कर देखने वाले ही हिन्दु पर्वों को मिथ्या, कपोलकल्पित, बेकार कह सकते हैं। खगोल शास्त्री की नज़र वाला चश्मा पहन कर तथा एक निश्चित अघोषित तिथि पर स्थान विशेष पर लोगों के एकत्र

होने (करने) का विधान तो हिन्दू धर्म में ही है जो मनुष्य के ज्ञान को विश्लेषित कर ग्रहण करने के लिए कहता है अर्थात् हिन्दू धर्म विज्ञान सम्मत है।

पौष-पूर्णिमा सम्वत् 2057 वि0 दिनांक 9 जनवरी 2001 को तीर्थराज प्रयाग में वार्षिक माघ मेले का प्रारम्भ हो गया है। इसी के साथ बारह-वर्षीय महाकुम्भ मेला भी सौरमास से महामास का प्रारम्भ मकर संक्रान्ति 14 जनवरी 2001 कुम्भ संक्रान्ति 13 फरवरी 2001 तक होगा। मकर राशि में सूर्य के प्रवेश उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। हिन्दु पंचांग के अनुसार इसे तिल संक्रान्ति भी कहते हैं क्योंकि इस दिन में दिनमान का समय एक तिल के बराबर प्रतिदिन वढ़ने लगता है। दिन बड़े होने लगते हैं, रातें छोटी होने लगती हैं।

<u>ज्योतिष काल गणना का क्रम</u>

श्री सूर्य 12 राशियों के चक्र की परिक्रमा 365 दिन 5 घण्टा 48 मिनट में पूर्ण करते हैं। इसे आधुनिक वैज्ञानिक ''पृथ्वी परिभ्रमण'' कहते हैं। चन्द्रमा 23 दिन 7 घण्टा और 43 मिनट में उस राशि चक्र की परिक्रमा कर लेते हैं। इसे चन्द्रमा का ''नक्षत्रमास'' कहते हैं। स्थूल रूप से सूर्य और चन्द्रमा तो प्रतिवर्ष निर्दिष्ट राशियों पर उपलब्ध हो जाते हैं, परन्तु देवगुरू बृहस्पति इस राशि चक्र का भ्रमण 11 वर्ष 10 मास 14 दिन 20 घण्टों में पूर्ण करते हैं। बार्हस्पत्य वर्ष सामान्य रूप से औसतन 361 दिन का होता है। इसलिए बृहस्पति पुनः उसी राशि पर 12वें वर्ष ही आते हैं। इसलिए बृहस्पति भ्रमण के आधार पर ''कुम्भ पर्व'' एक स्थान पर पुनः 12 वर्ष बाद पड़ता है।

<u>चार कुम्भ चार योग</u>

स्कन्दादि पुराण में कहा गया है :-

''सूर्येन्दु गुरू संयोगात्र यत्र राशौ यस्य वत्सरे ।
सुधा कुम्भ प्लवे भूमौ कुम्बो भवतिनान्यथा ।।''[47]

अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, गुरू का संयोग जिस राशि में जिस वर्ष में सुधा कुम्भ भूमि पर रखते समय हुआ, उन्हीं संयोगों में वहाँ कुम्भ पर्व होता है। ये चार योग इस प्रकार हैं-

1- <u>हरिद्वार</u> - सूर्य मेष राशि में और बृहस्पति कुम्भ राशि में होने पर हरिद्वार में कुम्भ पर्व होता है। मुख्य स्नान "मेष संक्रान्ति" का होता है। पंजाब में इस दिन को "वैशाखी" कहा जाता है। बंगाल में इसे पहला बैशाख कहते हैं। असम में रंगाली बिहू और मणिपुर मी वैष्णव चैरा ओबा मनाते हैं। इस दिन से सौर वैशाख मास का आरम्भ होता है। यह दिन प्रायः 13 अप्रैल को और कभी कभी 14 अप्रैल को पड़ता है। दूसरा स्नान रामनवमी और अन्तिम स्नान चैत्र पूर्णिमा को होता है।

2- <u>प्रयाग</u> - सूर्य मकर राशि में और बृहस्पति वृष राशि में होने पर प्रयाग की अमावस्या (मौनी अमावस्या) का होता है। अन्य स्नान मकर संक्रान्ति, बसंत पंचमी, माघ-पूर्णिमा और महा-शिवरात्रि के होते हैं। माघ अमावस्या को चन्द्र और सूर्य दोनों मकर राशि में होते हैं। प्रयाग में कुम्भ के छठे वर्ष अर्द्धकुम्भ भी होता है। महाकुम्भ पर इस दिन बृहस्पति भी मकर राशि पर होता है।

3- <u>उज्जैन</u> - सूर्य मेष और बृहस्पति सिंह राशि में होने पर उज्जैन में "महाकुम्भ" होते हैं। सिंह राशिस्थ बृहस्पति के कारण इसे यहां "सिंहस्थ" भी कहते हैं। मुख्य स्नान "वैशाखी पूर्णिमा" का होता है। अन्य स्नान "अक्षय तृतीय", "वैशाखी अमावस्या" के होते हैं।

4- <u>नासिक</u> - जिस वर्ष उज्जैन में महाकुम्भ होते हैं उसी वर्ष नासिक में भी कुम्भ होता है। दोनों के बीच सात महीनों का ही अन्तर होता है।

<u>कुम्भकोणम्</u> - इन चार स्थानों के अतिरिक्त कुम्भ एक अल्पज्ञात स्थान सुदूर दक्षिण में तमिलनाडू के कुम्भकोणम् में होता है। यह भी सिंह राशि के बृहस्पति में होता है। मुख्य स्नान माघी पूर्णिमा का होता है। सम्भवतः यह हमारा सबसे पुराना कुम्भ पर्व है,

जिसका प्रारम्भ कलियुग के प्रारम्भ से माना जाता है। यह लगभग 5000 वर्ष पुराना कुम्भ पर्व है।

प्रयाग की भौगोलिक स्थिति के परिचायक पुराणों में पर्याप्त साक्ष्य विद्यमान हैं। ''मत्स्यपुराण'' (108/9-10) तथा अन्य पुराणों मे कहा गया है कि - 'प्रयाग मण्डल' की परिधि पाँच योजन विस्तृत है तथा ''कूर्मपुराण'' (2135/4) में भी कहा गया है कि-

पन्चयोजनविस्तीर्ण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रयागं प्रथितं तीर्थ यस्य माहात्म्यभीरितम् ।।

तीनों लोकों में विश्रुत इस प्रजापति प्रयाग की सीमाओं का उल्लेख करते हुए ''मत्स्यपुराण'' (104/5) के एक अन्य संदर्भ में कहा गया है कि - ''पूर्व में प्रतिष्ठानपुर का कूप, उत्तर में बासुकी का कूप, पश्चिम में कंबलनाग तथा अश्वतर नाग और दक्षिण में बहुमूलक नाग''[48] प्रयाग की ये चतुर्दिक सीमाएं हैं -

आप्रयाग प्रतिष्ठात् यत्पुरा बासुके ह्रदात् ।
कम्बलाश्वतरों नागो नागश्च बहुमूलकः ।।
एतत्प्रजायते क्षेत्रं भिृषु लोकेषु विश्रुतम् ।

निबंधकार वाचस्पति मिश्र ने ''तीर्थ चिन्तामणि'' (पृष्ठ 23) प्रयाग क्षेत्र के तीन पवित्र कुण्डों का या कूपों का उल्लेख किया है – एक प्रयाग नगर में, दूसरा प्रतिष्ठानपुर में और तीसरा यमुना के दक्षिण अलर्क नगर (अरैल) में है।

पुरातन प्रयाग में उत्तर की ओर भरद्वाज आश्रम, पूर्व की ओर प्रतिष्ठानपुर और पश्चिम की ओर अलर्क नगर 7 ये तीनों ही स्थान लोगों के आने जाने और रुकने के लिए रहे होंगे। बीच में गंगा-यमुना का कछार रहा होगा।

लोकपितामह ब्रह्माजी ने बहुत खोज की कि पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है। बहुत खोजने के पश्चात् उनको यही क्षेत्र सबसे श्रेष्ठ जान पड़ा। इसलिए

यहाँ उन्होंने प्रकृष्ट-प्रकृष्ट याग-यज्ञ किये। इसलिए इस स्थान का नाम "प्रयाग" पड़ा। सब तीर्थों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की - प्रभो! हम सव तीर्थों में जो सबसे श्रेष्ठ हो, उसे आप सबका राजा बना दें।

तब ब्रह्माजी ने इस प्रयाग को ही सब तीर्थों का राजा बना दिया। उसी दिन से सब तीर्थ इनके अधीन रहने लगे और ये "तीर्थ-राज" कहलाये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने रामचरित-मानस में इन तीर्थों के राजा का कैसा सुन्दर सजीव वर्णन किया है-

" प्रात प्रातकृत करि रघुराई, तीथरतराज दीख प्रभु जाई।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रियनारी, माधव सरिस मीत हितकारी ।।

चारि पदारथ भरा भँडाऊ, पुण्य प्रदेश देश अति चाऊं ।

क्षेत्र अगमगढ़ गाढ़ सुहावा, सपनेहु नहिं प्रतिपछिन्ह पावा।।

सेन सकल तीरथ बर बीरा, कलुष अनीक दलन रनधीरा।

संगम सिंहासन सुठि सोहा, छत्र अक्षेवट मुनि मन मोहा।।

चँवर जमुन अरू गंग तरंगा, देखि होंहि दुखदारिद भंगा।

सेवही सुकृती साधु शुचि, पावहिं सब मन काम।

बन्दीवेद पुरान गन, कहहि विमल शुन ग्राम।।

को कहि सकहि प्रयाग प्रभाऊ, कलुष पुञ्ज कुञ्जर मृगराऊ।

अस तीरथपति देखि सुहावा, सुखसागर रघुवर सुख पावा।।"

प्रयागराज सब तीर्थों के राजा है इसलिए समस्त तीर्थ आकर इनकी उपासना करते है। पृथ्वी का जहाँ स्त्री रूप में वर्णन किया गया है वहाँ प्रयाग को पृथ्वी माता जघन स्थान बताया है। सम्पूर्ण शरीर में स्त्रियों के जघन स्थान जिस प्रकार सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार यह तीर्थ भी सबसे श्रेष्ठ है। यहीं पर अक्षयवट है, जिसका क्षय प्रलय में भी नहीं होता है। प्रलय के समय इसी अक्षयवट पर बाल मुकुन्द

भगवान छोटे शिशु का रूप रखकर, अपने चरण के अँगूठे को मुख में देकर क्रीड़ा करते है। इसलिए इस अक्षयवट के दर्शनों का भी अनंत फल है। ब्रह्माजी ने इस क्षेत्र में बहुत याग-यज्ञ किये और वे इस क्षेत्र के अधिष्ठातृदेव बनकर रहे, इसलिए इस क्षेत्र का नाम "प्रजापति" क्षेत्र भी है। शिवजी का भी यह क्षेत्र है। विष्णु भगवान तो अक्षयवट पर नित्य निवास करते ही हैं।

यहाँ भगवान माधव का मुख्य क्षेत्र है। यहाँ माधवजी बारह रूप रखकर रहते हैं। उनके नाम शंखमाधव, चक्रमाधव, गदामाधव, पद्ममाधव, अनन्तमाधव, बिन्दुमाधव, मनोहरमाधव, अशिमाधव, संकटहरमाधव आदि वैंर्णीमाधव, विष्णुमाधव और बटमाधव है।

पहले इस क्षेत्र में केवल यमुना जी बहती थी, गंगाजी पीछे आयीं। गंगाजी जब आयीं तो यमुनाजी अर्घ्य लेकर आगे आयीं, किन्तु गंगाजी ने उनका अर्घ्य स्वीकार नहीं किया। यमुनाजी ने जब कारण पूछा तो गंगाजी ने कहा - तुम मुझसे बड़ी हो, मैं तुम्हारा अर्घ्य ग्रहण करूँगी तो मेरा तो नाम ही आगे मिट जायेगा। मैं तुम में लीन हो जाऊँगी। यह सुनकर यमुना जी ने कहा, "तुम मेरे घर अतिथि बन कर आयी हो इसलिये तुम मेरा अर्घ्य स्वीकार कर लो, मैं ही तुम में मिल जाऊँगी। चार सौ कोस तक तुम्हारा ही नाम रहेगा, फिर मैं तुमसे पृथक हो जाऊँगी। यह बात गंगाजी ने मान ली। इसलिए यहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती तीनो मिली हैं, इससे इसे "युक्तत्रिवेणी" कहते हैं।

बंगाल में फिर गंगा, यमुना, सरस्वती की तीनों धारायें पृथक होकर बहती हैं। इस लिए उस तीर्थ का नाम "मुक्तत्रिवेणी" है। वहाँ भी बड़ा मेला लगता है। त्रिवेणी स्टेशन भी है और गंगा, यमुना, सरस्वती की तीनों धारायें पृथक-पृथक दिखाई देती हैं। अयोध्या, मथुरा, मायावती, काशी, कांची उज्जैन और द्वारका ये

सात परम पवित्र पुरी मानी जाती हैं। ये सातों तीर्थ महाराजाधिराज प्रयागराज की पटरानियाँ हैं। इन्ही सब कारणों से भूमण्डल के समस्त तीर्थों में प्रयागराज सबसे श्रेष्ठ है। यहाँ माघ मकर में प्रतिवर्ष एक महीने का बड़ा मेला होता है। प्रयागराज में माघ मकर नहाने का शास्त्र-पुराणों में अनन्त फल बताया है। इसी परम पावन क्षेत्र में महर्षि भरद्वाजजी निवास करते थे। यहीं से रामचरित मानस की सुरसरि धारा बही है जिसने समस्त संसार को भक्ति रस में डुबो दिया है। गोस्वामी तुलसीदास जी अपने रामचरित-मानस के आरम्भ में ही लिखते है।

"भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा । जिनहिं रामपद अति अनुरागा ।।
तापस शमदम दयानिधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ।।
माध मकरगत रवि जब होई । तीरथ पतिहिं आव सब कोई ।।
देव अनुज किन्नर नर श्रेनीं । सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी ।।
पूजहि माधव पद जलजाता । परसि अक्षयवट हरषहिं गाता ।।
भरद्वाज आश्रम अति पावन । परम रम्य मुनिवर मनभावन ।।
तहाँ होय मुनि ऋषय समाजा । चाहिं जो मज्जन तीर्थ राजा ।।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा ।।
बहत निरुपन धरम विधि, बरनहिं तत्व विभाग ।
कहिहं भक्त भगवन्त की, समुझ ज्ञान विराग ।।
यहि प्रकार भरि माघ नहाहीं । पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ।।
प्रति संवत् अस होई अनन्दा । मकर मज्जि गवनहिं मुनि वृन्दा ।।"

पुराणों में शिवपुराण की रचना भी भगवान वेदव्यास जी ने यहीं की है। त्रिवेणी के सम्मुख प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में शंखमाघव जी के समीप व्यास जी का स्थान था। इन सब कारणों से प्रयागराज की उपमा कोई अन्य तीर्थ कर ही नहीं सकता। प्रयाग में पग-पग पर पुण्य तीर्थ हैं। बीस कोस के बीच में यह प्रयाग का

क्षेत्र है। इसमें करोड़ों तीर्थ रहकर तीर्थराज की उपसना करते हैं। इन सब तीर्थे में त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमेश्वर, भरद्वाज आश्रम, नागवासुकी, अक्षयवट, शेषजी और दशाश्वमेध घाट मुख्य हैं।

त्रिवैणीजी

जहाँ श्री गंगाजी यमुनाजी से मिली हैं, उस स्थान को त्रिवेणी कहते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीनों का संगम होने से यह त्रिवैंणी कहलाती है। जैसे स्त्रियों की वैंणी तीन लटों से बनती है, किन्तु जब वह गुथ जाती है तो दिखाई दो ही लटें देती है, एक लट उन दो के बीच में छिप जाती है, इसी प्रकार गंगा, यमुना की दो धारायें तो दिखाई देती हैं, तीसरी धारा गुप्त है। किले के नीचे सरस्वती कुण्ड है। कहते हैं इस कुण्ड से नीचे-नीचे आकर सरस्वती मिलती हैं। गंगाजी का जल सफेद है, यमुनाजी का जल नीला है, दोनों जल पृथक-पृथक प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। गंगाजी का जल अत्यन्त शीतल है, क्योंकि वे हिमालय की पुत्री हैं। यमुनाजी का जल गरम है क्योंकि वे सूर्य की पुत्री हैं। पिता का गुण पुत्री में आता ही है। संगम एक स्थान पर नहीं रहता। आज यहाँ तो कल वहाँ। दो-दो मील का अन्तर पड़ जाता है। गंगाजी यमुनाजी को ठेल ले जाती हैं तो संगम बलुआघाट तक चला जाता है। और यमुनाजी गंगाजी को ठेल ले आती हैं तो झूँसी के पुल तक चला जाता है। साधारण रूप से संगम अक्षयवट (किला) और सोमेश्वर के बीच में रहता है।

श्री सोमेश्वरजी

चन्द्रमा जी को जब क्षय हो गया था, तब उन्होंने त्रिवेणी तट पर शिवजी की स्थापना करके उनकी आराधना की थी, इससे उनका क्षय रोग दूर हो गया। संगम से उस पार यमुनाजी के दक्षिण तट पर अरैल से आगे सोमेशवर नाथ शिवजी का मंदिर है। वहाँ अग्नि-तीर्थ आदि और भी तीर्थ हैं। शिवरात्रि आदि पर मेले

लगतें है। संगम पार करके सोमेशवर के दर्शन किये जाते है। इनके दर्शनों का अनन्त फल है। इधर आदि माधवजी का मंदिर है।

भरद्वाज आश्रम

जहाँ भरद्वाज मुनि तपस्या करते थे, उस स्थान को भरद्वाज आश्रम कहते हैं। वह कर्नलगंज मुहल्ले में है। वहाँ भरद्वाजेश्वर शिवजी हैं। और भी देवी-देवता हैं। प्रयाग आने वालों को भरद्धाज आश्रम में जाकर दर्शन अवश्य करने चाहिए।

नागवासुकी

दारागंज से आगे 'वासुकी' एक मुहल्ला ही है जिसे 'बस्की' कहते हैं। वहाँ नागवासुकी के दर्शन हैं। गंगाजी पर सम्पूर्ण प्रयाग में यही पक्का घाट है, वह भी टूट-फूट गया था। सरकार की ओर से अब इसका जीर्णोद्धार हुआ है। यहाँ वासुकी नाग की बड़ी भव्य मूर्ति हैं। नागपंचमी को यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। संगम से भरद्धाज जाते हुए बाँध-सड़क पर यह बीच में पड़ता है। यहीं भोगवती कुण्ड है, इसके दर्शनों का अनन्त फल है।

अक्षयवट

यह संगम के समीप किले के भीतर नीचे गुफा में है। वहाँ जाकर अक्षयवट का पूजन करना चाहिए, सूत लपेटना चाहिए। अक्षयवट के समीप इतने देवताओं की मूर्तियाँ हैं जो सभी बड़ी भव्य, विशाल और दर्शनीय हैं।

श्री धर्मराज, श्री अन्नपूर्णा, श्री विष्णु जी, श्री लक्ष्मीजी, श्री गणेशजी, श्री दुर्बासा ऋषि, श्री बालमुकुन्द, श्री प्रयागराज, श्री कुबेर, श्री सोमकार्तिक, श्री कालभैरों, श्री नृसिंहदेव, श्री गौरी शंकरजी, श्री सरस्वती जी, श्री वरूण देवजी, श्री सूर्यनारायण, श्री सत्यनारायण, श्री जमुनाजी, श्री ललितादेवी, श्री हनुमानजी, श्री पवन देव जी, श्री वेदव्यासजी, श्री दूधनाथ जी, श्री शूलकण्ठ-केश्वर जी, श्री गंगाजी,

श्री गुरुदत्तात्रेय, श्री सिद्धनाथ जी, श्री यमदण्ड जी, श्री मार्कण्डेय जी, श्री अग्निदेवजी, श्री बेनीमाधवजी, श्री अनुसुइया, श्री गोरखनाथ, श्री पार्वतीजी, श्री जामवन्त, श्री शेषनाग, श्री राजा इन्द्र, श्री रामचन्द्र जी, श्री यमराज।

श्री शेषजी - श्री शेषजी का स्थान नागवासुकी और शिवकुटी के बीच में गंगा तट पर है जिसे बलदेवजी का मन्दिर कहते हैं। यह भी तीर्थराज प्रयाग के अष्टप्रधान तीर्थों में है। किन्तु वहां आने का मार्ग समुचित नहीं है।

वैंणीमाधव - दारागंज में श्री वैणीमाधव जी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। उसमें चतुर्भुजी भगवान लक्ष्मीनारायण जी के बड़े भव्य दर्शन हैं।

प्रयागराज - वैसे तो सम्पूर्ण क्षेत्र का ही नाम प्रयागराज है, किन्तु जहाँ पर ब्रह्माजी ने अश्वमेघ यज्ञ किये थे, वह दशाश्वमेघ घाट दारागंज में मुख्य है। वहाँ दशाश्वमेधेश्वर नामक शिव हैं। तीर्थराज प्रयाग का जल यहीं से जाता है। संगम का जल बाहर से लाने में दोष मानते हैं। कहते हैं कि वह जल कालान्तर में बिगड़ जाता है। इसलिए दशाश्वमेघ घाट से शुद्ध जल भर कर ले जाते हैं।

प्रयाग में मुण्डन - प्रयागराज में मुण्डन का बड़ा महात्म्य है। कहावत है - "गया पिंडे" "प्रयाग मुण्डे"। यहां मुण्डन का कोई नियम नहीं है। राजा हो, राजपूत हो, दीक्षित हो, स्त्री हो, पुरुष हो, सधवा हो, विधवा हो सभी को यहाँ मुण्डन कराने का विधान है। सधवा स्त्रियां पूरा मुण्डन नहीं करातीं, वे अपनी वेणी को तनिक कैंची से कटवाकर त्रिवेणी में प्रवाहित करती हैं। यहाँ वेणीदान भी होता है। पुरुष स्त्री को दान देते हैं, फिर द्रव्य देकर ले लेते हैं। प्रायः दक्षिणी लोग बहुत वेणी दान करते हैं। मुण्डन में यहाँ समय कर नियम नहीं। कोई भी वार क्यों न हो, दिन हो रात्रि हो चाहे जब मुण्डन करा लो। "तीर्थ गये मुडाये-सिद्धि"

<u>प्रयाग में पिण्डदान</u> - गया की भाँति प्रयाग में भी पितरों को पिण्ड देने का अक्षय फल बताया है। अतः प्रयाग में पितरों को पिण्ड दान अवश्य देना चाहिए।

<u>पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी)</u>

प्रयाग के सामने गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। कहा जाता है कि यहां चन्द्रवंशीय शासक पुरूखा ऐल राजा की राजधानी थी जो मनु वैवश्वत के ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु (जो कि अयोध्या का राजा था) का समकालीन था। उसके ऐलवंश या चन्द्रवंश के संबंध में ऐलेश्वर महादेव का मंदिर आज भी झूँसी में विद्यमान है।

चन्द्रवंशी राजा पुरूखा ऐल की राजधानी प्रतिष्ठानपुर के सम्बंध में महाकवि कालिदास ने ''विक्रमोर्वीशीयम'' की रचना पुरूखा के प्रणय को लेकर की है। कालिदास के इस नाटक के नायक पुरूखा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख उर्वशी तथा चन्द्रलेखा के सन्दर्भ में हुआ है। देवलोक से पृथ्वीलोक में अवतरित होने वाली अप्सरा उर्वशी और उसकी सखी चन्द्रलेखा के संवाद में (द्वितीय अंक में) कालिदास ने चन्द्रलेखा के मुख से कहलाया है, ''अरी सखी देख, हम लोग राजर्षि के उस भवन में पहुँच गयी हैं, जिसके समान दूसरा भवन प्रतिष्ठानपुर में नहीं है और जो ऐसा दिखाई दे रहा है, मानो यमुनाजी के संगम के कारण और भी अधिक पवित्र बने हुए गंगाजी के जल में अपना मुँह देख रहा हो।''

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में एक समुद्रकूप है, जिसका जीर्णोद्धार समुद्रगुप्त ने किया था।

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ''अंधेर नगरी'' कहा है। और ''अंधेरनगरी'' शीर्षक पर एक कहानी लिखी है। इसी संदर्भ में यह कहावत - ''अंधेर नगरी, चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा'' - प्रसिद्ध है।

प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) प्रयाग के सामने गंगा के पूर्वी तट पर एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। कहा जाता है किसी समय यह "चन्द्रवंशीय" राजाओं की राजधानी थी। बाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के सर्ग 100 से 103 तक तथा "दैवी-भागवत" के 12वें अध्याय में इस स्थान के आदि राजाओं का वर्णन है। "लिंग पुराण" पूर्वाध के अन्तर्गत 66वें अध्याय में इस प्रकार जिक्र है कि इला के पुत्र पुरूखा ने यमुना से उत्तर की ओर प्रयाग के निकट अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया था। इस पुराण के अनुसार इसकी वंशावली इस प्रकार है-[49]
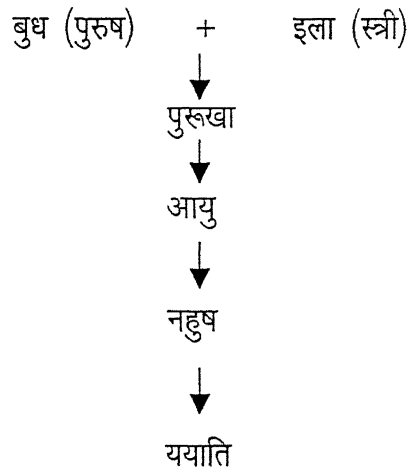
"मत्स्य पुराण" के अध्याय 110 तथा स्कन्द पुराण काशी-खण्ड के सातवें अध्याय में प्रतिष्ठानपुर के महात्म्य का वर्णन है और उसका पता इस प्रकार बतलाया गया है कि गंगा के पूर्व में त्रिभुवन विख्यात प्रतिष्ठान नगरी है। महाभारत के उद्योगपर्व अध्याय 114 में इस स्थान के राजा 'ययाति' की चर्चाएं कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "विक्रमोर्वशीयम्" में इसी प्रतिष्ठानपुरी के राजा पुरूखा को नायक बनाया गया है। पुराणों से यह पता चलता है कि कालान्तर में इन्हीं चन्द्रवंशियों ने मथुरा इत्यादि विधि स्थानों में जा कर अपना राज्य अलग स्थापित किया था।

परन्तु यह सब बातें ऐतिहासिक युग से पहले की हैं, इस स्थान का इधर का इतिहास बहुत ही अज्ञात है। गुप्तवंशीय राजाओं के शासनकाल में यद्यपि

कौशाम्बी उनकी उप-राजधानी थी तो भी जान पड़ता है कि प्रतिष्ठानपुरी को उस समय तक कुछ महत्व प्राप्त था क्योंकि वहाँ सन् 1876 ई0 के लगभग कुमारगुप्त के समय की 24 अशर्फियाँ मिली थीं और एक विशाल 'कुऑ' 'समुद्रकूप' के नाम से वहाँ अब तक प्रसिद्ध है जो सम्भवतः सम्राट समुद्रगुप्त का खुदवाया हुआ है।

झूँसी के विषय में एक प्रसिद्ध दन्तकथा है कि वहाँ एक हरवेश राजा था जिसके राज्य में ऐसा अंधेर था कि ''टका सेर भाजी और टका सेर खाजा'' बिकता था। कहते हैं कि उस राजा से उस समय के बड़े महात्मा गोरखनाथ तथा उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) ने रुष्ठ हो कर श्राप दिया था जिससे झूँसी उलट गयी। मुसलमान कहते हैं कि सन् 1359 ई0 में सैय्यद अली मुर्तजा नामक एक फकीर की बद्दुआ से झूँसी में एक बड़ा भूचाल आया और उसका किला उलट गया। इन कहावतों में कहाँ तक सचाई है इस का पता लगाना कठिन है। हमारी समझ में झूँसी के उलट जाने का तात्पर्य यही मालूम होता है कि उसका प्राचीन वैभव तथा उसके राजकीय भवन अब केवल ऊँचे ऊँचे भग्नावशेष और सुनसान टीलों के रूप में परिवर्तित हो कर रह गये। यही उसकी अवस्था का उलट जाना है।

सन् 1830 में झूँसी में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख ताम्रपत्र पर मिला था जो इस समय एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में है। उसमें देवनागरी अक्षरों तथा संस्कृत भाषा में 16 पंक्तियां हैं! प्रथम पंक्ति निम्नलिखित शब्दों से आरम्भ होती है: ''ओम् स्वस्ति श्री प्रयाग समीप-गंगातटवा से परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विजयपाल देवथ''।

इस पूरे अभिलेख का सार यह है कि - विजयपाल देव के पौत्र राज्यपाल देव के पुत्र त्रिलोचन पाल ने जो गंगा के किनारे प्रयाग के निकट रहते थे दक्षिणायन संक्रांति के दिन गंगा स्नान करने के पश्चात् शिव इत्यादि का पूजन कर के एक

गांव प्रतिष्ठान के ब्राह्मणों को दान दिया जो विविध गोत्र और विधि परिवार से सम्बंध रखते थे। अन्त में श्रावण बदी 4 सम्वत् 1084 विक्रम भी अंकित है जो 26 जून 1027 ई0 के बराबर है। हिन्दुओं के समय की वस यही एक ऐतिहासिक सामग्री है जो अब तक झूँसी में मिली है। यदि इसके ऊँचे ऊँचे टीलों की खुदाई की जाए तो आशा है कि अनेक ऐसी पुरानी चीज़ें मिलेंगी जो इस स्थान के इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालेंगी।

मुसलमानों के समय शेखतकी नामक एक प्रसिद्ध फकीर यहां रहते थे। उनकी कब्र गंगा किनारे अब तक बनी हुई है जहां वर्ष में एक बार मेला लगता है। दिल्ली का बादशाह फर्खशियर इनकी कब्र के दर्शनार्थ एक वार झूँसी आया था।

अकबर ने इस स्थान का नाम बदल कर 'हादियाबाश' रखा था परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हुआ। अल्मोड़े के जोशी घराने के ब्राह्मण और रीवा के बेनवंशीय तथा प्रतापगढ़ के सोमवंश क्षत्रिय झूँसी को अपनी पुरानी जन्मभूमि बतलाते हैं परन्तु अब यहाँ उनके जाति का एक भी व्यक्ति नहीं है।

खेद है कि झूँसी जितना ही महत्वपूर्ण स्थान है उतना ही उसका इतिहास तिमराच्छादित है। इसलिए वर्तमान झूँसी का कुछ वृतान्त लिखा जाता है।

इस समय प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) दो भागों में बंटा है जिनके नाम - नई झूँसी और पुरानी झूँसी है। नई झूँसी शास्त्री पुल के पश्चिमी छोर, जी.टी. रोड (वाराणसी रोड) के उत्तर में स्थित है। इसमें केवल कुछ इमारतें उल्लेख करने योग्य हैं। एक तो वहां के सुप्रसिद्ध रईस स्वर्गीय लाला किशोरी लाल का धर्मशाला है जिसमें एक सदाव्रत या क्षेत्र भी है। दूसरा गंगा के तट पर तिवारी गंगा प्रसाद उप नाम (गंगोली) का बनाया हुआ एक पत्थर का बड़ा शिवालय है। कहा जाता है कि यह मंदिर सन् 1800 ई0 के लगभग सवा लाख रुपये की लागत से बना था।

इसकी संगत राशि का काम दर्शनीय है। इसके बाहर दालान में चारों ओर खम्भों और दीवारों पर नीचे से ऊपर तक देवताओं की असंख्य मूर्तियां तथा कतिपय पौराणिक गाथाओं के दृश्य बड़ी सफाई के साथ पत्थर पर खुदे हैं। गंगोली तिवारी आगरा के रहने वाले हैं, किसी समय झूँसी में उनका वड़ा कारोवार था। उनके वंशज अब तक कुछ यहाँ और कुछ आगरे में रहते हैं।

इस मन्दिर की दक्षिण की ओर गाँव में कुछ वैष्णो और जूना साधुओं के आश्रम हैं परन्तु उनके विषय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

संगम के पूर्व की ओर गंगा के उस पार स्थित विशाल टीले इस बात का परिचय देते है कि पहले वहां कोई किला या नगर था जो बाद में इस रूप में परिवर्तित हो गया। इसका प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर है।

इतिहास के ग्रन्थों में चन्द्रवंशीय राजाओं की राजधानी के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड के सर्ग 100-103 तथा लिंगपुराण के पूर्वार्द्ध 66वें अध्याय तक तथा देवी भागवत के 12वें अध्याय में इसका विवरण मिलता है। पुराणों के अनुसार इला के पुत्र पुरूरवा ने यमुना नदी के उत्तर की ओर अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया था जिसके कारण इसे ''उर्वशीरमण'' स्थान भी कहा जाता है। मत्स्यपुराण में इसे पवित्र स्थान कहा गया है।

''उर्वशी रमणे पुण्ये विपुले हंस पाण्डुरे''।

गुप्तवंशीय राजाओं के शासन काल में इस स्थान को कुछ महत्व प्राप्त हुआ, क्योंकि यहाँ से 1876 ई0 के लगभग कुमार गुप्त के समय की '24' अशर्फियाँ मिली हैं। 1830 ई0 में त्रिलोचनपाल का ताम्रपत्र भी मिला है जिसमें प्रतिष्ठानपुर में दान आदि करने का वर्णन है।

इस स्थल से संबंधित निम्न दन्त कथा बहुत प्रचलित है - यहाँ एक राजा राज्य करता था, जिसके राज्य में भाजी और खाजा अर्थात् सभी वस्तुएं टके सेर में बिकता था। कहा जाता है कि एक महात्मा को किसी व्यक्ति के वदले में फांसी दे दी गयी जिससे गुरू गोरखनाथ और उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ क्रोधित हुए और उन्होंने श्राप देकर इस नगरी को उलट दिया।

मुस्लिम काल में एक दूसरा किस्सा प्रचलित हुआ - 1359 ई0 में सैयद अली मुरतजा नामक पहुँचे हुए फकीर की बद्दुआ से झुंसी में एक बड़ा भूचाल आया और किला उलट गया।

इसके विषय में एक कथा सर्वप्रचलित है - कहा जाता है कि यहाँ के राजा हरवेश के पास जितनी गायें और भैंसें थी वे सभी वहाँ के एक प्रसिद्ध फकीर के यहाँ जाकर दूध दे देती थी (एक गाय स्वयं गाय अपनी इच्छा से बिना लगायें ही दूध से बाल्टी भर देती थी)। राजा ने फकीर को बुलवाया लेकिन फकीर ने राजा के पास आने से इन्कार कर दिया तथा राजा के ऊपर क्रुध होकर फकीर ''इलाइल्लाही'' कहा अर्थात फकीर ने राजा को श्राप दे दिया, जिससे किला उलट गया।

वर्तमान समय में झूँसी स्पष्ठतः दो भागों में बंटी हुई है-

1- <u>नई झूँसी</u>

जी.टी.रोड (बनारस जाने वाली रोड) के उत्तरी भाग नई झूँसी है जो जी. टी. रोड से एक कि0 मी0 वर्ग उत्तर तक नई झूँसी के अंतर्गत है।

2- <u>पुरानी झूँसी</u>

जी.टी. रोड के दक्षिणी भाग को पुरानी झूँसी कहते हैं। इसका भी क्षेत्र जी. टी.रोड के दक्षिण की ओर 1 कि.मी. है।

नई झूँसी में लाला किशोरी लाल की धर्मशाला है जो पहले सदाव्रत क्षेत्र था। 1800 ई0 के लगभग सवा लाख रूपये की लागत से बनवाया गया। गंगोत्री तिवारी का पत्थर का बड़ा शिवालय महत्वपूर्ण है - (विस्तृत रूप)

पुरानी झूँसी में समुद्रकूप, हंसतीर्थ आदि हैं।

समुद्रकूप पद्मपुराण वाक्यम्

पूर्वे पार्श्वे गंगायाः त्रिषुलोकेषु भारत।

कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानंतु विश्रुतम।।

बृह्मचारी जितक्रोध स्त्रिरात्रं तिष्ठाति।

सर्वपाप विशुद्धात्मा सो अश्वमेधफलं लभेत।।[50]

श्री नारद जी ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि-

श्री गंगा जी के पूर्व किनारे पर प्रतिष्ठानपुर (झूँसी प्रयागराज) में तीनों लोकों में प्रसिद्ध समुद्रकूप है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए क्रोध को शांत करके यदि तीन रात बृह्मचारी निवास करे तो सब पापों से मुक्त हो जाता है। वहां का आचमन करने से पाप रहित तथा परिक्रमा करने से परम् पद को प्राप्त होता है व बैकुंठ लोक में वास करता है।

मत्स्यपुराण वाक्यम्

प्रतिष्ठाने महानकूपः समुद्राख्यों विराजते।

दर्शनाद यस्यपानाच्च नरोनिष्कलपो भर्वत।।

अमावस्या पूर्णामास्यां चन्द्रसूर्यग्रहे यथा।

यत परिकृभातः भूमि प्रदशिणा फलं लभेत।।[51]

प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में एक महान कूप है जिसके दर्शन व जलपान से मनुष्य पाप रहित हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण पर कूप की परिक्रमा

करने से पृथ्वी की परिक्रमा का फल होता है। यहां पर स्नान दान करने से यश प्राप्त होता है। अंत में स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

नोटः- ''उर्वशीकुण्ड'' यहीं प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में हंसकूप के पास था। इस समय लुप्त हो गया है। (पद्म महापुराण में)

समुद्रकूपः- झूँसी के मुख्य टीले के पूर्वी कोने पर समुद्रकूप का टीला है। इसी पर एक बहुत बड़ा कुआँ है जिसे समुद्रकूप कहते हैं। ऐसी धारणा है कि इसका निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया था। ''मत्स्यपुराण'' में इसका उल्लेख मिलता है। इसमें प्रतिष्ठान को समुद्रकूप कहा गया है।

''पूर्वे पार्श्वे गंगायारिका धुलोकेषु भारत।
कूप चैव सामुद्रं प्रतिष्ठान चं विश्रुतम्।।''[21]

समुद्रकूप सागर अथवा सप्तसागर का प्रतिनिधि माना जाता है। पुराणें में विविध दोनों के प्रसंग में ''सप्तसागर महादान'' का उल्लेख मिलता है। यह दान समुद्रकूप के समीप दिया जाता था। पद्मपुराण के अनुसार समुद्रकूप के दर्शन एवं जलपान से मनुष्य पाप रहित हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण पर इसकी परिक्रमा करने से पृथ्वी की परिक्रमा करने का लाभ होता है।

पहले यह कूप बंद था। लोगों का यह विश्वास था कि इसका संबंध समुद्र से है, तथा इसे खोलने से समुद्र उमड़ आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। लगभग 100 वर्ष हुए अयोध्या के एक वैरागी साधु बाबा सुदर्शन दास ने इस कूप को खुलवाया, साफ करवाया और यहां एक आश्रम भी बनवाया। गंगा की ओर से इस टीले में एक बड़ी सीढ़ी ओर अनेक गुफायें हैं।

हंसतीर्थः- हंसकूप अथवा हंसतीर्थ का उल्लेख मत्स्यपुराण और वाराहपुराण में मिलता है। यहां एक अत्यन्त धार्मिक महत्व का पक्का कुआँ है जिस पर लिखा हुआ

है कि जो इसका पानी पीता है या इससे स्नान करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। इसी के पास दक्षिण पूर्वी कोने पर एक मठ है जिसकी स्थापना 1926 वि0 में जिला भागलपुर के साहपुर सोन बरसा नामक स्थान के एक क्षत्रीय जंमीदार ठाकूर प्रसाद जी ने साधु होकर की थी। यह स्थान हठ योगियों के विशेष काम का है, क्योंकि इसके द्वारा मानव शरीर के भीतरी अंगों आदि को स्थूल रूप में प्रत्यक्ष दिखाया गया है। इस तीर्थ का घेरा लम्बे पान के रूप में है तथा घेरे की पक्की दीवारों पर बहुत से कंगुरे छोटे-छोटे पान के समान है जो संख्या में 1000 हैं। इसी को सहस्त्रदल कमल कहते हैं। इसका स्थान ब्रह्मण्ड मस्तिष्क में बताया गया है।

योगियों का मुक्ति हेतु निराकार योगाभ्यास समझने के लिए इस हंसतीर्थ में योग की सारी क्रियायें साकार रूप में दर्शायी गयी हैं। ऐसा मंदिर अन्यत्र नहीं है।

कालीदास ने स्वरचित'' विक्रमोर्वर्शीयम्'' में चन्द्रवंशीय राजा पुरूरवा (जिसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर थी) तथा उर्वशी के प्रेम-प्रणय की व्याख्या की है।

प्रयाग के पास उर्वर्शीकुण्ड है। पहले किसी समय इन्द्र ने क्रोध से उर्वशी को श्राप दिया था उस समय वह पृथ्वी पर आयी और राजा पुरूरवा के पास गयी विद्युत के समान अपनी कानति से देवसभा को द्योषित करने वाली सौंदर्य वापिका समझकर पुरूरवा ने उससे पूछा, तुम कौन हो और यहां क्यों आयी हो, सत्य कहो। राजा का वचन सुनकर प्रसन्नता पूर्वक उर्वशी बोली इन्द्र के यहां से धृताची आदि पाँच अप्सरायें है उनमें की उर्वशी नाम की मैं अप्सरा हूँ, भाग्यवश यहां आयी हूँ। प्रभू, मैं इन्द्र की आज्ञा का पालन करती थी पर एक दिन भाग्य वश मैं उनके पास न गयी इससे इन्द्र ने अपना अपमान समझा और 100 वर्ष तक पृथ्वी पर रहने का उन्होंने श्राप दिया इससे मैं पृथ्वी पर आयी और पृथ्वी पर अपने रहने के लिए सर्वत्र उचित स्थान ढूंढने पर भी मैं न पाकर मैं आपकी शरण में आयी हूँ। अतएव

आप जहां स्थान बतलावेंगे वहां मैं सौ वर्ष रहकर पुनः श्राप की अवधि समाप्त करने पर अमरावती चली जाऊँगी। पुरूरवा बोले, तुम क्यों दुःख करती हो, तुम सदा यही रहो, तुम अपने को शतक्रतु (इन्द्र) सौ यज्ञों के करने से इन्द्र का पद मिलता है, इस कारण इन्द्र शतक्रत कहे जाते हैं के अधीन समझती हो तो मैं सौ यज्ञ कर देता हूँ। यह कह कर पुरूरवा ने 1000 यज्ञ का अनुष्ठान करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाश में नगाड़े बनजे लगे और पृथ्वी में महोत्सव हुआ। यह सुनकर ब्रह्म को बड़ा भय हुआ। वे पद भ्रष्ट होने के डर से यज्ञ में विध्न करने के लिए वृद्ध बृाह्मण का रूप धारण कर यज्ञ में आये। राजन! आप यज्ञ, दान करने वालों में श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मणों के मनोरथ पूरा करने वाले हैं, मुझे आप भिक्षा दें, मैं याचक आया हूँ। पुरूरवा बोले, धन-धान्य, गृह-ग्राम, रत्न, वसुन्धरा आदि क्या चाहते हो मांगो, मैं दूँगा। ब्राह्मण बोला, आप दान सूर है मैं यह मानता हूँ, आप मेरा यह मनोरथ पूरा करेगें। प्रयाग क्षेत्र में अक्षय काम वाले यज्ञ आप न करें। जब तक वैराग्य न आवे, उर्वशी के साथ सुख भोगो। पुनः तम्हारी आज्ञा से उर्वशी इन्द्र के पास जायेगी। ब्रह्मा के कहने से राजा यज्ञ से विरत हुए, उर्वशी के साथ सब विषयों का भोग करने लगे। उर्वशी ने वहाँ अनेक निर्मल कुण्ड, वृक्ष, लता आदि लगाये और वह वहीं रहने लगी। प्रतिदिन त्रिवेणी में स्नान करके अपने आश्रम पर बैठकर दोपहर तक विष्णु का ध्यान करती थी और पुनः अपने भोग विलास में लगती थी। तब से उस कुण्ड का नाम उर्वशी कुण्ड के नाम से प्रचलित हुआ, मनुष्यों को विचित्र फल देता और स्त्रियों का सौभाग्य बढ़ाता है। और स्नान-दान ध्यान पूजन, होम, स्वध्याय, तर्पण आदि जो निष्पाप मनुष्य वहाँ रहकर करता है वह बहुत दिन तक स्वर्ग में वास करता है। उसके पश्चात सुधारस नामक पावन-पवित्र तीर्थ है। यह तीर्थ यमुना तीर पर है, इसमें स्नान करने सक सब रोग दूर होते हैं। यहां थोड़े दिन वास कर स्वर्ग भोग प्राप्त होता है।

उसके दक्षिण कुछ दूरी पर कम्बल और अस्वतर दो नागों का आश्रम है वहीं वे रहते भी हैं, वहां उनका उत्तम तीर्थ है। सब विघ्नों को दूर करने के लिए ब्रह्मा ने पहले इनकी स्थापना की थी, यज्ञ के अंत मे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वरदान भी दिया था, आप लोगों ने मेरे यज्ञ में बड़ी सहायता की अतएव आप लोग यहां वास करें और सब लोगों को फल दें। यहां ब्राह्मणों ओर राजाओं के प्रतिग्रह और प्राप्त बहुत धन है, आप लोग उस धन के अधिकारी हैं। जो लोग यहाँ यात्रा के लिए आवेंगे और आप लोगों की पूजा न करेगें उनकी यात्रा का फल आप लोागों को होगा। अतएव यात्रा फल चाहने वालों को अवश्य उनकी पूजा करनी चाहिए। यहाँ के वासियों को और यात्रियों को प्रत्येक वर्ष विधि पूर्वक उन दोनों नागों की पूजा करनी चाहिए। पूर्णमासी, शुक्लपक्ष की पंचमी अथवा अन्य पर्व दिन में पंचामृत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से पूजा करें। इस प्रकार भक्ति से पूजा करने वालों से वे प्रसन्न होते हैं। आरोग्य और मनचाहा धन देते हैं। यदि पूजन करने की शक्ति न हो तो त्रिवेणी में स्नान कर दुखित मन से उनको नमस्कार करें। यमुना तीर के सब तीर्थो का वर्णन कौन कर सकता है, इसके लिए केवल तीर्थ ही समर्थ है; इस कारण उनको नमस्कार।

कुवेर की दिशा में थोड़ी दूर पर बहुमूलक नामक एक नाग है वह तीर्थ की समीप का स्तम्भ है। तीर्थ यात्री जो भक्ति पूर्वक उसकी पूजा करता है, उसे पुत्र-पौत्र सुख आदि प्राप्त होते हैं तथा धन प्राप्त होता है। उसके उत्तर में भार्गव, गालव और चामर तीर्थ हैं, जिनमें स्नान करने से पवित्र होकर मनुष्य स्वर्ग जाता है। उसके पूर्व गंगा के दक्षिण तट पर कोटि तीर्थ है। यह कोटि तीर्थों को फल देता है। सदा या पुण्य काल में तीर्थ यात्री कोटि तीर्थ पर जाकर जो करते हैं बहुत अधिक होता है। स्नान, दान, जप, होम, स्वध्याय, पितृ तर्पण, रुद्राभिषेक रुद्र के मंत्र का जप पार्थिव पूजा तथा अन्य पुण्य कर्म जो भक्त मनुष्य करते हैं वह सब

कोटी गुण होता हैं इसमें संदेह नहीं। वह श्रावण शुक्ल अष्टमी को विशेषकर सोमवार के दिन कादितीर्थेखर का पूजन कोटि गुण फल देता है।

गंगा के उत्तर तीर पर मानस तीर्थ है। वहां स्नान करने से मन की मलीनता दूर होती है। इसके पूर्व भाग में मनोहर तीर्थहंस है, वहां स्नान करने तथा वहां का जल पीने से मनुष्य हंस के समान निर्मल हो जाता है। अब कालकूप का वर्णन करना है- जो काल बाधा को दूर करता है। चतुर्दशी के दिन वहाँ स्नान करने से मनुष्य नरक नहीं देखता है। उसके आगे शाल्मली तीर्थ है जहाँ शाल्मली (सेंमल) का वृक्ष है, उसकी छाया स्पर्श से ही पापी शुद्ध हो जाता है। इसके आगे ब्रह्मकुण्ड है जो धनुष के आकार के समान है। वहां स्नान करने से और उसका जल पीने से बृहत लोक प्राप्त होता है। उसके पीछे हंसप्रवतन नामक परम तीर्थ है, वहाँ जो रहते हैं, वे हंस तुल्य हैं इसमें संदेह नहीं। हंसरूपी धरा न्याय सदा वहां रहते हैं। वहां स्नान, दान करने से मनुष्य हंसरत प्राप्त करता है।

प्रतिष्ठान में (वर्तमान झूँसी) समुद्र नाम का एक बड़ा कूप है, उसके दर्शन तथा उसके जल-पान से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण के समय उसकी परिक्रमा करने से पृथ्वी प्रदक्षिणा का फल मिलता है। स्नान, दान आदि का पुण्य वहां बहुत होता है, इसमें संदेह नहीं।

इसके दक्षिण मनोहर व्यास तीर्थ है, वहां व्यासाश्रम है, जहाँ देवता और ऋषि रहते हैं। वहां ठहर का पूजा और दण्डवत प्रणाम करके भक्ति पूर्वक जो प्रार्थना करते हैं वे अवश्य विद्वान होते हैं। उसी के अग्नि कोण में वेणी के उस पार उत्तर तट में नाग तीर्थ हैं जहाँ नाग-नागिन रहते हैं वहाँ जाकर जो मनुष्य दही, दूध आदि सामग्रियों से पूजन करते हैं ओर नमस्कार करते हैं उनको अनन्त पुण्य

होता है। इस प्रकार मध्यवेदी और वहिर्वेदी के मुख्य तीर्थो का वर्णन परोपकार के लिए मैंने किया।

वैदिक साहित्य, महाभारत, रामायण, पुराणों और निबन्ध ग्रन्थों में प्रयाग के माहात्म्य का वर्णन विस्तार से किया गया है। प्राचीन अभिलेखों, बौद्ध-जैन ग्रन्थों और विदेशी यात्रियों के यात्रावृतान्तों में भी यत्र-तत्र इस तीर्थ की चर्चा मिलती है। प्रयाग की गणना भारतवर्ष के पवित्रतम तीर्थस्थलों में की जाती है।

महाभारत (3185/114) में सभी तीर्थों की यात्रा को प्रयाग का एक उपतीर्थ प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में प्रतिष्ठित माना गया है-

एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता।
तीर्थयात्रा मापुण्या सर्वपापप्रमोचनी।।[53]

प्रयाग तीर्थो में सर्वोच्च है। यहाँ रहने वाले संसार-सागर के पार भी देख सकते हैं। सचमुच यह मोक्षद्वार है, जिसके दोनों भागों में बहने वाली गंगा और यमुना नदियाँ उसकी शोभा को बढ़ाती हैं। महाकवि मुरारि ने अनर्धराघव (7/127-128) नामक ग्रन्थ में ठीक ही कहा है-

प्रयागः सर्वतीर्थम्यस्तीर्थमुच्चैस्तरामयम्।
संसाराब्धेः परं पारमिहस्थैखलोक्यते।।
सत्यमेव प्रयागोडयं मोक्षद्धार मुदीर्यते।
देव्यों यस्याभितों गंगायमुने वहतः श्रियम्।।[54]

प्रयाग परम पद है। मत्स्य पुराण (105/26)[55] में कथित है कि इस तीर्थ के दर्शन मात्र से मनुष्य उसी प्रकार सभी पापों से छूट जाता है जैसे चन्द्रमा ग्रहणान्त में राहु से मुक्त हो जाता है। यह देवदुर्लभ तीर्थप्रवर है। इसका महात्म्य

असीम है, अनीर्वचनीय है जिसे कोटि वर्षों में भी नहीं कहा जा मकता। लैत्रोक्य में ऐसा तीर्थ न कभी हुआ और न होगा।

पद्य पुराण (6/24/3) में स्पष्ट कहा गया है कि जैसे ग्रहों में सूर्य और नक्षत्रों में चन्द्रमा है वैसे सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ प्रयाग है-

ग्रहानः च यथा सूर्यो नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थ प्रयागाख्यमनुत्तम्।।[56]

प्रयाग में केवल गंगा, यमुना और अन्तः सलिला सरस्वती का ही संगम नहीं होता है। माघ मास में यहां होता है समस्त तीर्थों का संगम, देश के समस्त प्रान्तों एवं विदेशों से आये तीर्थ यात्रियों का संगम, देव दानव, गन्धर्व, ऋषि, और सिद्धों का संगम। यह समागम वैसे तो प्रतिवर्ष होता है, किन्तु कुम्भ पर्व के अवसर पर इसकी छटा कुछ निराली ही हो जाती है। विशाल जन सम्मर्द होता है यहां, जब इस पृथ्वी पर हिन्दुओं का सबसे बड़ा मेला लगता है।

स्कन्दपुराण के शब्दों में --

किं बहूत्तकेन विपेन्द्र महोदयम भीप्सुना।
सेव्यं सितासितं तीर्थ प्रकृष्ट जगतीतले।।[57]

प्रयाग तीर्थों का राजा है। यहाँ असंख्य तीर्थ निवास करते हैं। तीनों लोकों के सभी तीर्थों की प्रयाग में विद्यामानता उसके राजस्व की पुष्टि और दसके माहात्म्य में अभिवृद्धि करता है। महाभारत (3/85/84)[58], मत्स्य (105/23)[59] कूर्म (2134/14)[60], और अग्नि (111/9)[61], पद्म (3/43/24)[62] पुराणों में प्रयाग में उपस्थित तीर्थों की संख्या साठ करोड़ दस हज़ार बतायी गयी है। मत्स्य (109/1-3)[63] और पद्म (3/47/1-3)[64] पुराणों में अन्यत्र कहा गया है कि

नैमिष, पुष्कर, गौ, सिन्धुसागर, गया, कुरूक्षेत्र, गंगासागर आदि तीस करोड़ दस हजार तीर्थ यहाँ सदा निवास करते हैं। नारदीय पुराण (2/63/49 ब50अ)[65] और कूर्म पुराण (2/37/6)[66] में भी इसी संख्या का उल्लेख है।

वस्तुतः प्रयाग में अगणित तीर्थ विराजमान है। गगा-यमुना के मध्य के भूमिखण्ड में फैली हुई रजतमयी बालूका के प्रत्येक कण में तीर्थों का वास है। उनकी गणना कौन कर सकता है। मत्स्यपुराण (103/6) में ऋषि मार्कण्डेय ने स्पष्ट कहा है कि प्रयाग में उपस्थित पापों का हरण करने वाले तीर्थो की गणना सैंकड़ों वर्षो में भी नही की जा सकती है। यथा-

अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वधपहराः शुभाः।
न शक्याः कथितुं राजन् बहुचर्षशतैरषि।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्यः तु कीर्तनम्।।[67]

धर्म ग्रन्थों में प्रयागस्थ कुछ ही तीर्थो का नामोल्लेख मिलता है। ये प्रयाग के उपतीर्थ हैं। महाभारत में 6 उपतीर्थे का नामोल्लेख है। कूर्म पुराण 11, अग्नि पुराण 12, और नारदीय पुराण 21 उपतीर्थो का नाम गिनाते हैं। मत्स्य पुराण और पद्म पुराण में प्रयाग के 25 उपतीर्थों का नामोल्लेख है। बारहवीं सदी ई0 सन् से 17वीं सदी ई0 सन् की कालावधि में लिखे गये निबन्ध ग्रन्थों में प्रयाग मे स्थित उपतीर्थो के नाम 21 से 38 तक गिनाये गये है। इन ग्रन्थों में इनके स्थान भी निर्दिष्ट हैं। प्रयाग के प्रमुख 38 उपतीर्थो के माहात्म्य और स्थिति की समस्या का सम्यक् विवेचन देवी प्रसाद दूबे ने "नेशनल ज्याग्रैफिकल जर्नल ऑफ इण्डिया" (31(4) 1995, 319-340) में प्रकाशित "दी सेक्रेड ज्याग्रैफी ऑफ प्रयाग"[68] नामक लेख में किया है। इनके नाम इस प्रकार है - अग्नि तीर्थ, अनरक तीर्थ, भरद्वाज आश्रम, मोरावती तीर्थ, बृहतकुण्ड, चैत्रक तीर्थ, चक्र तीर्थ दशाश्मेधिक तीर्थ, धेनुक तीर्थ,

गंगासागर तीर्थ, गंगा-यमुना संगम, गो तीर्थ, गया, हंसप्रतर्दक तीर्थ, कम्वलाश्वतर, नागद्वय, कपिल तीर्थ, काश्यप तीर्थ, कोटितीर्थ कुरूक्षेत्र, लक्ष्मी तीर्थ, मानस तीर्थ, नारा बहुमूलक, नैमिष निरंजन तीर्थ, पापमोचन तीर्थ, प्रतिष्ठान, पुष्कर, ऋणमोचन, समूद्रकूप, सन्ध्यावट, शंखतीर्थ, सिन्धुसागर, सोमतीर्थ, सुधारस तीर्थ, उर्वशीपुलिन अक्षयवट, वासुकिह्रद और विकिट तीर्थ।

इनमें से कुछ तीर्थों का नामोल्लेख -

सुधारस, शंख, पापमोचन, लक्ष्मी, काश्यप, कपिल, चक्र और ब्रह्मकुण्ड - सर्वप्रथम 16वीं सदी ईसवी सन् में लिखे गये त्रिस्थली सेतु नामक निबन्ध ग्रन्थ में हुआ है। चूँकि 17वीं सदी ई0 सन् में रचित तीर्थ प्रकाश नामक निबन्ध ग्रन्थ में इनके नामों का कोई जिक्र नहीं मिलता, इसलिए अनुमान है कि इन तीर्थों की स्थापना प्रयाग में 15वीं-16वीं सदी में हुई होगी, किन्तु इन्हें 17वीं सदी तक सभी वर्गों का समर्थन नहीं प्राप्त हो सका था। 18वीं सदी ई0 सन् की प्रयाग माहात्म्यशताध्यायी नामक कृति में अनेक तीर्थे के नाम मिलते हैं। इसमें प्रयाग के चारों ओर के 50 मील की दूरी में स्थित तीर्थों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। किन्तु आजकल त्रिवेणी, माधव, सोम, भरद्राज, वासुकिनाग, अक्षयवट और शेषनाग ये सात ही प्रयाग के प्रमुख उपतीर्थ माने जाते है। यथा-

त्रिवेणी माधवे सोम भरद्वाजं च वासुकिम्।
बन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्।।

वास्तव में प्रयाग का प्रधान तीर्थ गंगा-यमुना का संगम है जिसके चारों ओर सभी उपतीर्थ ठीक उसी प्रकार स्वीकृत है जैसे किसी प्रधान देवता के अनेकानेक गणदेवता।

आगन्तुक तीर्थयात्री, एक तीर्थ से प्रारम्भ कर दूसरे तीर्थ, एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर, एक घाट से दूसरे घाट और एक धार्मिक स्थल से दूसरे धार्मिक स्थल तक जाते चलते उनका समय कट जाता है और उनमें धार्मिक भाव की स्थिरता भी उत्पन्न होती है। इन उपतीर्थे का महत्व तीर्थराज प्रयाग की महिमा को बढ़ाने के लिए और उसे जन-मानस के धार्मिक पटल पर स्थापित करने के लिए ही प्रकल्पित है।

प्रयाग के इन उपतीर्थों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) का है। प्रतिष्ठानपुर में प्रतिष्ठित तीर्थ स्थलों में - नागतीर्थ, शंखमाधव, व्यासाश्रम समुद्रकूप, ऐलतीर्थ, संकष्टहरमाधव, संध्यावट, हंसकूप, जलकुण्ड, उर्वशी कुंड एवं अरून्धती तीर्थ आदि तीर्थस्थलों की परिक्रमा एवं दर्शन करने से ही तीर्थयात्रियों की प्रयाग तीर्थ यात्रा सफल होती है। इन तीर्थस्थलों की परिक्रमा एवं दर्शन के बिना तीर्थयात्रा अधूरी ही रहती है।

प्रयाग की तीर्थयात्रा तथा बहिर्वेदी परिक्रमा सामान्यतः दस दिन में पूरी होती है। प्रथम दिन त्रिवेणी स्नान कर अक्षयवट दर्शन करें। पुनः यमुना तट पार कर शूलटंकेश्वर, सुधारस तीर्थ, उर्वशीकुण्ड, आदिविन्दुमाधव, हनुमान तीर्थ, सीताकुण्डरामतीर्थ, वरूण तीर्थ, चक्रमाधव, सोमेश्वरनाथ दर्शन करें। दूसरे दिन भी यमुना के किनारे सोम तीर्थ, सूर्य तीर्थ, कुबेर तीर्थ, वायु तीर्थ, अग्नि तीर्थ, श्री बल्लभाचार्य की बैठक, गदामाधव, कम्बलाश्वतर नाग एवं राम सागर का दर्शन करें। तीसरे दिन यमुना तट पर श्राद्ध एवं यमुना जी के मध्य पहाड़ी पर महादेव जी का दर्शन करें। चौथे दिन यमुना पार वन महादेव का दर्शन करें। पाँचवे दिन द्रोपदी घाट पर विश्राम करें। छठे दिन शिवकुटी, सातवें दिन पड़िला महादेव एवं मानस तीर्थ का दर्शन करें। आठवें दिन झूँसी में नागतीर्थ एवं शंखमाधव का दर्शन करें। नवें दिन झूँसी में ही व्यासाश्रम, समुद्रकूप, ऐल तीर्थ संकष्टहरमाधव, संध्यावट,

हंसकूप, जलकुण्ड, उर्वशीकुण्ड एवं अरून्धती तीर्थ का दर्शन करें। दसवें दिन त्रिवेणी आकर परिक्रमा समाप्त करें।

प्रयाग तथा उपतीर्थों (प्रतिष्ठानपुर) में दान का माहात्म्य विशेष रूप से माना जाता था। अग्नि पुराण (अध्याय 11) के अनुसार जो व्यक्ति प्रयाग में तथा उपतीर्थ स्थलों में दान देता है वह स्वर्ग प्राप्त करता है और अपने दूसरे जीवन में वह सम्म्रट होता है।

तीर्थ स्थलों में राजा द्वारा धन देने की परम्परा बहुत प्राचीन रही है। पहली सदी ई0 के क्षत्रप नहपाण के जामाता उष्वदात द्वारा प्रभास नामक पुण्य तीर्थ में आठ ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और अन्य अनेकविध धन (नहपाण-कालीन नासिक गुहालेख और कार्ले गुहालेख) महाराज हर्षवर्धन द्वारा प्रति पाँचवे वर्ष प्रयाग में सर्वस्व दान कर देने का विवरण (वार्र्स11366) काश्मीर नरेश जयापीठ द्वारा प्रयाग में ब्राह्मणों को एक कम एक लाख अश्वों का दान (राजतरंगिणी 4/314-18)[69] और काश्मीर नरेश हर्ष द्वारा दान में पुण्यार्थ वाराणसी के अनेक मठों से विभूषित करना (राजतरंगिणि-सर्ग 7, पंक्ति 20-20)[70] सम्बन्ध मानसिकता के प्रारम्भिक स्वरूप की ओर इंगित करते है। दान के बदले पुण्य देने का प्रलोभन पौराणिक ग्रंथों में ज्यादा दिखाई देता है। दान द्वारा प्राप्त पुण्य व्यक्ति को पुनर्जन्म के बन्धनो से मुक्त कर देता है। दान देने का उद्देश्य पुत्र, पौत्र, ग्रहैश्वर्य, पत्नी, धर्मार्थकीर्ति, विद्या, सौभाग्य, आरोग्य, सर्वपापोपशान्ति, स्वर्गार्थ, भुक्ति-मुक्ति प्राप्त हो गया। अन्ततः दान देने की प्रथा पंक्तिबद्ध हो चली और दान की अवधारणा में निहित 6 तत्वों - दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्मयुक्त देय, देय का औचित्य और दान के स्थान और समय पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

प्रयाग में दान करना, अन्य तीर्थे में दान देने की अपेक्षा सहस्र गुणित फलदायी होता है (ब्रह्मपुराण, 59/11-12)[71]।

प्रयाग में दान संख्या का सामाजिक महत्व भी था। मत्स्य (106/8-9)[72], पद्म (3/43/9)[73], कूर्म (1135/6-7)[74], नारदीय (2/63/125-126)[75] एवं त्रिस्थली सेतु (पृष्ठ 50)[76] आदि ग्रन्थों में उल्लेख है कि जो व्यक्ति गंगा-यमुना के संगम पर योग्य व्यक्ति से अपनी कन्या का आर्ष रीति से विवाह करता है, वह अपने इसी एक सत्कर्म से स्वर्ग का अधिकारी बनता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही दान के लिए प्रयाग सर्वाधिक महत्वशाली तीर्थ था। अतः अन्य किसी भी स्थान की अपेक्षा प्रयाग श्रोत्रिय विद्वान अधिक सम्पन्न होते थे। इसलिए कन्या के सुख-सौभाग्य को दृष्टि में रखकर आर्ष विवाह के लिए द्विजों को प्रेरित किया गया था।

प्रयाग में विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता वास करते है तथा यहाँ किये जाने वाले दान की वे भी प्रशंसा करते हैं-

यत्र विष्णुश्च अदृश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पनुः।
वेऽपि सर्वे वसन्तीह प्रयागे तीर्थसत्तमें।।
तत्र दानं प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च।
(पद्म पुराण 6/25/22)

प्रयाग में दान के महत्व की भारत भर में जो स्वीकृति हुई उसे अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी पुष्ठ किया जा सकता है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में अनेक राजाओं क़े अगणित दानपत्र प्राप्त होते हैं जो इस क्षेत्र में दान के महत्व एवं उसकी मान्यता को प्रमाणित करते हैं। अनेक राजाओं ने प्रयाग में आकर योग्य वैदिक ब्राह्मणों को अपने राज्य का कोई ग्राम दान में दिया, जो उनकी एवं् उनकी संततियों की आजीविका का चिर साधन बना था। नरार्धन ताम्रपत्र के अनुसार विदर्भ के राजा स्वामिराज (छठीं शती) ने प्रयाग में चटुकवट (सम्भवतः अक्षयवट) के समीप निवास

किया तथा वहाँ रहते हुए उन्होनें शुक्ल कृष्ण यजुर्वेदीय एवं सामवेदीय ब्राह्मणों को संकल्प पूर्वक अंकोल्लिका ग्राम दान में दिया था।

नलवंश के महाराज भवत्तवर्मन (पाँचवी-छईं ई0) ने सपत्नीक प्रयाग आकर पराशरगोत्रीय मात्राध्यादत्तार्य एवं उसके आठ पुत्रों को कदम्वगिरी नामक ग्राम दान में प्रदान किया, ऐसा उल्लेख रिथपुर (महाराष्ठ) में प्राप्त एक ताम्रलेख में मिलता है। मैनामादी से प्राप्त एक अभिलेख में उल्लेख है कि बंश देश के चन्द्रवंशी नरेश लाडचन्द्र (1000-1020 ई0) ने गंगा-यमुना के पावन जल द्वारा पवित्र प्रयाग में ब्राह्मणों को प्रभूत दान दिया।

झूँसी से प्राप्त एक ताम्रलेख से पता चलता है कि प्रतिहार शासक त्रिलोचन पाल (1014 ई0) ने प्रयाग में गंगा के किनारे निवास करते हुए प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) के छः हजार विभिन्न गोत्र एवं वैदिक शाखाओं के ब्राह्मणों को लोभुण्डक नामक ग्राम दान में दिया था।

कलचुरि नरेश कर्णदेव (1041 ई0) ने वेणी में स्नान करके शिव का पूजन किया तथा अपने पिता गांगेयदेव का वार्षिक श्राद्ध किया और इस अवसर पर सूसी नामक ग्राम कौशिकगोत्रोत्पन्न वाजसनेमी शाखा के विद्वान ब्राह्मण विश्वरूप को दान में दिया। यह उल्लेख उक्त राजा के बनारस से प्राप्त एक ताम्रपत्र में मिलता है।

एक लेख के अनुसार गाहड़वाल वंशीय नरेश गोविन्दचन्द्र (1125 ई0) ने प्रतिष्ठानपुर में विधिवत गंगा स्नान करके गौतमगोत्रीय छीच्छाशर्मन् एवं वाच्छटशर्मन को ''अगोडली'' ग्राम का दान हाथ में जल लेकर संकल्पपूर्वक दिया था।

प्रयाग में दान से सम्बनधित सर्वाधिक महत्वशाली वर्णन ह्वेनसांग करता है (वाटर्सः भाग 2, पृष्ठ 364)।

सम्राट हर्ष हर 5वें वर्ष प्रयाग आकर अपने सम्पूर्ण अतिरिक्त कोश का दान उचित पात्रों को कर देते थे।

हर्ष का प्रति पाचवें वर्ष प्रयाग आगमन सन्देह से परे प्रतीत होता है। वह माघ मास में प्रयाग आता था, ऐसा उल्लेख हुई-ली कृत श्वॉन च्वॉग की ''लाइफ'' में मिलता है।

कल्हण ने राजतरंगिणी (4/414-18)[78] में एक अत्यन्त रोचक उल्लेख किया है। कश्मीर के राजा जयापीठ (आठवीं शती) अपने अनुचरों के साथ प्रयाग आये। उन्होंने वहाँ बड़े ही उत्साह के साथ प्रभूत दक्षिणा सहित 10 हजार नौ सौ 19 घोड़ों का दान किया तथा इस आशय की एक मुद्रा जारी की कि जो भी प्रयाग में एक लाख घोड़ों का दान करेगा वही मेरी इस मुद्रा को अपनी मुद्रा में बदल सकता है।

कश्मीर के ही प्रसिद्ध कवि विल्हण के विक्रमांक देवचरित (18/90-91)[79] में उल्लेख है कि बिल्हण स्वयं् पुण्यलाभ हेतु प्रयाग आये तथा यहाँ पर उन्होंने स्वयं् द्वारा अदिति संसार के आश्चर्य स्वरूप अनेक बहुमूल्य रत्नों का दान किया।

इस प्रकार प्रयाग तथा इसका उपतीर्थ प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) वह पवित्रतम क्षेत्र है जहाँ आसेतु-हिमाचल विस्तृत भारत के राजनैतिक दृष्टि से बिखराव के काल में भी सभी क्षेत्रों से नरेशों एवं बुद्धिजीवियों ने आकर उत्साहपूर्वक योग्य ब्राह्मणों को बहुमूल्य दान दिया। सामान्य एवं मध्यवर्ग की तो बात ही क्या है। वे तुलसीदास की इस पंक्ति- ''माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथराज आव सब कोई''।।

<u>झूँसी के टीलों का उत्खनन कार्य</u>

प्रतिष्ठानपुर के शासक पुरूरवा-युगीन अनछुये पहलुओं के उजागर होने की संभावना

इलाहाबाद विश्वविद्यालय 26 अप्रैल 1998 में पूर्व के प्रतिष्ठानपुर वर्तमान में झूँसी के समुद्रकूप वाले टीले के उत्खनन कार्य से पौराणिक नगर प्रतिष्ठानपुर के चन्द्रवंशीय शासक पुरूरवा-युगीन कुछ अनछुए पहलुओं के उजागर होने की संभावना है। प्रतिष्ठानपुर चन्द्रवंशीय शासक 'पुरूरवा' और 'उर्वशी' की उस गौरव गाथा का प्रतीक है जिसका वर्णन महाकवि कालिदास ने स्वरचित संस्कृत नाटक "विकृमोर्वशीयम्" में किया है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरात्व विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 वी0डी0 मिश्र व उनके अनेकों सहयोगियों के निर्देशन में कराये जा रहे उक्त उत्खनन कार्य से चन्द्रवंशीय शासकों के युग, सभ्यता के वे तमाम दबे हुए अवशेष बाहर आ सकते हैं, पुरातत्ववेताओं को ऐसी आशा है।

ज्ञातव्य है कि प्राचीन प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) के समुद्रकूप वाले टीले पर विगत मार्च माह से उत्खनन कार्य चल रहा है। उत्खनन का कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व के विभागाध्यक्ष प्रो0 वी0डी0 मिश्र जी एवं उनके सहयोगियों द्वारा कराये जा रहे उत्खनन कार्य का डा0 मुरली मनोहर जोशी, मानव-संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार ने अवलोकन किया। गत दिवस 25 अप्रैल को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक श्री अजय शंकर आई0ए0एस0 ने भी अपनी टीम के साथ उसका निरीक्षण किया। विभागाध्यक्षय प्रो0 वी0डी0 मिश्र ने उनका मौके पर स्वागत किया तथा उत्खनन कार्य से अवगत कराया। उन्होंने उत्खनन की भावी योजना और उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। श्री अजय शंकर ने

उत्खनन कार्य की तकनीकी पटुता की सराहना की और अपनी ओर से भविष्य में हर संभव सहायता का आश्वासन दिया।

पुरातात्विक खुदाई साक्ष्य (5 अप्रैल 1998, दैनिक जागरण)

4 अप्रैल 1998 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा प्रतिष्ठानुपर झूँसी के हवेलिया टीले पर कराई जा रही खुदाई प्रगति पर है। गंगा तट के दक्षिण छोर पर उल्टा किले के नाम से अभिहित इस उत्खनन स्थल से नवीनतम प्राप्त अवशेषों में लोहे का एक अस्त्र, हड्डी के वाण्मग्र ओर सूत कातने की तकली प्राप्त हुई हैं। लौह उपकरण के अस्त्र की पहचान हारपून (भाले) के रूप में आंकी गयी है। उत्खनन से प्राप्त अवशेषों से उत्साहित पुरातत्वविद गंगाघाटी की प्राचीनतम लौह संस्कृति के अंतिम धरातल पर पहुंचने की बात करते हैं।

उत्खनन टीले पर टीम का नेतृत्व कर रहे प्रो. वी.डी. मिश्र और उनके सहयोगी डा0 जे. एन. पाण्डेय एवं प्रो0 जे. एन. पाल ने बताया कि यद्यपि विगत दो सत्रों की खुदाई (1995 व 1998) के दरम्यान भी 1100 ई0 से 1000 ई0पू0 तक के प्राचीनतम धरातल से लोहे के मानव द्वारा प्रयोग के प्रमाण प्राप्त हुए थे लेकिन उसी क्रम में वर्तमान उत्खनन के फलस्वरूप लोहे के संयुक्त प्रमाण मिलने से यह अब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गंगा के मैदान में सर्वप्रथम मानव का लोहे से परिचय 1100 से 1200 ई0पू0 के पूर्व भी हो गया रहा होगा। लगभग इसी तरह के लोहे के प्रमाण राज्य पुरातत्व विभाग, उत्तर प्रदेश के निदेशक डा0 राकेश तिवारी की टीम द्वारा विगत वर्ष किये गये सोनभद्र जिले में राजा नल के टीले से प्राप्त हुए हैं। खुदाई स्थल पर प्रो0 जे0एन0 पाल ने बताया कि उत्खनन के लिए इस वर्ष डाली गयी दो खंतियों ए-15 में 48 स्तर हुए है ओर टीले के ऊपरी

छोर से 12-50 मीटर नीचे तक की संस्कृति को खोदा जा चुका है। इस संस्कृति में नवीनतम प्राप्त अवशेषों में लोहे का एक अस्त्र, हड्डी के वाणाग्र और सूत कातने की तकली भी प्राप्त हुई है। खंती संख्या बी-15 खुदाई टीले 12-5 मीटर नीचे और 47 लेयर निर्माण के धरातल तक हुई है। इस खंती में से आवां जिसमें मिट्टी के बर्तन पकाये जाते हैं, के अब तक अनेक प्रमाण दृष्टिगत हुए हैं। इसके अतिरिक्त परवर्ती काल का एक रिंगवेल भी प्राप्त हुआ है। प्राप्त पात्र खडों के विषय में प्रो. पाल ने बताया कि झूँसी के पात्र खण्ड विशिष्ट प्रकार के हैं जिसमें सामान्य रूप से पाये जाने वाले पात्र प्रकारों ब्लैंक एण्ड' रेड वेयर, ब्लैक स्लिप्ड वेयर, रेडवेयर, लिप्ड वाउल और मोवलेट (बाउल) प्राप्त हो रहे है।

गर्मी की इस तपती धूप में खुदाई कार्य में प्राध्यापक, शोध छात्र और तकनीकी कर्मचारीगण सतत कार्यरत हैं। जिसमें प्रो० वी.डी. मिश्र, डा० जे. एन. पाण्डेय प्रो० जे.एन.पाल, डा० अनिल कुमार दुबे, शोध छात्र शैलेन्द्र त्रिपाठी, रामनरेश, महेन्द्र सिंह राणा आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। तकनीकी कर्मचारी सर्वेयर हर्षनाथकर, वी.एन.राय, राजेन्द्र यादव, वी.के. खत्री, राजेश यादव कमलेश कुमार, फोटोग्राफर, अरविन्द मालवीय, शरद सुमन तथा इलाहाबाद संग्रहालय के वरिष्ठ छायाकार संजय कुमार व उनके पुत्र निशांत कुमार बी.ए.के छात्र योगदान के रूप में कार्य कर रहे हैं।

प्रतिष्ठानपुर के शासक पुरूरवा युगीन अनछुऐ पहलुओं के उजागर होने की संभावना-(27 अप्रैल 1998 दैनिक जागरण)

26 अप्रैल 1998 को पूर्व के प्रतिष्ठानपुर वर्तमान में झूँसी के समुद्रकूप वाले टीले के उत्खन्न कार्य से पौराणिक नगर प्रतिष्ठानपुर के चन्द्रवंशीय शासक होने की संभावना है। प्रतिष्ठानपुर चन्द्रवंशीय शासक पुरूरवा और उर्वशी की उसे गौरव गाथा

का प्रतीक है जिसका वर्णन महाकवि कालीदास ने स्वरचित संस्कृत नाटक "विक्रमोर्वशीयम्" में किया है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग की ओर से कराये जा रहे उक्त उत्खनन कार्य से चन्द्रवंशीय शासकों के युग की सभ्यता के वे तमाम दबे हुए अवशेष बाहर आ सकते हैं, पुरातत्ववेत्ताओं को ऐसी आशा है।

ज्ञातव्य है कि प्राचीन प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के समुद्रकूप वाले टीले पर विगत मार्च माह से उत्खन्न कार्य चल रहा है। उत्खन्न का कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन अतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभागाध्यक्ष प्रो0 वी0डी0 मिश्र जी, उनके सहयोगियों द्वारा कराये जा रहे उत्खन्न कार्य का डॉ0 मुरली मनोहर जोशी, मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार ने उत्खनन कार्य को समय निकाल कर अवलोकन किया। गत दिवस 25 अप्रैल को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक श्री अजय शंकर, आई.ए.एस. ने भी अपनी टीम के साथ उसका निरीक्षण किया। विभागाध्यक्ष प्रा0. वी.डी. मिश्र जी ने उनका मौके पर स्वागत किया तथा उत्खनन कार्य की प्रगति से अवगत कराया। उन्होंने उत्खनन की भावी योजना एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। श्री अजय शंकर ने उत्खनन कार्य की प्रगति पर संतोष व्यक्त किया तथा कार्य की तकनीकी पटुता की सराहना की और अपनी ओर से भविष्य में हर संभव सहायता का आश्वासन दिया।

उत्खनन से उपलब्ध महत्वपूर्ण पुरानिधियों को प्रो0 जे.एन. पाण्डेय, डा0 यू. सी. चट्टोपाध्याय, डा0 प्रकाश सिन्हा, डा0 दीप कुमार शुक्ल, डा0 मानिक चन्द्र गुप्त तथा अन्य तकनीकी कर्मचारी उपस्थित थे।

ज्ञातव्य है कि विभाग ने वर्ष 1995 में भी झूँसी का उत्खनन कराया था। उस वर्ष की रिर्पाट प्रकाशित हो चुकी है।

झूँसी उत्खनन से एक नया अध्याय जुड़ने की संभावना -:

31 मई 1998 को प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहावाद विश्वविद्यालय द्वारा शहर से सटे गंगा नदी के घाट तट पर स्थित झूँसी हवेलिया टीले का विस्तृत उत्खनन विगत दो महीने से किया जा रहा है। यहां पर अब तक के उत्खनन और उससे प्राप्त सामग्री से ऐतिहासिक दृष्टि से इस स्थल की कहानी आज से 4000 वर्ष पूर्व तक जाती है।

प्रो0 वी0 डी0 मिश्र जी और प्रो0 जे0 एन0 पाण्डेय, प्रो0 जे0 एन0 पाल के निर्देशन में हो रहे उत्खनन में गंगाघाटी के इतिहास में एक नये अध्याय जुड़ने की सम्भावना है। कौशाम्बी, श्रृंगवेरपुर, हस्तिनापुर, अंतरजीखेड़ा की ही तरह प्रतिष्ठानपुर (प्राचीनतम) का भी महत्व रहा होगा जैसा कि अब तक के उत्खननों से प्रमाणित हो चुका है। टीले के एक क्षेत्र में दो इंचों (सी-12 और डी-12) में पूर्ण हुए उत्खनन तथा सी-15 तीसरे खंती में 9.30 मी0 से 10-10 मीटर के स्तर से मिले भयंकर अग्निकांड से बहुत सम्भव है कि इस स्थल का नाम सौंसी (हवंसी) झूँसी पड़ा क्योंकि 30 एकड़ के विस्तृत क्षेत्र में फैले टीले में अनेक धाराओं पर सी धरातल से जले हुए के निशान प्रमुख मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

उत्खनन कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले पुरातत्ववेत्ता प्रो0 वी. डी. मिश्र, प्रो0 जे. एन. पाण्डेय, प्रो0 जे. एन. पाल ने अब तक के मिले अवशेषों में हिन्दू और बौद्ध धर्म के देवी-देवताओं की मूर्तियां, आहत सिक्के और उत्तरी भारत की महतवपूर्ण पात्र परम्परा व एन0बी0पी0 को महत्वपूर्ण माना है। उन्होने इसके नदी तट पर स्थित होने के चलते इसके आंतरिक और बाह्य व्यापार की दृष्टि से महत्ता को बतलाया। यहां पर 1050 हेक्टेयर के धरातल से मिले प्रमाण को गंगाघाटी में लोहे प्रयोग की संस्कृति को और प्राचीनतम स्तर तक ले जाया जा

सकता है। उत्खनन कार्य के अभी 15 दिन और चलने की संभावना है और अब तक इस स्थल पर इस महत्पूर्ण कार्य के अवलोकन हेतु अनेक मंत्री भी आ चुके हैं।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री तथा प्रौद्योगिकी मंत्री ने गत 17 अप्रैल 1998 को इस स्थल पर आकर सम्पूर्ण कार्य का व्यौरा लिया और इस टीले की और विस्तृत पैमाने पर उत्खनन करने की योजना वनाने का प्रो0 मिश्र जी को सलाह दी।

विगत 25 अप्रैल 1998 को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली के महानिदेशक अजय शंकर अपनी टीम के साथ आये और उत्खनन कार्य का विस्तृत अवलोकन किया। इसके अतिरिक्त देश-विदेश के इतिहासविदों एवं पुरातत्वविदों ने इस स्थल पर आकर इस महत्वपूर्ण कार्य की प्रशंसा की।

उत्खनन कार्य की टीम में प्रो0 जे. एन. पाण्डेय, डा0 एम.सी. गुप्त, ए. के. दुबे, शोध छात्र, रामनरेश सर्वेयर, एल. के तिवारी, हर्षनाथ कर, राजेन्द्र यादव फोटोग्राफर संजय कुमार, फूलचन्द्र आदि का योगदान महत्वपूर्ण है।

2 जून 1998 को इलाहाबाद के झूँसी स्थित हवेलिया टीले पर चल रहे उत्खनन कार्य से लौह-युगीन संस्कृति के महत्वपूर्ण प्रमाण मिले हैं जो कि गंगाघाटी में लौह संस्कृति को 1100 ई0पू0 काल तक ले जाते है जबकि गंगाघाटी में अभी तक 800 ई0पू0 तक के ही प्रमाण प्राप्त है। पुरातत्ववेत्ताओं को यहां पर उत्तरी काली-चमकीली मृदभाण्ड परम्परा (एन0बी0पी0) का सबसे मोटा जमाव भी मिला हैं ताम्र पाषाणिक संस्कृति में ढाई से तीन मीटर का ऐसा मोटा जमाव अभी तक कहीं से नहीं मिला है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा गंगा तट पर किये जा रहे उत्खनन सं प्राप्त सामग्री यहां की सभ्यता को 1800 ई0पू0 के काल को दर्शाती है।

प्राचीन इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 वी.डी. मिश्र जी के निर्देशन प्रो0 जे. एन. पाण्डेय एवं प्रो0 जे. एन. पाल की देखरेख में झूँसी के हवेलिया टीले पर गत 23 मार्च 1998 से उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ। खुदाई में विश्व स्तर के साक्ष्य मिले है। प्राप्त अवशेषों में सुव्यवस्थित भवन निमार्ण के प्रमाण विभिन्न प्रकार के उत्कृष्ठ पात्रखण्ड, मनके, मृण्मूर्तियां, जले हुए पर्याप्त संख्या में अनाज, जले हुए कपड़े व रस्सी, बाणाग्र, पशु-पक्षियों की हड्डियां आदि प्राप्त हुए हैं। साक्ष्यों से यह प्रतीत होता है कि यहां पर यदि बृहद उत्खनन कार्य हो तो पूरे प्रतिष्ठानपुर नगर का सन्निवेश प्रकाश में आ सकता है। प्रमाण इस बात को स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि 1800 ई0पू0 से लेकर मुगलकाल व उसके उपरान्त होने के वाद भी आबाद होता रहा है। इस स्थल के भौगोलिक एवं प्राकृतिक दृष्टिकोण के सुरक्षित वातावरण से यहां पर आर्थिक स्थितियां मजबूत रहने के संकेत मिलते हैं।

पुरातत्ववेत्ताओं को उत्खनन के दौरान सुरक्षा दीवार मिली है जो आज से 1500 ई0पू0 (Chalcolithic) ताम्र पाषाणिक संस्कृति युग को दर्शाती हैं। दीवार के बाहर भी बस्ती के प्रमाण मिले है जो कि मध्यकालीन इतिहासकार प्रो0 इरफान हबीब की पुस्तक तुर्क और शहरीकरण की थ्योरी से काफी मिलता जुलता है।

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा का सबसे मोटा 2.50 से 3 मी0 का जमाव यहां से प्राप्त हुआ है। सामान्यतः अभी तक 1 मीटर का ही जमाव मिला जो बहुत बड़ा माना जाता है। गंगाघाटी में ऐसा जमाव नहीं मिला है।

गंगाघाटी में लौह युगीन संस्कृति 800 ई0पू0 की मिली है। लेकिन यहां पर 1000 से 1100 ई0पू0 की प्राप्त हुई है जो अपने आप में काफी महत्वपूर्ण है। जो आहत सिक्के मिले है उस पर देखने में चिह्न बहुत अच्छे लगते हैं। विस्तृत अध्ययन होने पर नयी चीज प्रकाश में आयेगी।

इलाहाबाद संग्रहालय के अध्यक्ष प्रो0 जी0सी0 पान्डे ने अपने अवलोकन में इनको काफी महत्व दिया है।

खुदाई में 9.50 मी0 से लेकर 10.10 मी0 तक धरातल से (400 ई0पू0) जलने के भीषण अग्निकाण्ड के साक्ष्य मिले हैं जो पूरे टीले में जगह जगह फैले हुए हैं। पुरातत्ववेत्ताओं ने इस प्रमाण को दो संभावनाओं के रूप में व्यक्त किया है। प्रथमतः दुर्घटना मानकर अध्ययन किया है। दूसरे में इसे वाह्य आक्रमण का प्रमाण माना है। इसके विषय में यह कहा गया है कि वाह्य आक्रमण की जो जानकारी मिलती है वह बर्बर यवन आक्रमण की है। गार्गी संहिता, युग पुराण, पतंजलि के महाभाष्य में दुष्ट यवनों के गंगाघाटी में भीषण उत्पात करने का उल्ललेख प्राप्त होता है।

यह स्थल पुरातात्विक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। पहले 1860 में एलेक्जेन्डर कनिंधम ने इस टीले की महत्ता के बारे में बताया था और यहाँ पर महत्वपूर्ण संस्कृति के अवशेष की चर्चा की। सर मार्टिगर हलीर ने अपनी पुस्तक Early Civilization Of India and Pakistan (अर्ली सिविलाइजेशन ऑफ इंडिया एण्ड पाकिस्तान) में इसका विस्तृत उल्लेख किया है। 1935 में सालिगराम श्रीवास्तव की पुस्तक "प्रयाग प्रदीप" में 25 घाटों की चर्चा की गयी है। ऋग्वेद एवं परवर्ती साहित्य स्कन्दपुराण आदि में यहां का उल्लेख मिलता है।

यहां के पुरातात्विक उत्खनन से न केवल इतिहास के अछूते प्रश्नों का समाधान हो रहा है, वरन् इन भौतिक पुरावशेषों से समसामयिक जन-जीवन के सांस्कृतिक एवं धार्मिक विश्वासों का परिचय प्राप्त होता है। उत्खनन से प्राप्त विभिन्न हिन्दू-बौद्ध धर्म से सम्बंधित देवी-देवताओं की मृण-प्रस्तर मूर्तियां एवं प्रतीकात्मकता के रूप से बने हुए आभूषणों में भी इस प्रकार के विश्वासों का दिग्दर्शन प्राप्त होता

है। बौद्ध-धर्म से संबंधित तिरत्न, स्तूप एवं धर्मचक्र इत्यादि इस बात के साक्षी हैं। इस क्षेत्र में हिन्दू धर्म के साथ-साथ बौद्ध धर्म की विविध परम्परायें विद्यमान थीं।

संगम तट पर स्थित होने के कारण यह अनेक संस्कृतियों का मिलन विन्दु भी था। संस्कृति के विविध पक्ष यथा आर्थिक जीवन, कलात्मक वैशिष्टय, आंतरिक व बाहृय व्यापार व वाणिज्य से इस स्थल को सम्बंधित किया जा सकता है। साथ ही यहां से गंगाघाटी में बसे नगरों यथा मथुरा, हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा, अहिच्छत्र, कौशाम्बी, पाटलीपुत्र, राजघाट इत्यादि से सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्बंधों की प्रबल सम्भावना दिखाई पड़ती है। पुरातत्ववेत्ताओं ने उत्खनन के दौरान यहां पर पाँच गुणा 5 मी0 की दो टेन्च (खनती) डाली। साढ़े छः मी0 अन्दर जाने के बाद अनेक निर्माण के प्रमााण मिलने के कारण उसके नीचे जाना संभव नहीं हो पाया। तीसरी खनती सी-15 डाली गयी। उसें कुषाण काल से लेकर ताम्र पाषाणिक धरातल के प्रमाण प्राप्त हुए। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग ने 1995 में यहां पर सांस्कृतिक अनुक्रम जानने के लिए खुदाई करायी थी। उसी समय यहां पर '1800 ई0पू0 से लेकर मुगलकाल' तक के प्रमााण मिले थे। उत्खनन स्थल के पास संत कबीर के दीक्षा गुरू सूफी शेख संत मीरत की प्रसिद्ध मजार है। पुरातत्व वेत्ताओं का आंकलन है कि यह स्थल हिन्दू और बौद्ध धर्म के समन्वय का केन्द्र था। इसी प्रकार मध्यकाल में हिन्दू और मुस्लिम धर्म का समन्वय रहा होगा।

प्रो0 जे.एन. पाल ने कहा कि यदि सरकारी प्रोत्साहन समुचित रूप से मिले तो पूरे प्रष्ठिानपुर नगर का सन्निवेश प्रकाश में आने की सम्भावना है जिससे कि एक समुचित सभ्यता के मिलने की पूरी संभावना है।

(3) <u>हमारा प्रयास संजाति इतिहास की दृष्टि से</u>

जनवृतान्त (Ethnography)-

जनवृतान्त का शाब्दिक अर्थ है "मानव समूह"। समूहों का चित्रण करना। क्षेत्रिय कार्य के दौरान अवलोकन, वंशातालिका आदि के द्वारा वे विभिन्न संस्थाओं के सम्बन्ध में तथ्य एकत्र करते हैं और उनकी परस्पर तुलना करके निष्कर्ष निकालते हैं। इस प्रकार समाज विशेष से सम्बंधित तथ्यों का विवरण करना ही "जनवृतान्त" है। दूसरे शब्दों में सामाजिक-सांस्कृतिक मानववेत्ता "जनवृतान्त" तैयार करते हैं ताकि अन्य उसे पढ़ें और समाज के सम्बन्ध में जान सकें।

प्रत्येक प्रशिक्षित सामाजिक मानववेत्ता अपने जीवनकाल में एक-दो जनवृतान्त अवश्य तैयार करता है। जनवृतान्त वर्णनात्मक होता है। यह एक भौगोलिक क्षेत्र के किसी एक मानव समूह/समाज पर तैयार किया जा सकता है, अथवा एक ही क्षेत्र के कई एक समूहों पर तुलनात्मक ढंग से लिखा जा सकता है। एक वर्णनात्मक जनवृतान्त में समाज विशेष के निम्न तथ्यों का उल्लेख रहता है-

समाज का पर्यावरण, विशिष्ट जातीय लक्षण, जनांकिकी व अन्य आँकड़े, तकनीकी, अर्थव्यवस्था, सामाजिक संगठन, विधान, धर्म, जादू, लोक कथाएं, मनोरंजन आदि।[80]

<u>संजाति इतिहास</u>

शाब्दिक दृष्टिकोण से "संजाति इतिहास" शब्दावली का अर्थ है -"मानव प्रजातियों का अध्ययन"। मानव विज्ञान के इतिहास के आरम्भिक काल में इस शब्दावली का प्रयोग अधिक था क्योंकि उन दिनों - विशेषकर यूरोपीय देशों में मानव विज्ञान का अभिप्राय मानव प्रजाति का अध्ययन, उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं के सन्दर्भ में करने से था। इस अर्थ में जनवृतविज्ञान तत्कालीन शारीरिक मानवविज्ञान

के अत्यन्त निकट था। ग्रेट ब्रिटेन में संजाति इतिहास के स्थान पर ''सामाजिक मानवविज्ञान'' शब्दावली अधिक प्रबल थी।

20 वीं सदी के आरम्भ से ही संयुक्त राज्य अमेरिका में ''संजाति इतिहास'' को सांस्कृतिक मानवविज्ञान की एक उपशाखा के अन्तर्गत स्वीकृत किया गया।''

इस तरह ग्रेट ब्रिटेन को छोड़कर समस्त यूरोपीय देशों तथा अमेरिका में ''संजाति इतिहास'' शब्दावली को मानव समूहों की सांस्कृतिक विशेषताओं की रूपरेखा, उनका पूर्व एवं वर्तमान इतिहास चित्रित करने के लिए अधिक उपयुक्त समझा गया। संजाति इतिहास का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि विभिन्न मानव समूह परस्पर सम्पर्क में किस प्रकार आये, उनका स्थानान्तरण तथा मिश्रण, उनका अतीत एवं वर्तमान काल में वर्गीकरण क्या है।

स्पष्ट है कि ''संजाति इतिहास'' अध्येताओं का झुकाव ''इतिहास'' की ओर अधिक है। विभिन्न समूहों के पारिस्थितिक प्रमाणों को तुलानत्मक दृष्टिकोण से जांच करके अनुमानिक निष्कर्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं। अमेरिका में आदिम समूहों के इतिहास लिखने की परम्परा फ्रान्ज बोआस ने शुरु की थी। उनके छात्रों में अग्रणी था - अल्फेड क्रोबर। इसी कारण ''जनवृतविज्ञान या संजाति इतिहास'' को सांस्कृतिक इतिहास भी कहा गया है।[81]

संक्षेप में, ''संजाति इतिहास'' एक भौगोलिक क्षेत्र (प्रदेश/देश/महादेश) के मानव समूहों का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टिकोण से करता है। एक संजातिशास्त्री (Athnologist) सभी उपलब्ध तथ्यों को तुलनात्मक विधि से जांच कर सांस्कृतिक विशेषताओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन करता है। चूँकि आदिम समूहों का लिखित इतिहास नहीं होता है इस कारण जनवृतशास्त्री का अनुमान गलत भी हो सकता है।

संजाति इतिहास कई रूपों में परिभाषित किया गया है।

"संजाति इतिहास उन व्यक्तियों का इतिहास है जिसका अध्ययन सामान्यतः मानवविज्ञानशास्त्री करते हैं"। "इतिहास" के दो रूपों का अध्ययन करते समय हम मानवविज्ञानशास्त्रियों तथा इतिहासवेत्ताओं की अध्ययन पद्धती में भिन्नता पाते हैं। मानवविज्ञानवेत्ता लिखित अभिलेखों को संजाति इतिहास का आधार मानते हैं (जो कि 'इतिहास' की एक संकीर्ण परिभाषा है) जबकि इतिहासवेत्ता अलिखित अथवा लिखित अभिलेखों को समाज के भूतकाल को जानने के लिए केवल एक आधार के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार या तो ऐसे लिखित अभिलेख पूर्ण नहीं हैं अथवा पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हैं ('इतिहास' की यह एक विस्तृत परिभाषा है) मानवविज्ञानशास्त्री गैर-मानवविज्ञानशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त साक्ष्य (अर्थात् ऐतिहासिक अभिलेख) के साथ-साथ क्षेत्र सर्वेक्षण को संजाति इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक अंग मानते हैं जबकि इतिहासवेत्ता क्षेत्र सर्वेक्षण को इतिहासवेत्ताओं के लिए एक गैर-ऐतिहासिक (अर्थात् सामाजिक विज्ञान का लेखा-जोखा) अनुपयुक्त समझते हैं।

संजाति इतिहास को परिभाषित करने के लिये तीन दृष्टियां महत्वपूर्ण हैं - (1) भूत अथवा वर्तमान पर केन्द्रित होना, (2) लिखित अथवा अलिखित 'अभिलेखों' का प्रयोग, (3) तत्कालीन भाषा अथवा लिपि एवं इतिहास की 'लोक दृष्टि' और यह ध्यान देना कि समाज के अध्ययन का आधार पश्चिमी या पूर्वी सभ्यता है अथवा पाश्चात्य विचारधारा है।

संजाति इतिहास की दो प्रमुख रुचियां हैं जिन्हें मानवजाति के वैज्ञानिक विश्लेष्ण तथा मानव इतिहास के रूप में जाना जा सकता है। मानवजाति का वैज्ञानिक अध्ययन भूतकाल की संस्कृति के अलिखित विवरण का पुनर्निर्माण है, विशेषतया उस काल के अभिलेख। इतिहासवेत्ताओं ने मध्य-यूरोपियन नगरों, चौदहवीं से सोलहवीं सदी की कला आदि से प्रभावित इस प्रकार के अनेक संजाति इतिहासों

को जन्म दिया है। उन का प्रयत्न इन ऐतिहासिक तथ्यों को उन तथ्यों के निकटतम लाना है जो क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं। यद्यपि वे प्रमाण वही नहीं होते जिन्हें मानवविज्ञानशास्त्री ने स्वयूं देखा, सुना अथवा उसे बताया गया हो अपितु वे तथ्य होते हैं जिन्हें गैर-मानवविज्ञानशास्त्री द्वारा पढ़ा और लिखा गया हो। मानवविज्ञानशास्त्री को प्रायः वांछित तथ्य अथवा सूचनाएं लिखित अभिलेखों से अधिक जीवित समाज से प्राप्त होते हैं और अध्ययन के अन्तर्गत समाज के विषय में यह अभिलेख प्रायः बाहरी लेखकों के द्वारा लिखे जाते हैं जो पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होते हैं जबकि जीवित समाज द्वारा दी गयी सूचनाएं पक्षपात तथा त्रुटिविहीन होती हैं। जहां तक सम्भव हो इन पक्षपातों पर निगाह रखनी चाहिए, इनका संज्ञान लेना चाहिए और इन्हें सही करना चाहिए।

संजाति इतिहास के लेखन में उपलब्ध अभिलेख काफी उपयोगी होते हैं, परन्तु उस क्षेत्र के बाहर के लोगों (विदेशियों) द्वारा लिखे जाने के कारण वे प्रायः पक्षपातपूर्ण होते हैं, अतः दूसरे उपलब्ध प्रमाण, यथा, मौखिक रीति-रिवाज, भूगर्भीय सर्वेक्षण आदि का भी प्रयोग करना चाहिए। इतिहासवेत्ताओं से अनुरोध है कि वे "मौखिक इतिहास" को भी महत्व दें।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण के कुछ और महत्व भी हैं। कई पुरानी कालोनीज़ के नये देश के रूप में निर्मित होने के फलस्वरूप उस देश की गौरवशाली संस्कृति के विषय में पक्षपातपूर्ण लेखकों द्वारा प्रस्तुत भ्रामक तथ्यों को सही करना आवश्यक होता है। परन्तु ऐसे कई देशों के विषय में सही इतिहास संजाति इतिहास ही हो सकता है, क्योंकि इन के सम्बंध में लिखित अभिलेख बहुत कम उपलब्ध होते हैं और जो होते हैं वे प्रायः विदेशियों द्वारा लिखे होते हैं जिनके पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होने की सम्भावना अधिक रहती है। अतः ऐसे नये निर्मित देशों के पुनर्निर्माण में मानवशास्त्र वैज्ञानिकों द्वारा रचित संजाति इतिहास को सर्वाधिक आधार माना जाना चाहिए।[82]

<u>सारांश</u>

वर्तमान अध्याय के अन्तर्गत सामाजिक सांस्कृतिक मानवविज्ञान और इतिहास के परस्पर सम्बन्ध के प्रति विभिन्न मानववेत्ताओं के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इस क्रम में यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार सामाजिक मानवविज्ञान, मानवजातिविज्ञान से भिन्न है, साथ ही प्रकार्यवादी मत के प्रवर्तक इतिहास की अवहेलना क्यों करते हैं।

हमारे विवेचन का तीसरा मुद्दा है कि सामाजिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक मानवविज्ञान में इतिहास की क्या प्रासंगिकता है।

वर्तमान अध्ययन के अन्तर्गत प्रयाग और झूँसी के विवरण का संक्ष्प्तीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकपितामह ब्रह्माजी ने बहुत खोज की कि पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है। बहुत खोजने के पश्चात उनको यही क्षेत्र सबसे श्रेष्ठ जान पड़ा। इसलिए यहाँ उन्होंने प्रकृष्ट-प्रकृष्ठ याग-यज्ञ किये। इसलिए इस स्थान का नाम प्रयाग पड़ा। सब तीर्थों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की – प्रभो! हम सब तीर्थों में जो सबसे श्रेष्ठ हो, उसे आप सबका राजा बना दो। तब ब्रह्माजी ने इस प्रयाग को ही सब तीर्थों का राजा बना दिया। उसी दिन से सब तीर्थ इनके अधीन रहने लगे और ये "तीर्थराज" कहलाये। प्रयाग राज सब तीर्थ का राजा है इसलिए समस्त तीर्थ आकर इनकी उपासना करते है।

प्रयाग देवाधिदेव ब्रह्मा, विष्णु, और महेश की निवास भूमि है। गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के उत्तर दिशा में ब्रह्मा गुप्त रूप में निवास करते हैं, विष्णु वेणीमाधव के रूप में विद्यमान हैं, और शिव अक्षयवट के रूप में रहते हैं। स्वयमेव शरीर त्याग या आत्महत्या को सभी शास्त्रकारों ने महापाप माना है, किन्तु

स्मृतिकारों और निबन्धकारों ने घोषणा की है कि "अक्षयवट" के मूल में प्राणोत्सर्ग करने या आत्महत्या करने से मोक्ष प्राप्त होता है। वेणीमाधव स्वरूप विष्णु योगमूर्ति के रूप में विराजमान हैं।

प्रयाग के स्नान, तीर्थाटन और निवास से जो पुण्य फल प्राप्त होते हैं उनकी संख्या अनन्त है। किन्तु कोसों सुदूर बैठकर भी यदि उसका पवित्र अन्तःकरण से स्मरण किया जाय तो उतने से ही मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे सहज ही विष्णु पद की प्राप्ति हो जाती है।

प्रस्तुत अध्याय में गंगा और यमुना के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है। गंगा और यमुना का संगम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वह सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ है। माघ मास में प्रयागराज में प्रतिदिन स्नान किया जाय तो उससे मनुष्य को अत्यन्त पुण्य फलों की प्राप्ति होती है। करोड़ों गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, प्रयाग में माघ मास के स्नान से वह फल सहज ही सुलभ हो जाता है। इसी प्रकार अश्वमेघ करने से जो फल होता है वही फल माघ मास स्नान में होता है। संगम में माघ मास में स्नान करने से मनुष्य की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और उसको दिव्यधाम प्राप्त होता है।

प्रयाग स्नान के लिए सभी तिथियाँ और सभी काल शुभ बताये गये हैं, किन्तु यदि माघ मास और विशेष रूप से माघ की मकर संक्रान्ति को स्नान किया जाय तो उसके फल का कोई अन्त नहीं है। बांध के नीचे गंगा-यमुना तट पर मकर संक्रान्ति से कल्पवासी एक महीना कल्पवास करते हैं। प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति या पौष पूर्णिमा से यह प्रारम्भ होता है। यहां माघ भर लगभग 25 लाख श्रद्धालु, दूकानदार, प्रशासन आदि डेरे और झोपड़ियों में रहते हैं।

बारह वर्ष में प्रयाग में "कुम्भ" का पर्व पड़ता है। कुम्भ में देश के कोने-कोने से करोड़ों यात्री त्रिवेणी स्नान के लिए आते है। साथ ही विदेशों से भी हजारों लोग उस मेले का आनन्द लेने के लिए आते हैं। प्रत्येक कुम्भ के वीच छः वर्षो में "अर्द्ध कुम्भ" का मेला लगता है। जब 12वाँ कुम्भ होता है उसे "महाकुम्भ" या "पूर्णकुम्भ" कहते है। यानि 12 गुणा 12 वर्षो अर्थात् 144 वर्षो में महाकुम्भ होता है। कुम्भ का पर्व चार स्थानों पर - हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में होता है। अर्द्धकुम्भ का पर्व केवल प्रयाग और हरिद्वार में ही होता है। पौराणिक काल से ही प्रयाग स्नान का महत्व प्रतिपादित है, किन्तु कुम्भ और अर्द्धकुम्भ का पहला ऐतिहासिक वर्णन सातवीं शताब्दी में महाराजा हर्ष के समय का मिलता है। प्रसिद्ध चीनी ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा वर्णन में उसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार प्रति छः वर्षो में महाराजा हर्षवर्धन प्रयाग आकर अपना सम्पूर्ण एकत्रित धन गंगा तट पर निवास कर बौद्धों, ब्राह्मणों और अन्य लोगों में वितरित कर देते थे। वे यहां लगभग 75 दिन निवास करते थे।

सभी स्नानों में माघ की अमावस्या के दिन का स्नान सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसे मौनी अमावस्या कहा गया है। प्रयाग पर मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी, माघ पूर्णिमा और महाशिवरात्रि भी बड़ी है। आदि शंकराचार्य ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व माघ मौनी अमावस्या और शिवरात्रि पर नागा संतों को प्रथम स्नान का अधिकार दिया है। यह परम्परा अन्य कुम्भों में भी मान्य मानी जाती है।

प्रयाग भगवान माधव का मुख्य क्षेत्र है। यहाँ माधवजी बारह रूप रखकर रहते हैं। उनके नाम शंखमाधव, चक्रमाधव, गदामाधव, पद्ममाधव, अनन्तमाधव, बिन्दुमाधव आदि है। यहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों मिली हैं, इससे इसे 'युक्तत्रिवेणी' कहते हैं। इसी परम पावन क्षेत्र में महार्षि भरद्वाजजी निवास करते थे। यहीं से रामचरितमानस की सुरसरि धारा बही है जिसने समस्त संसार को भक्ति रस में डुबो दिया है।

पुराणों में शिवपुराण की रचना भी भगवान वेदव्यास जी ने प्रयाग में की है। त्रिवेणी के सम्मुख प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में शंखमाधव जी के समीप व्यास जी का स्थान था। इन सब कारणों से प्रयागराज की उपमा कोई अन्य तीर्थ कर ही नहीं सकता। प्रयाग में पग-पग पर पुण्य तीर्थ हैं। बीस कोस के बीच में यह प्रयाग का क्षेत्र है। इसमें करोड़ों तीर्थ रहकर तीर्थराज की उपासना करते हैं। इन सब तीर्थों में त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमेश्वर, भरद्वाज आश्रम, नागवासुकी अक्षयवट, शेषजी, दशाश्वमेघ घाट मुख्य है।

प्रयाग में मुण्डन का बड़ा माहात्म्य हैं कहावत है - "गया पिंडे प्रयाग मुण्डे"। यहां मुण्डन का कोई विधान नहीं है। राजा हो, दीक्षित हो, स्त्री हो, पुरुष हो, सधवा हो, विधवा हो, सभी को प्रयाग में मुण्डन कराने का विधान है। सधवा स्त्रियां पूरा मुण्डन नहीं करातीं। वे अपनी वेणी को तनिक कैंची से कटवाकर त्रिवेणी में प्रवाहित करती हैं। प्रयाग में भी गया की भाँति पितरों को पिण्ड देने का अक्षय फल बताया गया है।

प्रयाग के सामने गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ चन्द्रवंशीय शासक पुरूरवा ऐल राजा की राजधानी थी। महाकवि कालीदास ने "विक्रमोर्वशीयम" की रचना पुरुरवा और उर्वशी के प्रणय को लेकर की है। देवलोक से पृथ्वीलोक में अवतरित होने वाली अप्सरा उर्वशी और उसकी सखी चन्द्रलेखा के संवाद में कालीदास ने चन्द्रलेखा के मुखसे कहलाया है "अरी सखी देख, हम लोग राजर्षि के उस भवन में पहुँच गयी हैं जिसके समान दूसरा भवन प्रतिष्ठानपुर में नहीं है और जो ऐसा दिखाई दे रहा है, मानों यमुनाजी के संगम के कारण और भी अधिक पवित्र बने हुए गंगाजी के जल में अपना मुँह देखा रहा हो।"

पूर्व प्रतिष्ठानपुर को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "अंधेर नगरी" कहा है और "अंधेर नगरी" शीर्षक पर एक कहानी लिखि है। झूँसी के विषय में एक प्रसिद्ध दन्तकथा है कि वहाँ एक हरवेश या हरबोंग राजा था जिसके राज्य में ऐसा अंधेर था कि "टका सेर

भाजी और टका सेरा खाजा" बिकता था। हरबोंग राजा से उस समय के वड़े माहात्म्य गोरखनाथ तथा उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने रुष्ठ होकर शाप दिया था जिससे झूँसी उलट गयी। मुसलमान कहते हैं कि सन् 1359 ई0 में सैयद अली मुर्तजा नामक एक फकीर की बद्दुआ से झूँसी में एक बड़ा भुचाल आया और उसका किला उलट गया।

झूँसी क्षेत्र में निम्न तीर्थ स्थल हैं - हंसतीर्थ, हंसकूप, संध्यावट, गंगोत्री शिवालय, लाला किशोरी लाल की धर्मशाला, समुद्रकूप, ऐलतीर्थ, प्राचीन हनुमान गुफा, शंखमाधव, नागतीर्थ आदि हैं जिनके माहात्म्य की चर्चा इस अध्याय में की गयी है।

सन् 1830 ई0 में झूँसी में त्रिलोचनकाल का ताम्रपत्र मिला है जिसमें प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में दान आदि करने का उल्लेख हैं तथा 1876 ई0 के लगभग कुमार गुप्त के समय की '24' अशर्फियाँ मिली हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के टीले का उत्खनन कार्य शुरु कर दिया है।

अध्याय-1 का अध्ययन स्रोत

1. हेरिस, मार्विन (1968) - *दि राईज ऑफ एन्थ्रोपोलिजिकल थियरी* - थॉमस (न्यूयार्क)
2. ईभान्स-प्रीचार्ड, ई.ई. (1951) - *सोशल एन्थ्रोपोलाजी* - ऑक्सफोर्ड।
3. श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य (2000) - *सांस्कृतिक मानवविज्ञान* - पृष्ठ 145, अध्याय 14 - के.के. पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
4. (महाभारत के वनपर्व - 87/18-19) - हरिमोहनदास टण्डन - प्रयागराज (1996)
5. (ब्रह्मपुराण) - हरिमोहनदास टण्डन - प्रयागराज (1996)

6. (ऋग्वेद खिल 10/24) तीर्थचिन्तामणि
7. ऋग्वेद (खिल 9/113/12)"तीर्थेन्दु शेखर" - नागेश भट्ट, पृष्ठ 26
8. (ब्रह्मपुराण) - भीमासेक नारायण भट्ट "त्रिस्थली सेतु"।
9. "सितासिता तु य धारा सस्वत्याविदर्भिता"

   पद्मपुराण, VI.126.35 = TC, 20=TS, 7=TP, 331, NP,II 63.236-249.
10. हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 17
11. "पद्मपुराण" हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 17
12. हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 18
13. "ब्रह्मपुराण" हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज
14. "भविष्यपुराण" हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 20
15. "मत्स्यपुराण" और "स्मन्दपुराण", हरिमोहन टण्डन
16. इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहरथों दिव्यः स सुपर्णोगरूत्मान्।

    एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति अग्निर्यमोंभातरिश्वानभाहु।।

    ऋग्वेद (1/164/46)
17. सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानितानि वै।

    गंगाबिन्दुभिषेकस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम्।। - बृहन्नारदीय पुराण (6/11)
18. नाम्यङिगतः प्रविशेतु गंगायां न मलार्दितः।

    न जल्पन्न मृषा वीक्षन्नवदन्नणृतं वचः।। - स्कन्दपुराण - गंगावाक्यावली, पृष्ठ 311, प्रायश्चितत्व, पृष्ठ 98.
19. "स्कन्दपुराण"
20. सितासिते सरिते यत्र सङ्गते यत्राप्लुतासों दिवमुत्पतन्ति।

    ये वै तन्वं वि'सृजन्ति धारास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।

    (ऋग्वेद, खिल सूत्र 22/1)

21. "ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण" देवीप्रसाद दुबे, कुम्भ 1989, पृष्ट 38

22. मार्कण्डेय पुराण, 77/5-7

23. "यमुनायमाधि श्रत मुंद राघो गव्य मृजे नि राघे अश्व्यं मृजे"।
ऋकसंहिता, 5/52/17

24. ऋग्वेद (10/75/5)

25. ऐतरेय ब्राह्मण (8/23)

26. शतपथ ब्राह्मण (13/5/11)

27. पंचविश ब्राह्मण (9/4/11)

28. शांख्यायन श्रौतसूत्र (13/29/25)

29. कात्यायन श्रौतसूत्र (24/6/10)

30. शांख्यायन श्रौतसूत्र (10/19/9)

31. आश्वलायन श्रौतसूत्र (2/4/10)

32. गंगा च यमुनै चैत्र उभे तुल्यफलेस्मृते।
केवलं ज्येष्ठभावेन गंगा सर्वत्र पूज्यते।।
मत्स्यपुराण, 108/32

33. रामायण, 2/55/20-21

34. पद्मपुराण (उत्तर खण्ड 195/18-12)

35. "जल से सत्य की उत्पत्ति हुई। सत्य से ब्रह्म का उद्भव हुआ। ब्रह्म से प्रजापति का उदय हुआ और प्रजापति से देवताओं की सृष्टि हुई।" - वृहदाण्याकोनिष्द् (5/5/1)

36. महाकवि कालिदास - रघुवंश महाकाव्य - (13/54-58)

37. महाकवि मुरारि - अनर्घराघव (7/125)

38. महाभारत, 3185/75, 85

39. रामायण, 2/54/2, 2/55/4

40. कूर्म पुराण (1/37/1-2)

41. नारदीय पुराण (2/63/5)

42. "सरस्वती विनशने दीक्षन्ते", ताण्ड्य ब्राह्मण (24/17/1)

43. ततो विनशंनंगच्छेन्नियतो नियताशनः ।
भच्छत्यन्तर्हिता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती।।
महाभारत (3/82/111)

44. "हे सरस्वती! तू पूर्व पर्वत से निकल कर पश्चिम सागर में गिरती है - ऐकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिम्अ आ समुद्रात्"।
ऋग्वेद (7/95/2)

45. सितासिता तु या धारा सरस्वती सरस्वत्या विदिर्भता।
तं मार्ग ब्रह्मलोकस्य सृष्टिकर्ता ससर्ज वे।।
नारदीय पुराण (2/62/23)

46. पद्यम पुराण (6/23/34)

47. "स्कन्द पुराण" देवी प्रसाद दुबे, कुम्भ 1989, पृष्ठ 12-13।

48. "मत्स्यपुराण" (104/5)

49. सालिगराम श्रीवास्तव - प्रयाग प्रदीप (1937) खण्ड दो, अध्याय 8, पृष्ठ 271

50. (पद्मपुराण) - भास्कर नाथ तिवारी - प्रयाग दर्शन, अध्याय 8, पृष्ठ 63

51. (मत्स्य पुराण) शोकहा श्याम नारायण, शेषनारायण शर्मा - प्रयाग माहात्म्य शताध्यायी।

52. "पूर्वपार्श्वे गंगायारिका धुलाकेषु भारत।
कूप चैव समुद्रं प्रतिष्ठान चं विश्रुतम।।"
(पद्मपुराण) भास्कर नाथ त्रिवारी (1976) अध्याय 8, पृष्ठ 63.

53. एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता।

तीर्थयात्रा मापुण्या सर्वपापप्रमोचनी।।

महाभारत (3185/114)

54. महाकवि मुरारि - अनर्घराघव (7/127-128)

55. मत्स्य पुराण (105/26)

56. पद्य पुराण (6/24/3)

57. किंबहूत्तकेन विपेन्द्रमहोदयम भीप्सुना।

सेव्यं सितासितं तीर्थ प्रकृष्ट जगतीतले।।

"स्कन्द पुराण"

58. महाभारत (3/85/84)

59. मत्स्य पुराण (105/26)

60. कूर्म पुराण (2/34/14)

61. अग्नि पुराण (111/9)

62. पद्‌म पुराण (3/43/24)

63. मत्स्य पुराण (109/1-3)

64. पद्‌म पुराण (3/47/1-3)

65. नारदीय पुराण (2/63/49 ब0ड0अ)

66. कूर्म पुराण (2/37/6)

67. अन्येच बहवस्तीर्थाः सर्वधपहराः शुभाः।

न शक्याः कथितुं राजन बहुचतैशषि।

संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्यः तु कीर्तनम्।।

मत्स्यपुराण (103/6), ऋषिमार्कण्डेय।

68. देवी प्रसाद दुबे - "नेशनल ज्योग्रैफिकल जर्नल आफ इन्डिया" (31(4) 1995, 319-340), "दी सेक्रेड ज्योग्राफी ऑफ प्रयाग"

69. कल्हण राजतरंगिणी (4/314-18)

70. राजतरंगिणी, सर्ग-7, पंक्ति 20-20

71. ब्रह्म पुराण (59/11-12

72. मत्स्य पुराण (106/8-9)

73. पद्म पुराण (3/43/9)

74. कूर्म पुराण (1135/6-7)

75. नारदीय पुराण (2/63/125-126)

76. त्रिस्थली सेतु, पृष्ठ 50

77. यत्र विष्णुच्च अदृश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पनुः।
वेऽपि सर्वेवसन्तीह प्रयागे तीर्थसत में।।
तत्र दानं प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च।।
पद्य पुराण (6/25/22)

78. कल्हन-राजतरंगिणी (4/414-18)

79. विल्हन, देवचरित (18/90-91)

80. ए.आर.एन. श्रीवास्तव - सामाजिक मानवविज्ञान (1992) अध्याय 4, पृष्ठ 38.

81. श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य, 'सांस्कृतिक मानवविज्ञान (2002) अध्याय 12, पृष्ठ 134.

82. ए.आर.एन. श्रीवास्तव का लेख (संजाति इतिहास)

---0---

अध्याय 2

पृष्ठ 97 - 115

अध्याय 2

अध्ययन प्रणाली

<u>शोध का विषय</u>

भारत की सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश का जिला इलाहावाद गंगा यमुना के किनारे बसा है। इसे प्रयाग के नाम से भी जाना जाता है। गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) स्थित है। इसी क्षेत्र में प्रस्तुत अध्ययन कार्य सम्पादित किया गया है। शोध का विषय ''प्रयाग के प्राचीन स्थलों का संजाति इतिहास'' से सम्बंधित है।

वर्तमान शोध भारत की सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश[1] का जिला इलाहाबाद (प्रयाग) $24^{0}47'$ और $25^{0}7'$ उत्तरी अक्षांश एवं $81^{0}9'$ और $82^{0}21'$ पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है[2] जो गंगा-यमुना के किनारे बसा है। इलाहाबाद के उत्तरी सीमा पर प्रतापगढ तथा जौनपुर है, दक्षिण-पूर्व में मिर्जापुर, दक्षिण-पश्चिम में कौशाम्बी तथा बांदा, पश्चिम में फतेहपुर जिला तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश राज्य स्थित है।

प्रयाग के पश्चिम गंगा के पूर्वी तट पर पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) स्थित है। झूँसी $25^{0}26'$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^{0}54'$ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[3] वर्तमान समय में झूँसी दो भागों में बंटा है - ''नई झूँसी'' जो शास्त्री पुल के पश्चिम छोर जी.टी.रोड (वाराणसी रोड) के उत्तर में स्थित है और जो नगर पंचायत है। ''पुरानी झूँसी'' शास्त्री पुल के पश्चिम छोर, जी.टी. रोड (वाराणसी रोड) के दक्षिण में स्थित है जो ग्राम पंचायत है, जिसमें निम्न गाँव आते हैं - हवेलिया, कोहना, आदि।

कहा जाता है कि पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में चन्द्रवंशीय शासक पुरूरवा ऐल राजा की राजधानी थी जो मनु वैवश्वत के ज्येष्ट पुत्र इक्ष्वाकु (जो कि अयोध्या का राजा था) समकालीन था। उसके ऐलवंश या चन्द्रवंश के संबंध में ऐलश्वर महादेव का मंदिर आज भी झूँसी में विद्यमान है।

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "अंधेर नगरी " कहा है। और "अंधेर नगरी" शीर्षक पर एक कहानी लिखी है। इसी सन्दर्भ में यह कहावत- "अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा" प्रसिद्ध है।

झूँसी के विषय में एक प्रसिद्ध दन्तकथा है कि वहाँ हरवेश या हरबोंग राजा की राजधानी थी, जिसके राज्य में ऐसा अंधेर था कि सभी वस्तुओं का दाम एक था। अर्थात "टके सेर भाजी टके सेर खाजा" बिकता था। कहते हैं कि उस राजा से उस समय के बड़े महत्मा गोरखनाथ तथा उनके गुरू मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदरनाथ) ने रुष्ट होकर श्राप दिया था जिससे झूँसी उलट गयी। मुसलमान कहते है कि सन् 1359 ई0 में सैयद अली मुर्तजा नामक एक फकीर की बद्दुआ से झूँसी में एक बड़ा भूचाल आया और उसका किला पलट गया ।

झूँसी जितना ही महत्वपूर्ण स्थान है उतना ही उसका इतिहास तिमराच्छादित है। इसलिए वर्तमान झूँसी का कुछ वृतान्त लिखा जाता है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य

1) पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल है। यहां चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा की राजधानी थी। इसका संजाति इतिहास प्रस्तुत करना तथा इतिहास की प्रासंगिकता जानना।

2) पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में हरबोंग राजा की राजधानी थी। इसके समय में इस नगर का नाम "अंधेर नगरी" तथा इसी के कार्य काल में किला पलटा। इसका संजाति इतिहास प्रस्तुत करना तथा इतिहास की प्रासंगिकता जानना।

3) इस क्षेत्र के धार्मिक स्थलों का संजाति इतिहास प्रस्तुत करना।

4) प्राचीन स्थलों का झूँसी के स्थानीय समुदाय के विचार।

5) सामाजिक जीवन, घटनाओं, तथ्यों या समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना।

6) सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाना।

<u>तथ्य प्राप्ति के स्रोत</u>

वास्तविक सूचना या तथ्यों के विना सामाजिक अनुसंधान या शोध वास्तव में एक अपंग प्राणी की भाँति है। अनुसंधान या शोध की सफलता इसी बात पर निर्भर रहती है कि अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में कितने वास्तविक निर्भरयोग्य सूचनाओं और तथ्यों को एकत्रित करने में सफल होता है। यह सफलता सूचना प्राप्त करने के स्त्रोतों की विश्वसनीयता पर निर्भर करती है।

सामाजिक अनुसंधान या शोध में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं या तथ्यों की आवश्यकता होती है। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।[4]

<u>प्राथमिक स्रोत</u>

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक सूचनायें या आँकड़े होते हैं जो कि एक अनुसंधानकर्ता वास्तविक अध्ययन-स्थल (field) में जाकर विषय या समस्या से संबंधित जीवित व्यक्तियों से साक्षात्कार करके अथवा अनुसूची या/और प्रश्नावली की सहायता से एकत्र करता है अथवा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा प्राप्त करता है।

अतः प्राथमिक तथ्यों को एकत्र करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं- एक तो जीवित व्यक्तियों से और दूसरा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा। प्रथम स्रोत के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कि अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में ज्ञान रखते हैं अथवा दीर्घ समय से उसके घनिष्ठ सम्पर्क में है। श्री पामर के अनुसार ऐसे व्यक्ति न केवल एक विषय की विद्यमान अवस्थाओं को बताने की योग्यता रखतें हैं, अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्वपूर्ण चरण व निरीक्षण योग्य झुकावों के सम्बन्ध में भी संकेत कर सकते हैं।[5]

प्राथमिक तथ्यों का दूसरा स्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण है। व्यक्ति व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्रत्यक्ष निरीक्षण एक अति उत्तम स्रोत हैं।

<u>द्वितीयक स्रोत</u>

द्वितीयक तथ्य वे सूचनायें और आंकड़े हैं जो कि अनुसंधानकर्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्ट, सांख्यिकी, पाण्डुलिपि, पत्र-डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वितीयक तथ्यों के भी दो प्रमुख स्रोत होते हैं - एक तो व्यक्तिगत प्रलेख, जैसे आत्मकथा, डायरी पत्र आदि और दूसरा सार्वजनिक प्रलेख जैसे - रिकार्ड, पुस्तकें, जनगणना रिपोर्ट, समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचनाएं आदि। श्री लुण्डबर्ग के शिलालेख, स्तूप, विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थिपिंजर, भौतिक वस्तु आदि ऐतिहासिक स्त्रोत से प्राप्त तथ्य या सूचनायें भी द्वितीयक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं।[6]

लुण्डबर्ग ने सूचनाओं के स्त्रोतों को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया है।

1) **ऐतिहासिक स्रोत-** (अ) प्रलेख, कागजात, शिलालेख आदि। (ब) भूतत्वीय स्तरें, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ।

2) क्षेत्रीय स्रोत- (क) जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएँ, (ख) क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण।

लुण्डबर्ग के अनुसार ऐतिहासिक स्त्रोत उन रिकार्डो का प्रतिनिधित्व करते हैं जो भूतकाल की घटनाएँ अपने पीछे छोड़ गई हैं। उन्हें उन साधनों द्वारा सुरक्षित रखा गया है जो कि मानव से परे हैं। उदाहरणार्थ मोहनजोदड़ो, हड़प्पा आदि की खुदाई से जो विभिन्न अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनको प्रकृति ने ही सुरक्षित रखा था पर उससे सिन्धु-घाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में कितने ही अद्‌भुत रहस्य उद्‌घाटित हुए हैं। ऐतिहासिक स्रोतों का वास्तविक महत्व इसी में अन्तर्निहित हैं। इसी महत्व को दर्शाते हुए प्रोफेसर मैज ने लिख है कि "इतिहासवेत्ता को समाजशास्त्रियों की श्रेणी से बहिष्कृत कर देना कोई बुद्धिमत्ता का काम नहीं है, तथा केवल मूर्ख समाजशास्त्री ही प्रलेखों के उपयोग का त्याग करते हैं - चाहे वे समकालीन हों अथवा प्राचीन।' श्री मैज ने यह भी लिखा है कि "किसी संस्था का उसके पिछले इतिहास से असम्बन्धित एकान्तिक अध्ययन उतना ही अवास्तविक है जितना कि उसे सामाजिक परिस्थिति, जिसमें की वह घटना घटित हुई है, के बाहर अध्ययन करना है।

तथ्यों या सूचनाओं के दो प्रमुख स्त्रोत हैं-

<u>प्राथमिक या क्षेत्रीय स्रोत</u>

श्रीमती यंग (Young) के अनुसार प्राथमिक या क्षेत्रिय सूचना स्त्रोत निम्नलिखित है:-

(1) <u>प्रत्यक्ष निरीक्षण</u>

तथ्यों को एकत्र करने का एक प्राथमिक स्त्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण है, अर्थात् अनुसन्धानकर्ता स्वयूं अध्ययन स्थल पर जाकर अपने विषय से सम्बन्धित घटनाओं, वस्तुओं तथा व्यवहारों का स्वयूं निरीक्षण करके सूचना एकत्रित करता है। समुदाय

के रहन-सहन, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, भाषा, व्यवहार तथा समस्याओं से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों या सूचनाओं को प्राप्त करने का एक निर्भर योग्य स्त्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण ही है।

(2) <u>प्रश्नावली</u>- जब अध्ययन क्षेत्र इतना विस्तृत होता है कि अनुसन्धानकर्ता के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह विषय से सम्बन्धित अपने प्रश्नों का उत्तर सूचनादाताओं से स्वयूं सम्बन्ध स्थापित करके प्राप्त कर सकता है, तो वह प्रश्नों की एक सूची डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास इस अनुरोध के साथ भेज देता है कि उन प्रश्नों का उत्तर भरकर उसे लौटा दिया जाय। इसी को प्रश्नावली कहते हैं और प्राथमिक तथ्यों को एकत्र करने का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। प्रश्नावली एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से बड़े से बड़े क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव होता है। पर यह स्रोत तभी सफलतापूर्वक कार्य करता है जबकि सूचनादाता पढ़े-लिखे हों और उनमें अनुसन्धान कार्यो के प्रति सहयोग की भावना हो। भारत में इसी का अभाव होने का कारण यह स्रोत अधिक प्रभावपूर्ण प्रमाणित नहीं होता है।

(3) <u>अनुसूची</u>- यह भी एक प्रकार की प्रश्नावली ही है, पर इसे डाक द्वारा न भेजकर सूचनादाताओं के पास स्वयूं जाकर इसे भरवा लिया जाता है अथवा अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता से प्रश्न-पूछकर उत्तर भर लेता है। यह स्रोत तभी लाभप्रद सिद्ध होता है जब कि अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्तृत न हो। पर इसके द्वारा अशिक्षित व्यक्तियों से भी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

(4) <u>साक्षात्कार</u>- प्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने का एक और उल्लेखनीय साधन सम्बन्धित स्थानीय व्यक्तियों से स्वयं मिलकर व उनसे बातचीत करके विषय सम्बन्धित तथ्यों को एकत्र करता है। स्थानीय व्यक्ति उस विषय के साथ अधिक

समय से धनिष्ठ रूप में सम्बन्धित होने के कारण उसके विषय में अधिक निर्भर योग्य व वास्तविक जानकारी रखते हैं और इसलिए उनसे साक्षात्कार करके न केवल अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं या तथ्यों को एकत्र किया जा सकता है, अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।[7]

(5) <u>वंशावली</u>- क्षेत्रीय अनुसंधान की प्रमुख प्रविधि वंशावली है। प्रत्येक क्षेत्रीय कार्य में कहीं न कहीं वंशावली का प्रयोग जरूर होता है। वैसे तो वंशावली विधि का प्रयोग नातेदारी प्रणली के अध्ययन के लिए अधिक किया जाता है, किन्तु अगर अनुसन्धानकर्ता नातेदारी समस्या से परे कोई अन्य समस्या सम्वन्धी तथ्य इकट्ठा करना चाहता है तो भी वंशावली प्रविधि उपयोगी है। इससे सूचनादाताओं के सम्बन्ध में अनेक जानकरी मिलती है। इस प्रविधि का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रितानी सामाजिक मानववेत्ता रीवर्स ने किया था।

वंशावली विधि में इन रेखा व चिन्हों का व्यवहार किया जाता है।

(1) Δ : पुरूष

(2) 0 : स्त्री

(3) □ : पुरूष या स्त्री (योन विभिन्नता आवश्यक नहीं)

(4) I : (ऊपर-नीचे सीधी लकीर)

नीचे वाले व्यक्ति का सम्बन्ध ऊपर वाले व्यक्ति से है, यथा पिता-पुत्र का सम्बन्ध यों प्रस्तुत किया जाता है। इसका प्रयोग दो विभिन्न पीढ़ी के सदस्यों को जताने के लिए किया जाता हैं

पिता (प्रथम पीढ़ी)

पुत्र (द्वितीय पीढ़ी)

(5) बराबर का चिन्ह (=) विवाह सम्पर्क वताने के लिए जैसे पति और पत्नी $\Delta = 0$

(6) सीधी लकीर (—) दो या अधिक सदस्यों के वीच सहोदर सम्वन्ध (भाई-वहन, भाई-भाई या बहन-वहन) निम्न चित्र देखें।

(7) जिस व्यक्ति विशेष से वंशावली चित्र बनाया जाता है उसे ''ईगो'' कहते हैं। उपरोक्त संकेतों के सहारे एक परिवार के सदस्यों को निम्न प्रकार से वंशावली विधि द्वारा दर्शाया जा सकता है।
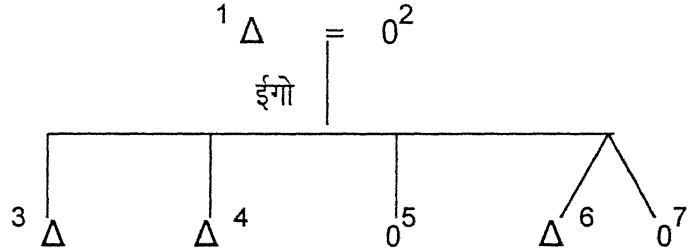
8- कुछ विशेष बातों को दर्शाने के लिए अन्य 'संकेत' निम्न हैं:-

≠ इसका अर्थ है विवाह सम्बंध टूट गया है, यानि तलाक हो चुका है।

9- ⨻ Ø सदस्य की मृत्यु हो चुकी है।

सुविधानुसार अन्य संकेतों का सहारा लिया जाता है जिसे अनुसन्धानकर्ता स्वतः बनाता है।[8]

(6) मानचित्र

सामाजिक सर्वेक्षण के दौरान क्षेत्र (स्थान या गाँव) का फैलाव, मकान, पीने का पानी, खेत, धार्मिक स्थल व अन्य जगाहों को मानचित्रों के सहारे प्रस्तुत करने से अनेक बातों की जानकारी मिलती है। आमतौर पर एक गाँव में कई एक समाज साथ-साथ रहते हैं। क्षेत्रीय अध्ययनों से पता चलता है कि एक समाज विशेष के परिवार गाँव के एक विशेष क्षेत्र में बिखरे रहते हैं, जबकि अन्य समाज का परिवार उसी गाँव के दूसरे क्षेत्र में। इन्हें गाँव वाले क्षेत्र कहते है। इन सभी टोलों को अनुसंधानकर्ता एक साधारण मानचित्र बनाकर प्रस्तुत कर सकता है।

(7) फोटोग्राफी तथा टेपरिकार्डिंग

समकालीन सामाजिक मानववेत्ता अध्ययन के समय कैमरा द्वारा फोटोग्राफ्स भी लेते हैं। ऐसा वे कई कारणों से करते हैं। प्रथम, कि फोटोग्राफ्स से कई बातों की जानकारी होती है, लोग देखने में कैसे है, उनकी शारीरिक विशेषताएं कैसी हैं, उनका पहनावा क्या है, घर की बनावट आदि। इन्हें व्यक्त करने के लिए सैंकड़ो शब्द लग सकते हैं जबकि फोटोग्राफ्स की मदद से इसके अध्ययन में सुगमता हो जाती है। दरअसल किसी समाज विशेष का अध्ययन हुआ है या नहीं फोटोग्राफ्स का उपयोग प्रमाण के रूप में किया जाता है। सामाजिक मानववेत्ताओं का उद्देश्य समाज विशेष के सम्बन्ध में तथ्यपूर्ण जानकारी ही हासिल करना नहीं होता बल्कि उन तथ्यों को प्रकाशित कर पाठक वर्ग या आम जनता के सामने प्रस्तुत करना भी है।

अगर पुस्तक में चित्र (फोटोग्राफ्स) हो तो समाज विशेष का वर्णन शब्दों तक ही सीमित नहीं रह जाता है।

टेपरिकार्डर के प्रयोग से विविध लोककथा व गीतों का ज्ञान सम्भव हो सका है। अपरिचित भाषा को सीखने व समझने में सहायता मिलती है।[9]

वैयक्तिक अध्ययन

किसी विषय बिन्दु (वस्तु, घटना) पर गहन रूप से तथ्य एकत्र कर उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करना वैयक्तिक अध्ययन है। वैयक्तिक अध्ययनों का आधार अवलोकन और साक्षात्कार है। सभी अनुसंधानकर्ता इन सभी का उपयोग करते हैं।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत वे होते हैं जो कि प्रकाशित या अप्रकाशित समस्त लिखित सामग्री का प्रतिनिधितत्व करते हैं और जिसके माध्यम से अनुसन्धानकर्ता को अपने विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ, आँकड़े आदि प्राप्त हो जाते हैं।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों के अन्तर्गत विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थ, सर्वेक्षण रिर्पोट, संस्मरण, यात्रा-वर्णन, पत्र, डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आँकड़े तथा रिकार्ड, अन्य प्रकाशित रिकार्ड आदि सम्मिलित हैं।[10]

तथ्य विश्लेषण पद्धति (मानवशास्त्र में विकसित संजाति इतिहास का संक्षिप्त विवरण)

(ए.आर.एन. श्रीवास्तव के लेख पर आधरित)

'वर्णन' अंग्रजी शब्द ''डिसक्रिपशन'' का हिन्दी रूपान्तर है। शब्दकोश के अनुसार वर्णन के दो अर्थ हैं - प्रथम, विवरणात्मक कथन। दूसरा, वैसा निबन्ध जो

किसी पूर्व घटित चीज (वस्तु, बात, घटना, विषय) का मानसिक चित्र प्रस्तुत करे। सामाजिक मानव विज्ञान में प्रयुक्त वर्णन का अर्थ इसी से मिलता-जुलता है। किसी पूर्व घटना को शब्द-बद्ध करना ही 'वर्णन' है। आये दिन पत्र-पत्रिकाओं में हम किसी लेखक की यात्रा व घटना सम्बन्धी विवरण पढ़ते हैं। यही वर्णन है। थोड़े शब्दों में वर्णन वह कला है जिसके द्वारा लेखक किसी घटना व विषय को अपने निजी अनुभवों के आधार पर क्रमिक ढंग से वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है।

सामाजिक मानववेत्ता क्षेत्रीय-कार्य के दौरान इकट्ठा किये हुए तथ्यों का किस तरह वर्णन और विश्लेषण प्रस्तुत करता है, इस दिशा में पहला चरण है नामकरण और वर्गीकरण।

पर्यवेक्षण और अन्य क्षेत्रीय प्रविधियों द्वारा एकत्र किये गये तथ्यों को अलग-अलग हिस्सों में कोटिबद्ध करना जरूरी है। ऐसा नामकरण और वर्गीकरण के आधार पर किया जाता है। घटित घटनाओं में कुछ एक घटना ऐसी होती है जो कि अन्य घटनाओं से भिन्न होती है। अतएव इन्हें अलग-अलग हिस्सों में रखा जाता है। इसे 'वर्गीकरण' कहा जाता है। एक हिस्सा दूसरे हिस्से से भिन्न हो सके इसके लिए यह ज़रूरी है कि प्रत्येक हिस्से का एक नाम हो। वर्गीकृत हिस्सों की नामावली ही "नामकरण" है। किसी भी विश्लेषण के प्रथम चरण में तथ्यों का वर्गीकरण और नामकरण आवश्यक है। संक्षेप में पर्यवेक्षण द्वारा ज्ञात तथ्यों का वाक्यबद्ध करना वर्णन कहलाता है। सामाजिक मानववेत्ता सन्दर्भों का उल्लेख करते हुए तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं।

वर्णन में आयी सारी बातों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाये कि दो वर्गों (हिस्सों) में तुलना द्वारा सम्बन्धों की व्याख्या की जा सके। इसे विश्लेषण करना कहा जाता है। इसी विश्लेषण के द्वारा हम विषय सम्बन्धी सामान्य नियम तक पहुँचते हैं।

सिद्धान्त के प्रतिपादकों का कहना है कि मात्र वर्णन से सामान्यीकरण सम्भव नहीं है। सामान्यीकरण के लिए जरूरी है कि तथ्यों का उचित विश्लेषण हो।

कभी-कभी एक प्रश्न उठाया जाता है कि चूँकि सभी सामाजिक मानववेत्ता क्षेत्रीय कार्य द्वारा तथ्य एकत्र करते हैं, अतः एक ही समाज विशेष से (एक से अधिक विशेषज्ञों द्वारा) इकट्ठे किये गये तथ्यों का विश्लेषण एक ही ढंग से होता या विभिन्न प्रकार से। इसी से सम्बन्धित एक और प्रश्न है कि यदि क्षेत्रीय कार्य किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा सम्पादित हो तो क्या वही परिणाम निकलते हैं जो कि अन्य विशेषज्ञ के द्वारा किये गये शोध कार्य से निकलते हैं। यह एक जटिल समस्या है। जहाँ तक तथ्यों के वर्णन का प्रश्न है, एक जैसे वर्णन मिल सकते हैं, किन्तु सभी एक ही ढंग से विश्लेषण करें, यह सम्भव नहीं, क्योंकि विभिन्न सामाजिक मानववेत्ताओं का सैद्धान्तिक चिंतन एक जैसा नहीं होता है।

जहाँ तक समकालीन सामाजिक मानववेत्ताओं का प्रश्न है, वे एक सैद्धान्तिक ज्ञान की सीमा तक काम करते हैं। इसी से शोध की दिशाओं और पद्धतियों का निर्धारण हो जाता है। आज प्रायः सभी सामाजिक मानववेत्ता प्रकार्यवादी सिद्धान्त की मुख्य बातों को मानते हैं, भले वे अपने को प्रकार्यवादी घोषित न करें। प्रकार्यवादी विश्लेषण का एक उदाहरण इस प्रकार है।

> ''सामाजिक मानव विज्ञान में 'प्रकार्यवादी सिद्धान्त' की क्षेत्रीय शोध से पुष्टि करने वाला पहला मानववेत्ता मैलिनॉवस्की था। उसका क्षेत्रीय शोध-स्थल प्रशांत महासागर का एक छोटा ट्रोब्रियाण्ड द्वीप था। इस द्वीप वासियों के सम्बन्ध में मैलिनॉवस्की ने अनेक पुस्तकें लिखी। इसकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक है ''आरगुमेंटस ऑफ वेस्टर्न पैसिफिक'' (1922)।[11]

सन् 1955-60 के दौरान सांस्कृतिक मानव विज्ञान में ''नवीन'' परम्परा की बुनियाद रखी गयी। कतिपय सांस्कृतिक मानवशास्त्री संरचनात्मक भाषाविज्ञान

(Structural Linguistics) के तथ्यों के सहारे तथाकित प्रचलित परम्परागत जनवृतान्त से प्राप्त सांस्कृतिक तथ्यों की पुर्नव्याख्या करने का प्रयास किया। नतीजन परम्परागत जनवृतान्त के स्थान पर नवीन जनवृतान्त शव्दावली प्रचलित हो गयी। विलियम स्टुर्टवेन्ट ने (1964)[12] में एक अमेरिकी शोधपत्रिका में संजाति विज्ञान शीर्षक से एक सारगर्भित लेख प्रकाशित किया और इस नये आयाम को उन्होंने "नवीन जनवृतान्त" की संज्ञा दी। नवीन जनवृतान्त-वेत्ताओं की मान्यता है कि संरचनात्मक भाषा विज्ञान की प्रविधियों से नई व्याख्या सम्भव है।

नवीन जनवृतान्तवेता - विलियम स्टुर्टवेन्ट मारवीन हैरिस[13], बेन्धमीन कोलबी[14], हैरोल्ड कौन्वलीन[15], इवजीन हैमेल, चार्ल्स फ्रेक, एफ.लाउन्सबरी, ए.के. रौमनी, वार्ड गुडनाऊ[16], एडमण्ड लीच, क्लायड लेवीस्थ्रुप्स, स्दीकेन, टाईलर, विवन्जर टर्नर आदि हैं।

परम्परागत जनवृतान्तवेत्ता-जी.बेट्सन[17], जेराल्ड बेरी मैन[18], फ्रान्स बोआज, ई.ई. ईवान्स प्रीचार्ड[19], रेमण्डकर्थ, एडमण्ड लीच, ओस्कर लुबीस, बी. मैलिनोवस्की, मारर्गेड मीड, एल.पी. विद्यार्थी[20], एम.मेगीट, एम.एन. श्रीनिवास[21] आदि हैं।

<u>एमिक-एटिक विश्लेषण</u>

एमिक तथा एटिक दोनों शब्द भाषा विज्ञान के फोनेमिक, तथा फोनेमिक से लिए गये हैं। फोनेमिक अंग्रेजी के फोनीम (Phoneme) से बना है जिसका अर्थ किसी भी भाषा में प्रयुक्त होने वाले स्वर अथवा व्यंजन की ध्वनि से है। फोनेटिक उस ध्वनि को किस प्रकार लिपिबद्ध किया जाता है, इस विधि से संबधित है। इसे "स्वर विज्ञान" भी कहा जाता है।

एमिक तथा एटिक की उपर्युक्त व्याख्या केनिथपाईक ने अपने 1954[22] में एक लेख में की थी। इस व्याख्या से प्रेरित होकर मानवशास्त्रियों ने, विशेष कर

मारवीन हैरिस ने मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से संस्कृति की व्याख्या की। संस्कृति की एमिक व्याख्या के अन्तर्गत किसी भी समूह के सूचनादाताओं द्वारा किया गया स्वयं का विवरण आता है जबकि एटिक व्याख्या के अन्तर्गत सांस्कृतिक तथ्यों का शोधकर्ता द्वारा किया गया विश्लेषण विवरण आता है। संक्षेप में एमिक को देशज (Native's view) दृष्टिकोण तथा एटिक को शोधकर्ता का दृष्टिकोण कहते हैं।

नवीन जनवृतान्त अथवा प्रतीकवादी मानवशास्त्र या अनुभव मानवशास्त्र की व्याख्या की शुरूआत एमिक तथा एटिक से इसलिए प्रारम्भ होती है क्योंकि उपर्युक्त धारणाओं के अन्तर्गत मानवशास्त्रियों ने न केवल देशज समाजों के द्वारा की गयी एमिक व्याख्या का विश्लेषण किया, वरन् वे देशज चित् (Native mind) में प्रवेश करने की कोशिश की है।

नवीन जनवृतान्त की शुरूआत लेवी स्थ्रॉस के भाषाई संरचनावाद से होती है। इसमें विवन्टर टर्नर के द्वारा प्रतिपादित प्रतीकवाद भी आता है तथा मार्शल डर्विन, स्टीफेन टाईलर द्वारा प्रतिपादित अनुभव मानवशास्त्र (Cognitive Anthropology) भी आता है। तीनों ही किसी समाज के एमिक अध्ययन पर आधारित हैं। इनमे अन्तर इस बात का है कि कौन कितना अधिक एमिक अध्ययन पर बल देता है और उसके विश्लेषण की पद्धति क्या है। कहने का ताप्पर्य यह है कि उपर्युक्त अवधारणाओं के आधार पर कौन कौन अधिक किसी भी समूह का मानसिक विश्लेषण अथवा तार्किक विश्लेषण पर बल देता है। संक्षेप में, भाषायी मानव-विज्ञान के संरचनात्मक पक्ष के तथ्यों को आधार मानकर सांस्कृतिक तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है।[23]

<u>संजाति इतिहास</u>

जातियों के द्वारा बताया गया इतिहास संजाति इतिहास है। इस तरह की जानकारी जाति विशेष के बड़े-बूढ़े अनुभवी व्यक्तियों से मिलकर प्राप्त की जाती है। वे अपनी स्थानीय भाषा में लोक साहित्य के माध्यम से बताता है। एक प्रशिक्षित मानवशास्त्री इनकी बातों को नोट करता है। परस्पर टूटे हुए अंशों का पुनः प्रश्न करता है और क्रमबद्ध ढंग से वर्णन करता है। इसी को संजाति इतिहास कहते हैं।

सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों (गुडनाउ, स्टुर्टवेन्ट, टेलर मारवीन हैरिस, एडमण्ड लीच, स्टीफेन टाईलर हैरोल्ड कौनवलीन आदि) ने इसे आगे बढ़ाया है। इतिहास और मानवविज्ञान को परस्पर जोड़ने की कड़ी संजाति इतिहास ही है।

संजाति इतिहास कई रूपों में परिभाषित किया गया है।

''संजाति इतिहास उन व्यक्तियों का इतिहास है जिसका अध्ययन सामान्यतः मानवविज्ञानशास्त्री करते हैं''। ''इतिहास'' के दो रूपों का अध्ययन करते समय हम मानवविज्ञानशास्त्रियों तथा इतिहासज्ञों की अध्ययन पद्धती में भिन्नता पाते हैं। मानवविज्ञानवेत्ता लिखित अभिलेखों को संजाति इतिहास का आधार मानते हैं (जो कि 'इतिहास' की एक संकीर्ण परिभाषा है) जबकि इतिहासज्ञ अलिखित अथवा लिखित अभिलेखों को समाज के भूतकाल को जानने के लिए केवल एक आधार के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इतिहासज्ञों के अनुसार या तो ऐसे लिखित अभिलेख पूर्ण नहीं हैं अथवा पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हैं ('इतिहास' की यह एक विस्तृत परिभाषा है) मानवविज्ञानशास्त्री गैर-मानवविज्ञानशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त साक्ष्य (अर्थात् ऐतिहासिक अभिलेख)

के साथ-साथ क्षेत्र सर्वेक्षण को संजाति इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक अंग मानते हैं जबकि इतिहासज्ञ क्षेत्र सर्वेक्षण को इतिहासज्ञों के लिए एक गैर-ऐतिहासिक (अर्थात् सामाजिक विज्ञान का लेखा-जोखा) अनुपयुक्त समझते हैं।

संजाति इतिहास को परिभाषित करने के लिये तीन दृष्टियां महत्वपूर्ण हैं - (1) भूत अथवा वर्तमान पर केन्द्रित होना, (2) लिखित अथवा अलिखित 'अभिलेखों' का प्रयोग, (3) तत्कालीन भाषा अथवा लिपि एवं इतिहास की 'लोक दृष्टि' और यह ध्यान देना कि समाज के अध्ययन का आधार पश्चिमी या पूर्वी सभ्यता है अथवा पाश्चात्य विचारधारा है।

संजाति इतिहास की दो प्रमुख रुचियां हैं जिन्हें मानवजाति के वैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानव इतिहास के रूप में जाना जा सकता है। मानवजाति का वैज्ञानिक अध्ययन भूतकाल की संस्कृति के अलिखित विवरण का पुनर्निर्माण है, विशेषतय: उस काल के अभिलेख। इतिहासज्ञों ने मध्य-यूरोपियन नगरों, चौदहवीं से सोलहवीं सदी की कला आदि से प्रभावित इस प्रकार के अनेक संजाति इतिहासों को जन्म दिया है। उन का प्रयत्न इन ऐतिहासिक तथ्यों को उन तथ्यों के निकटतम लाना है जो क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं। यद्यपि वे तथ्य वे नहीं होते जिन्हें मानवविज्ञानशास्त्री ने स्वय् देखा, सुना अथवा उसे बताया गया हो अपितु वे तथ्य होते हैं जिन्हें गैर-मानवविज्ञानशास्त्री द्वारा पढ़ा और लिखा गया हो। वह संजाति इतिहास लेखन के लिए अभिलेख, अपितु

सूचनाएं मांगेगा और प्राय: उसे वे सारी बातें लिखित अभिलेख नहीं उपलब्ध करा सकते जिन्हें वह जीवित समाज से प्राप्त कर लेता है। मानवविज्ञानशास्त्री को प्राय: वांछित तथ्य लिखित अभिलेखों से अधिक जीवित समाज से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त ये अभिलेख प्राय: बाहरी लेखकों के द्वारा लिखे जाते हैं जो प्राय: पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होते हैं जबकि जीवित समाज द्वारा दी गयी सूचनाएं पक्षपात तथा त्रुटिविहीन होती हैं। जहां तक सम्भव हो इन पक्षपातों पर निगाह रखनी चाहिए, इनका संज्ञान लेना चाहिए और इन्हें सही करना चाहिए।

संजाति इतिहास के लेखन में उपलब्ध अभिलेख काफी उपयोगी होते हैं, परन्तु उस क्षेत्र के बाहर के लोगों (विदेशियों) द्वारा लिखे जाने के कारण वे प्राय: पक्षपातपूर्ण होते हैं, अत: दूसरे उपलब्ध प्रमाण, यथा, मौखिक रीति–रिवाज, भूगर्भीय सर्वेक्षण आदि का भी प्रयोग करना चाहिए। इतिहासज्ञों से अनुरोध है कि वे ''मौखिक इतिहास'' को भी महत्व दें।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण के कुछ और महत्व भी हैं। कई पुरानी कालोनीज़ के नये देश के रूप में निर्मित होने के फलस्वरूप उस देश की गौरवशाली संस्कृति के विषय में पक्षपातपूर्ण लेखकों द्वारा प्रस्तुत भ्रामक तथ्यों को सही करना आवश्यक होता है। परन्तु ऐसे कई देशों के विषय में सही इतिहास संजाति इतिहास ही हो सकता है, क्योंकि इन के सम्बंध में लिखित अभिलेख बहुत कम उपलब्ध होते हैं और जो होते हैं वे प्राय: विदेशियों द्वारा लिखे

होते हैं जिनके पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होने की सम्भावना अधिक रहती है। अतः ऐसे नये निर्मित देशों के पुनर्निर्माण में मानवशास्त्र वैज्ञानिकों द्वारा रचित इतिहास को सर्वाधिक आधार माना जाना चाहिए।[24]

अध्याय-2 का अध्ययन स्रोत

1. सांख्यिकी पत्रिका, विकास भवन इलाहाबाद, उ0प्र0, 1991ण

2. इलाहाबाद गजेटियर, पृष्ठ 1.

3. इलाहाबाद गजेटियर.

4. वीन्द्रनाथ मुखर्जी, सामाजिक शोध व सांख्यिकी (1997) अध्याय 11, पृष्ठ 159.

5. वी.एम. पाल्मर, ''फील्ड स्टडीज़ इन सोशियोलाजी'', शिकागो (1928), पृष्ठ 57.

6. लुण्डबर्ग, ''सोशल रिसर्च, लांगमास, ग्रीन एण्ड को0, न्यूयार्क'' (1951), पृष्ठ 122.

7. पी.बी. यंग, ''साइंटिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च'' (1960), पृ0 127.

8. ए.आर.एन. श्रीवास्तव, सामाजिक मानवविज्ञान (1994), अध्याय 3, पृष्ठ 33, 34, 35.

9. ए.आर.एन. श्रीवास्तव, सामाजिक मानवविज्ञान (1991-94), अध्याय 3, पृष्ठ 37, 38.

10. आर.एन. मुखर्जी, सामाजिक शोध व सांख्यिकी (1997) अध्याय 11, पृष्ठ 163.

11. मौलनाँवस्की, ''आरगुनेंट्स ऑफ वैस्टर्न पैसिफिक'' (1922).

12. विलियम स्अुर्टवेन्ट, संजातिविज्ञान (लेख) 1964.

13. मारवीन हैरिस, ''द नेचर ऑफ कल्चर थिंग्स'' (1964).

14. बेन्जामीन कोलबी, ''एथनोग्राफिक सीमैन्टीक्स'' (1966).

15. हैरोल्ड कौन्क्लीन, ''हनुन कलर कटेगरीज़'' (1955).

16. लार्ड गुडनाऊ, ''किनसिप टर्मस् कम्पोनेन्शीयल एनालिसिस'' (1965).

17. जी. बेट्सन, Naveen (1936).

18. लेराल्ड बेरीमैन, ''द हिन्दू ऑफ हिमालियन'' (1968).

19. ईभान्स प्रीचार्ड ''द नायर'' (1940).

20. एल.पी. विद्यार्थी, ''द मालेर'' (1964).

21. एम.एन. श्रीनिवास, ''द कुर्ग ऑफ साउथ इन्डिया'' (1965).

22. कोनिथ पाईक (1954).

23. श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य, ''सांस्कृतिक मानवविज्ञान:सिद्धान्त एवं उपलब्धियां'' (1996), अध्याय 12, पृष्ठ 133, 134.

24. ए.आर.एन. श्रीवास्तव, ''संजाति इतिहास'' (लेख) (2002).

अध्याय 3

पृष्ठ 116 - 167

अध्याय 3

झूँसी क्षेत्र के प्रमुख समुदाय

झूँसी अध्ययन क्षेत्र के प्रमुख समुदाय हैं: (1) निषाद (2) पण्डा (3) चमार (4) धोबी (5) बहेलिया (6) बिन्द (7) पासी । इनमें प्रमुख समदायों का परिचय दिया जाता है।

1- <u>निषाद समुदाय</u>

<u>सामाजिक संगठन</u>- ये हिन्दु जाति में आते हैं। अध्ययन क्षेत्र के 250 निषाद परिवार में से मैंने प्रतिचयन के आधार पर 125 परिवारों का अध्ययन किया है। 125 परिवारों में 85 प्रतिशत एकल परिवार तथा 15 प्रतिशत संयुक्त परिवार पाये गये हैं।

निषाद जाति पितृसतात्मक, पितृवंशीय एवं पितृस्थानीय हैं। निषाद जाति के परिवार एकल परिवार के रूप में अधिक हैं। विवाह के 1-2 वर्ष बाद लड़का अपनी पत्नी के साथ माता-पिता से अलग हो जाता है। लेकिन किसी विशेष कार्य में वह अपने माता पिता की राय अवश्य लेता है और उन्हींके सुझावों पर कार्य करता है जैसे- शादी-विवाह, धार्मिक कर्मकाण्ड आदि। संयुक्त परिवार में माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन, चाचा-चाची भाई के बच्चे, चाचा-चाची के बच्चे आदि सभी एक ही मकान में रहते हैं तथा एक ही स्थान पर भोजन बनता है। सभी सदस्य एक साथ खाते पीते हैं। संयुक्त परिवार में घर का वृद्ध व्यक्ति ही घर का मालिक या मुखिया होता है। वही घर के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

निषाद एक-ववाही होते हैं। विवाह को धार्मिक संस्कार मानते हैं। वर्तमान समय में लड़की की विवाह की आयु 15-18 वर्ष तथा लड़के की विवाह की औसत आयु 16-25 वर्ष होती है। ये विवाह के लिए निम्न स्थानों पर जाते हैं: दारागंज,

लवायन, महेवा, सदियापुर कीटगंज, छतनाग, नीवीं, पुरानी झूँसी, नई झूँसी निवा मेहदौरी, रसुलाबाद आदि स्थानों पर जाते है। शादी एक ''मध्यस्थ व्यक्ति'' कराता है, जिसे ''अगुआ'' कहते हैं और इसका संबंध दोनों पक्षों से रहता है और दोनों पक्षों की सभी स्थितियों को जानता भी है। विवाह से 2-3 माह पहले सगाई या ''छेकाई'' हो जाती है। उसी समय विवाह की तारीख भी निर्धारित कर दी जाती है। इनका विवाह माघ, फाल्गुन, चैत, बैसाख, जेठ, अगहन आदि शुभ लगन में होता है।

निषादों में देवर-भाभी, जीजा-साली आदि में परिहास हो सकता है। कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं उनका नाम लेकर नहीं बुलाते, जैसे जेठ, ससुर, और अपने से बड़े तथा वृद्ध व्यक्ति आदि। लेकिन झगड़े लड़ाई में गाली-गलौज भी हो जाती है।

<u>वस्त्र एवं आहार</u>- निषाद जाति के पुरूष धोती-कुर्ता पजामा, लुंगी-कुर्ता पहनते हैं। कभी-कभी काम करते समय धूप से बचने के लिए सिर पर रूमाल की पगड़ी बांध लेते है। युवा वर्ग पैंट-शर्ट पहनते हैं। निषाद जाति की स्त्रियां साड़ी, पेटीकोट, ब्लाउज पहनती हैं। काम करते समय कभी-कभी साड़ी से ही पुच्छा बांध लेती है। अविवाहित लड़कियां सलवार, सूट पहनती हैं। शादी के बाद सलवार-सूट पहनना बन्द कर देती हैं तब साड़ी पेटीकोट (साया) ब्लाउज पहनने लगती हैं।

निषाद जाति अपने दैनिक भोजन में गेहुँ, चावल, दाल, व शाक-सब्जी का मुख्य रूप से सेवन करते हैं। निषाद जाति 90 प्रतिशित मांसाहारी तथा 10 प्रतिशित शाकाहारी है। ये मछली के अतिरिक्त बकरा, मुर्गा आदि के मांस का भी उपयोग करते है। निषाद जाति के लोग शराब भी खूब पीते है। शराब को वे बनाते भी हैं।

<u>आवास</u>- नई झूँसी के निषादों के पास कच्चे मकान और पक्के मकान दोनों है। कच्चे मकान मिट्टी की दीवालों और ईंट की दीवालों के ऊपर बांस-बल्ली को रखकर खपड़े से छाजन किया गया है। ऐसे मकानों की संख्या लगभग 100 है।

नई झूँसी में पक्के मकानों की संख्या लगभग 50 हैं पक्के मकान एक-मंज़िले के भी हैं, ओर दो-मंज़िलों के भी है। पुरानी झूँसी में निषादों के लगभग 100 घर हैं, जिनमें 70 पक्के है ओर 30 कच्चे हैं।

<u>आर्थिक संगठन</u>- निषादों के आर्थिक स्रोत निम्न है- (1) मछली मारकर बेचना (2) तालाब में सिंघाड़ा लगाना तथा मछली पालना, (3) गंगा की रेत में तरबूज, ककड़ी, खीरा आदि की खेती करना, (4) माघ मेले में अखाड़ों में यज्ञशाला बनाना, मेले में मजदूरी तथा ठेकेदारी करना, (5) नाव चलाना आदि इनके आय के प्रमुख स्रोत हैं। यहां के निषाद माघ तथा कुम्भ के मेले में हरिद्वार, नासिक, उज्जैन भी जाते हैं। वहां भी अखाड़ों में यज्ञशाला तथा यज्ञशाला का दरवाजा बहुत सुन्दर ढंग से बनाते हैं।

कुछ निषाद श्मशान घाट पर लाश को भी जलाते हैं। वैजु मिस्त्री, रामा छेदूदन, लल्लू निषाद आदि नई झूँसी के हैं। वैजू शमशान घाट का ठेकेदार है।

छः निषाद पुरानी झूँसी के हैं। श्रीनाथ, शंकर, अर्जुन, काशीनाथ बद्री आदि। कुछ निषाद नौकरी भी करते हैं। जिनकी संख्या लगभग 25-30 है।

<u>धार्मिक संगठन</u>- निषाद जाति पूर्ण रूप से हिन्दू धर्म से संबंधित है। ये गंगा मां, दुर्गा मां, शारदें मां, शंकरजी, पार्वतीजी, हनुमानजी, राम-लक्षमण, सीता तथा देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं तथा इन सभी देवी-देवताओं की मूर्तियों को अपने घर में भी रखते हैं।

निषाद लोग देवी-देवताओं के नाम पर व्रत भी रखते हैं। जैसे-नवरात्रि में कुछ लोग नवरात्रि के पहले दिन ओर नवरात्रि के अंतिम दिन को व्रत रखते हैं, कुछ लोग नौ दिन का व्रत रखते हैं और इस नवरात्रि के समय नौ दिन पूजा-पाठ होता रहता है।

निषाद जाति भूत-प्रेत में भी बहुत ज्यादा विश्वास रखते हैं। जादू-टोना, ओझाई-सोखाई, झाड़-फूंक आदि में इतना विश्वास करते हैं कि इसी के कारण आपस में लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता है और थाना-अदालत भी हो जाता है।

<u>पर्व एवं त्यौहार</u>- निषाद जाति के लोग दशहरा, दीपावली, होली, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, मकरसंक्राति आदि पर्व एवं त्यौहार को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं।

<u>राजनैतिक संगठन</u>- निषाद जाति के परम्परागत रूप से राजनैतिक संगठन "बिरादरी पंचायत" के रूप में है। इस जाति में एक चौधरी होता है, जो वंशानुगत होता है। किसी विवाद के निपटारे के लिए जब कोई पंचायत होती है तो इसमें पाँच घाट के चौधरियों को बुलाया जाता है। दारागंज, मेहदौंरी, रसुलाबाद, अरैल, महेवा, निवा, सुलेमसराय, सदियापुर आदि जो इस गांव में निषाद जाति का चौधरी होता है उसको पंचायत में बुलाया जाता है। यही पांच पंच होते है। इन्ही को पंच परमेश्वर भी कहते हैं। इन पंचों का जो निर्णय होता है वह सर्वमान्य होता है। वर्तमान में अब न्यायालय की भी शरण लेने लगें हैं।

नई झूँसी में नगर पंचायत है और पुरानी झूँसी ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आता है। नगर पंचायत का चेयर मैन वर्तमान समय में क्रांति देवी निषाद है।

पुरानी झूँसी में ग्राम पंचायत है। जिसमें प्रधान, उप-प्रधान, वी0 डी0 सी0 सदस्य होते हैं। इनका कार्य गाँव का विकास करना, तथा किसी विवादों में बुलाये जाने पर उनका समाधान करना आदि।

वर्तमान समय में निषाद जाति समाजवादी पार्टी से संबंधित है, क्योंकि इस समय जातिगत राजनीति का बोल-बाला है।

भूत-प्रेत को लेकर के भी कभी आपस में झगड़ा लड़ाई कर लेते हैं जिसका निपटारा पंचायत द्वारा किया जाता है। कभी-कभी इतना बढ़ जाता है कि थाना-अदालत भी हो जाता है।

जनसंख्या- निषाद जाति की जनसंख्या नई झूँसी में सबसे अधिक है, जिनकी संख्या लगभग 2500 हैं तथा पुरानी झूँसी में निषादों की जनसंख्या लगभग 1000 हैं।

शिक्षा- झूँसी के निषाद जातियों का शिक्षा स्तर बहुत निम्न हैं। 35 वर्ष से 65 वर्ष तथा इससे आगे के उम्र के लोगों की शिक्षा लगभग 5 प्रतिशत है।

वर्तमान समय में इनका शिक्षा स्तर कुछ बढ़ा है। प्राइमरी में लगभग 80 प्रतिशत है, हाई-स्कूल तथा इण्टरमीडिएट में लगभग 30 प्रतिशत है, उच्च शिक्षा में लगभग 5 प्रतिशत है।

महिलाओं की स्थिति- निषाद जाति में महिलाओं की स्थिति सामान्य है। महिलायें घर-गृहस्थ के साथ-साथ कृषि भी करती हैं, अर्थात् ये गंगा की रेत में तरबूज, खीरा, ककड़ी तथा सब्जियों की खेती करती हैं तथा इनको बेचती भी हैं। मेहनत-मजदूरी भी करती हैं। 10 साल पहले तक इस जाति की महिलायें बगई की डोरी भी बनाती थीं लेकिन वर्तमान में समाप्त हो गया है।

वर्तमान समय में निषाद जाति की महिलायें कालोनियों में चुल्हा-चौका करती हैं, तथा शादी-विवाह में अन्य जातियों के यहाँ भोजन बनाने भी जाती हैं। पुरूषों के काम में भी ये हाथ बंटाती हैं।

इस जाति में महिलाओं का शिक्षा-स्तर बहुत निम्न है। लगभग 5 प्रतिशत महिलायें शिक्षित हैं। वर्तमान में नगर पंचायत की चेयरमैन निषाद जाति की महिला है जिसका नाम श्रीमती कान्ति देवी निषाद है।

कला एवं संस्कृति- निषाद लोग अपनी नाव को लकड़ी तथा लोहे की चद्दर से स्वयं बनाते हैं। नाव की पूजा-पाठ करके ही गंगा में चलाते हैं। जब ये नई नाव का निर्माण करते हैं तो उसकी पूजा के लिए गाँव-गाँव में भीख मांगते है। पूजा में लड्डू, बतासा आदि वस्तुओँ को चढ़ाते हैं।

कुम्भ मेले में निषाद अखाड़ों में यज्ञशाला गेट, गुम्वज आदि का निर्माण बांस, फूस आदि से सुन्दर ढंग से करते हैं। ये लोग हरिद्वार, नासिक तथा उज्जैन के कुम्भ मेले मे भी अखाड़ों का यज्ञशाला, गेट, गुम्वज आदि का निर्माण करने जाते हैं।

निषाद जाति तालाब में सिंघाड़ा लगाने के लिए ''धन्नई '' का उपयोग करते है। ''घन्नई'' का निर्माण ये अपने हाथों से करते हैं, जिसमें दो बड़ा घड़ा तथा दो बांस के डंडों को घड़ों की गर्दन मे डोरी से बांध देते है। ''घन्नई'' को तालाब में दोनों घड़ों (गगरी) का मुँह नीचे करके दोनों घड़ों के बीच में बांस के डंडों पर बैठकर तालाब में सिंघाड़ा लगाते हैं।

2- <u>पण्डा समुदाय</u>

<u>सामाजिक संगठन</u>- अध्ययन क्षेत्र में 100 पण्डा परिवार में से मैंने प्रतिचयन के आधार पर 60 परिवार का अध्ययन किया है। 60 परिवार में सभी पितृसतात्मक, पितृस्थानीय एवं पितृवंशीय हैं तथा इन 60 परिवारों में 75 प्रतिशत एकल परिवार और 25 प्रतिशत संयुक्त परिवार पाये गये हैं।

एकल परिवार में माता-पिता तथा इनके अविवाहित बच्चे रहते हैं। इस परिवार का मालिक पिता होता है, पिता ही सभी की देख-रेख करता है। संयुक्त परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची, भाई-बहन, चचेरे भाई-बहन, भाई के बच्चे आदि सदस्य एक साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं तथा एक चूल्हे में सभी के लिए भोजन बनता है। घर की देख-भाल परिवार का वृद्ध व्यक्ति करता है जो घर का मुखिया या मालिक होता है। सभी सदस्य अपनी कमाई को घर के मुखिया के हाथ में देते हैं। परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति मुखिया ही करता है तथा शादी-विवाह की जिम्मेदारी मुखिया की ही होती है।

पण्डा जाति में एक विवाह का प्रचलन है अर्थात एक व्यक्ति एक समय में एक ही पत्नी रख सकता है। विवाह की औसत आयु लड़के की 21-30 वर्ष में तथा लड़की की 18-25 वर्ष में होती है। पहले सगाई होती है। इसके बाद एक-दो महीने में शादी करते हैं। तलाक प्रथा बहुत कम है। देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह भी होता है। ये अपनी शादी दारागंज, अहियापुर, अरैल, मोहम्मिनगंज, करछना, मध्यप्रदेश, बिहार, विध्यांचल आदि स्थानों पर करते हैं।

<u>आर्थिक संगठन</u>- गंगा को ही ये कृषि अर्थात खेती, व्यापार, नौकरी मानते है। गंगा ही इनके आय का मुख्य स्रोत है।

पण्डा गंगा के तट पर चौकी लगाकर बैठते हैं, उस चौकी पर चन्दन, धार्मिक ग्रन्थ आदि को रखते है। गंगा के तट पर ये अपने जजमानों को पूजा सुनाते हैं। जजमान गौदान, शइया दान, दाल-चावल, सोना-चाँदी आदि वस्तुओं का दान करते हैं।

प्रतिवर्ष माघ के मेले में पण्डा लोग गंगा के रेत पर टेन्ट लगाते है और सभी पण्डों का अपना-अपना चिन्ह होता है। इन टेन्टों को वे अपने जजमानों को कल्पवास के लिए देते हैं और जजमान उनको दान-दक्षिणा भी देते हैं। दान के कई प्रकार है- गौदान, सइया दान, तुलादान, वेणीदान, शनिदान आदि।

<u>गौदान</u>- गौदान में पूजा के समय गौ को सजाकर पूजन कर के वह गौ ब्राह्मण (पण्डा) को दान में दे दिया जाता है।

<u>सइया दान</u>- जजमान जिस सामान का प्रयोग करता है वह सभी सामान अपने ब्राह्मण (पण्डा) को देता है।

<u>तुलादान</u>- तुलादान में दान करने वाला अपने बराबर तौल कर सोना-चाँदी, गेंहुँ, चावल आदि वस्तुओं को देता है।

<u>वेणीदान</u>- वेणीदान में जजमान अपनी पत्नी को दान करता है, इसके बाद उसी स्थान पर अपनी पत्नी को खरीद भी लेता है। वेर्णादान से उनको सन्तान की प्राप्ति होती है।

<u>शनिदान</u>- शनिदान शनिदेव से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है। शनिदान शनिवार को ही किया जाता है।

पण्डा या ब्राह्मण लोग यज्ञ को भी कराते हैं, जैसे महाचन्डी यज्ञ, विष्णुयज्ञ, रूद्रयज्ञ महारुद्रयज्ञ आदि।

यही पण्डा जाति का मुख्य आर्थिक स्रोत है।

<u>धार्मिक संगठन</u>- ये हिन्दू धर्म से संबंधित हैं। ये हिन्दू धर्म के रक्षक तथा प्रचारक भी हैं। गंगा इनकी मुख्य आरध्य है। ये लोग प्रतिदिन गंगाजी की आरती करते हैं। माघ के मास में आरती के लिए विशेष व्यव्स्था करते हैं।

ये दशहरा, दीपावली, नागपंचमी, होली, महाशिवरात्रि आदि पर्व एवं त्यौहारों को बड़ी उत्सुकता से मानते हैं।

<u>राजनैतिक संगठन</u>- इस समुदाय की अपनी कोई पंचायत नहीं है। यदि कोई विवाद होता है तो ये थाना-पुलिस तथा न्यायालय की शरण लेते हैं।

गांव में एक ग्राम प्रधान, उप-प्रधान, वी0डी0सी0 तथा 5 या 7 होते हैं जिनका चुनाव गांव के सदस्यों द्वारा किया जाता है। ये सभी गांव के विकास के लिए कार्य करते हैं।

वर्तमान में इस जाति के लोग समाजवादी पार्टी से संबंधित हैं क्योंकि इस पार्टी का प्रत्याशी किसी मुसीबत में बुलाने पर तुरन्त आ जाता है और हम सब का सहयोग करता है।

इनकी जनसंख्या पुरानी झूँसी में लगभग 2000 तथा नई झूँसी में (दो घर) लगभग 25 है। इस जाति में 90 प्रतिशत शिक्षित हैं। 40 प्रतिशत महिलाएं तथा 50 प्रतिशत पुरुष शिक्षित हैं।

3- <u>चमार (हरिजन) समुदाय</u>

<u>सामाजिक संगठन</u>- अध्ययन क्षेत्र में 25 चमार परिवार में से मैनें प्रतिचयन के आधार पर 15 परिवार का अध्ययन किया है। 5 परिवार में सभी पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय एवं पितृवंशीय है तथा सभी परिवार एकल परिवार हैं।

एकल परिवार में माता-पिता तथा इनके अविवाहित वच्चे रहते हैं। विवाह के 4-6 महीने बाद वे अपने पिता से अपने हिस्से का बटवारा करके अपनी पत्नी को लेकर अलग हो जाते हैं, लेकिन महत्वपूर्ण कार्यो में अपने माता-पिता की राय अवश्य लेते हैं। जब तक माता पिता काम करने लायक रहते हैं, तव तक करते हैं। असहाय अवस्था में माता-पिता की देख-रेख उनके लड़के करते हैं। इस जाति में संयुक्त परिवारों की संख्या नगण्य है।

यह जाति एक-विवाही है। वर्तमान समय में लड़की की औसत आयु 15-16 वर्ष है तथा लड़के की औसत आयु 18-25 वर्ष है। सगाई शादी से 1 वर्ष पूर्व ही हो जाती हैं। विधवा-विवाह का प्रचलन है। देवर-भाभी विवाह, जीजा-साली विवाह भी होता है। वैवाहिक संबंध 25-40 कि0मी0 की दूरी तक होता है। दहेज प्रथा का प्रचलन है। दहेज लड़की की ओर से दिया जाता है। इनका विवाह फाल्गुन, बैसाख, जेठ आदि शुभ मुहूर्त में होता है। देवर-भाभी, जीजा-साली आदि में परिहास होता है। अपने से बड़ों, जैसे जेठ, ससुर आदि का नाम लेकर नहीं बुलाते ।

भोजन में गेहूँ, चावल, बाजरा, दाल, शाक, सब्जी, मांस, मछली आदि का उपयोग करते हैं।

15-20 वर्ष पहले ये लोग नारा ब्योरी तथा मरे हुए जानवरों का चमड़ा निकालते थे। वर्तमान में इस कार्य को बन्द कर दिया है। इनको अछूत जाति माना जाता है। इनके यहां कोई अन्य जाति पानी भी नहीं पीता है।

<u>आर्थिक संगठन</u>- चमार जाति के लोगों के पास कृषि भूमि नहीं है। अपना पेट पालने के लिए मेहनत-मजदूरी के अलावा अनके पास और कोई रास्ता नही है। अर्थात रोज कुआँ खोदना-पानी पीना है।

नई झूँसी के चमारों को सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं का कोई लाभ नही मिलता है। न तो वृद्ध पेंशन, विधवा पेंशन, न तो विकलांगों को कोई सहायता, न तो कोई कालोनी मिली है। नौकरी में कोई भी नही है। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है।

<u>धार्मिक संगठन</u>- ये हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। ये शिव, गणेश, दुर्गा, काली, हनुमान, राम-सीता आदि देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते है। पर्वो में दशहरा, दीपावली, होली, नागपंचमी, महाशिवरात्रि आदि सभी पर्व एवं त्यौहारों को मनाते हैं। ये मंदिरों में पूजा-पाठ करने जाते हैं तथा व्रत भी देवताओं के नाम पर रखते है। भूत-प्रेत-जादू-टोना में भी विश्वास करते हैं।

<u>राजनैतिक संगठन</u>- इस जाति में आपसी विवाद के निपटारे के लिए एक "पंचायत" होती है। इस जाति में वृद्ध तथा सम्मानित व्यक्ति को चौधरी चुना जाता है। किसी विवाद के निपटारे के लिए जब "पंचायत" बुलायी जाती है तो इस जाति का चौधरी "छड़ीवरदार" (चौकीदार) को कहता है कि विभिन्न गांवों में अपने जाति के चौधरियों को इसकी सूचना दे। पांच या सात गांव के चौधरी पंचायत में बुलाये जाते हैं। इनका निर्णय मान्य होता है। गम्भीर विवादों में ये न्यायालय की शरण में जाते हैं।

"छड़ीवरदार" (चौकीदार) चौधरी के कहने पर किसी सूचना को लोगों तक पहुँचाता है। जैसे, अगर कोई गांव में मर जाता है वह गांव में अपने सभी जाति के लोगों को इसकी सूचना देता है।

वर्तमान समय में बसपा पार्टी से संबंधित हैं, क्योंकि इस समय जातिगत राजनीति चल रही है।

<u>आवास</u>- इनका मकान कच्चा अधिक संख्या में है। 25 मकानों में 20 कच्चा (खपरैल) है तथा 5 पक्का है।

<u>महिलाओं की स्थिति</u>- महिलाओं की स्थिति इस जाति में सामान्य है। घर-गृहस्थ के साथ-साथ पुरूषों के कार्यों में भी सहायता करती हैं। महिलायें भी मेहनत मजदूरी करती हैं।

इस जाति की जनसंख्या लगभग 300 है। शिक्षा का स्तर निम्न है। प्राथमिक शिक्षा 50 प्रतिशत, माध्यमिक शिक्षा 5 प्रतिशत तथा उच्च्य शिक्षा नगण्य है।

4- <u>धोबी समुदाय</u>

<u>सामाजिक संगठन</u>- अध्ययन क्षेत्र में 8 धोबी परिवार में से मैंने प्रति चयन के आधार पर 6 परिवारों का अध्ययन किया है। सभी परिवार पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय एवूं पितृवंशीय हैं तथा 6 परिवारों में 50 प्रतिशत संयुक्त तथा 50 प्रतिशत एकल परिवार हैं।

संयुक्त परिवार में माता-पिता, दादा-दादी, चाचा-चाची, भाई-बहन, चाचा-चाची के बच्चे तथा भाई की पत्नी तथा बच्चे एक साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं तथा एक ही स्थान पर भोजन बनता है। घर का मालिक पिता या घर का वृद्ध व्यक्ति होता है। वही (मालिक) परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता

है। परिवार के सभी सदस्य अपना अपना कार्य करते हैं, पैसा मालिक को देते हैं। उसी पर घर की पूरी जिम्मेदारी होती है। शादी-विवाह आदि कार्य मालिक को ही करना पड़ता है।

एकल परिवार में शादी के एक-दो वर्ष बाद अपनी पत्नी को लेकर माता-पिता से अलग हो जाते हैं। ऐसे परिवार में पति-पत्नी तथा उनके बच्चे रहते हैं। महत्वपूर्ण कार्यों में अपने माता-पिता की भी राय लेते हैं तथा माता-पिता उनकी मदद करते हैं।

इनके आवासों की संख्या आठ है जिनमें 6 कच्चे (खपरैल) म पक्के हैं।

भोजन में गेहुँ, चावल, दाल, शाक, सब्जी, मांस, मछली आदि का उपयोग करते हैं। इस जाति में विवाह की औसत आयु लड़के की 20-25 वर्ष तथा लड़की की औसत आयु 16-18 वर्ष है। इन जातियों में 12-13 वर्ष में सगाई हो जाती है। सगाई के दो-तीन साल बाद शादी करते है। इससे एक दूसरे के खानदान तथा रहन-सहन के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है। ये अपनी शादी 25-40 कि.मी. की दूरी पर करते हैं। यह एक-विवाही हैं। इनमें देवर-भाभी, जीजा-साली परिहास होता है।

<u>आर्थिक संगठन</u>- इनका आर्थिक स्रोत कपड़ा धुलना है। ये सुबह छः बजे प्रतिदिन कपड़ों को धुलने के लिए गंगा के तट पर पहुँच जाते हैं। 12-1 बजे तक कपड़ा धुलते हैं। व्यापार भी करते हैं और लगभग 5 प्रतिशत नौकरी में भी हैं।

<u>धार्मिक संगठन</u>- ये हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। शंकर-पार्वती, विष्णु, राम, दुर्गा, काली आदि देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं तथा इन देवी-देवताओं की मूर्तियों को अपने घर में भी रखकर पूजा करते है। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं।

हिन्दू धर्म के सभी पर्व एवं त्यौहारों को मानते हैं। दशहरा, दीपावली, होली, नागपंचमी महाशिवरात्रि आदि।

<u>राजनैतिक संगठन</u>- इस जाति में एक मुखिया होता है जो वंशानुगत होता है। यह मुखिया आपसी विवादों का निपटारा करता है। गम्भीर मामलों में थाना-अदालत की भी शरण लेते हैं।

वर्तमान समय में ये लोग बसपा-सपा कांग्रेस आदि पार्टियों से संबंधित हैं। इस जाति में सभी अपने मत का प्रयोग करने में स्वतन्त्र होते हैं। उन पर कोई दबाव नहीं डाला जाता है। वैसे ये, जो पार्टी जीतने वाली होती है, उसी को वोट देते हैं अर्थात इसमें जातिगत राजनीति नहीं है।

इस जाति की जनसंख्या लगभग 70 है जिनमें 30 पुरूष 22 स्त्री और 18 बच्चे हैं।

शिक्षा स्तर निम्न है। प्राथमिक शिक्षा 90 प्रतिशत, माध्यमिक 50 प्रतिशत तथा उच्च शिक्षा 2 प्रतिशत है।

6- <u>बहेलिया समुदाय</u>

अध्ययन क्षेत्र में 10 बहेलिया परिवार में से मैंने प्रतिचयन के आधार पर 8 परिवार का अध्ययन किया है। इनके अनुसार-बहेलिया राजा हरबोंग के दरबारी थे। राजा के साथ शिकार करने जाते थे। उस समय यहां पर बहेलिया 989 घर तथा लगभग 5000 की संख्या में थे। ये अपनो को क्षत्रिय वंश से संबंधित बताते हैं। कर्म के कारण ये बहेलिया कहलाये। वर्तमान समय में बहेलिया अनुसूचित जाति में आते हैं। किला पलटने के बाद ये अन्य क्षेत्रों वाराणसी, प्रतापगढ, बताशामंडी,

सुलेमसराय, फाफामऊ, गद्दोपुर आदि में चले गये। यहां उस समय इनकी संख्या 10 बची थी। वर्तमान में (10 घर) लगभग 100 की संख्या में हैं।

<u>सामाजिक संगठन</u>- बहेलिया के 10 परिवारों में से मैंने प्रतिचयन के आधार पर 8 परिवारों का अध्ययन किया है जो पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय हैं। आठ परिवारो में सभी एकल परिवार हैं।

भोजन में मांस, मछली, दाल, चावल, गेहूँ आदि का उपयोग करते है।

विवाह की औसत आयु लड़की की 18-22 वर्ष तथा लड़के की 21-25 वर्ष में होती है। सगाई शादी के 6 महने पहले कर लेते हैं। शादी के लिए म0प्र0, बनारस, गोरखपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, मेजा, माण्डा, मीरजापुर, करछना, फाफामऊ, गद्दोपुर, सुल्लतानपुर, आदि क्षेत्रों में जाते हैं।

देवर-भाभी विवाह, जीजा-साली विवाह होता है। विधवा विवाह भी होता है।

<u>आर्थिक संगठन</u>- ये अब शिकार करना बन्द कर दिये हैं। ये अब मेहनत मज़दूरी, व्यापार करके अपना जीवन-यापन करते हैं।

<u>धार्मिक संगठन</u>- ये हिन्दू धर्म को मानते हैं। हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सभी देवी देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं तथा पर्व एवूं त्योहार में दशहरा, दीपावली, होली, नागपंचमी, महाशिवरात्रि आदि पर्व एवूं त्योहारों को मनाते हैं।

<u>राजनैतिक संगठन</u>- बहेलिया समुदाय की परम्परागत अपनी "पंचायत" है। इस मसाज के लोग पंचायत के निर्णय को ही सर्वमान्य मानते हैं। पंचायत में 12 "टाट" (जिले) के चौधरी को बुलाया जाता है। पंचायत वर्ष में एक बार होती है। सभी विवादों का निर्णय उसी समय होता है। गम्भीर मामलों में थाना-अदालत का भी सहारा लेते हैं।

वर्तमान में भाजपा पार्टी से संबंधित हैं। इस समाज में शिक्षा का स्तर निम्न है। हाई-स्कूल तथा इण्टर में 15 प्रतिशत शिक्षित है। उच्च शिक्षा नगण्य है। महिलायें अशिक्षित हैं। वर्तमान में प्राईमरी स्तर की शिक्षा बढ़ रही है।

6- <u>बिन्द(केवट) समुदाय</u>

<u>सामाजिक संगठन</u>:- अध्ययन क्षेत्र के 100 बिन्द (केवट) परिवार में से मैंन प्रतिचयन के आधार पर 25 परिवारों में 95 प्रतिशत एकल परिवार तथा 5 प्रतिशत सुयंक्त परिवार पाये गये है।

प्रतिचयन के आधार पर 25 परिवारों में सभी पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय एवं पितृवंशीय पाये गये है। वर्तमान समय में विवाह की औसत आयु लड़की की 16-18 वर्ष, लड़के की 18-25 वर्ष होती है। सगाई विवाह के 1-2 वर्ष पहले हो जाती है। विवाह ''अगुआ-- द्वारा कराया जाता है जो दोनों पक्षों से सम्बंधित होता है। शादी के लिए बाबूगंज, सुल्तानपुर, दारागंज कीटगंज, मुट्ठीगंज, सुलेमसराय, मम्फोर्डगंज, कटरा आदि क्षेत्र में जाते है। विघवा विवाह का प्रचलन हैं देवर-भाभी, जीजा-साली, विवाह का भी प्रचलन है। विवाह विच्छेद भी होता है।

देवर भाभी, जीजा -साली में परिहास होता हैं अपने से बड़ों का नाम नहीं लेते। जैसेः- जैठ, सास, ससुर आदि।

भोजन में ये मांस, मछली, गेहुँ, चावल, दाल साग, सब्जी आदि का उपयोग करते है।

<u>आर्थिक संगठन</u>- इनका आर्थिक स्त्रोत मेहनत-मजदूरी, करना ट्राली चलाना, रिक्शा चलाना, ट्राली पर सब्जी बेचना, छोटे-मोटे व्यापार करते है। नौकरी में कोई भी व्यक्ति नहीं है।

धार्मिक संगठन- धर्म के संवध में ये लोग हिन्दु धर्म से सम्वंधित सभी देवी-देवताओं में विश्वास रखते है। तथा सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं जैसे-गणेश-शंकर, पार्वती, राम सीता, दुर्गा, वैष्णव, हनुमान आदि। सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाट करते है। ये लोग देवताओं के नाम पर व्रत भी रखते हैं जैसे शंकर, हनुमान आदि।

भूत-प्रेत में भी ये विश्वास करते है। पर्व एवं त्यौहारों में ये दशहरा दीपावली, नागपंचमी, महाशिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, होली आदि को बड़ी धूम से मनाते हैं।

राजनीतिक संगठन- इस समाज में पंचायत की व्यवस्था है। किसी विवाद का निपटारा पंचायत द्वारा किया जाता है। पंचायत में गाँव का चौधरी तथा पाँच-दस मानिन्द तथा कुछ पढ़े-लिखे लोग होते हैं। जो फैसला पंचायत करती है दोनों पक्षों को मान्य होता है। पंचायत निम्न मामलों में जैसे, विवाह-विच्छेद, जमीन का विवाद या आपसी झगड़ों में बुलायी जाती है। गम्भीर मामालों में पुलिस, तथा न्यायालय की शरण में जाते हैं। वर्तमान में ये बसपा पार्टी से सम्बंधित हैं क्योंकि आजकल जाति वाद का बोलबाला है।

आवास- बिन्द परिवारों की संख्या 100 है जिसमें 10 पक्के तथा 90 कच्चे (खपरैल) है। तथा इनकी कुल जनसंख्या 600 के लगभग है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। प्राथमिक (कक्षा 5 से 8 पास) 25 प्रतिशत माध्यमिक (कक्षा 10 से 12 तक) 5 प्रतिशत तथा स्नातक नगण्य है। महिलाएं शिक्षा में नगण्य हैं।

7- पासी समुदाय

सामाजिक संगठन- अध्ययन क्षेत्र के 50 पासी (भारतीय) परिवारों में से मैंने प्रतिचयन के आधार पर 10 परिवारों का अध्ययन किया है जिसमें सभी परिवार पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, पितृवंशीय तथा एकल परिवार पाये गये हैं। वर्तमान समय में लड़की की

विवाह की औसत आयु 16-20 वर्ष है तथा लड़के की विवाह की औसत आयु 18-25 वर्ष है। विवाह "अगुआ" के द्वारा कराया जाता है जो दोनों पक्षों से सम्बंधित होता है। सगाई विवाह से 4-6 महीने पहले हो जाती है। शादी के लिए ये हनुमानगंज, देवरिया, सहसों, बाबूगंज आदि क्षेत्रों में जाते है।

विधवा विवाह भी होता है। देवर-भाभी, जीजा-साली, विवाह भी होता है। तथा देवर-भाभी, जीजा साली में परिहास होता है। अपने से बड़ों का नाम नहीं लेते हैं जैसे, जेठ, ससुर, आदि।

भोजन में ये सुअर का मांस, मछली, गेहुँ, चावल, दाल, साक-सब्जी आदि का उपयोग करते है। शराब का भी उपयोग करते है।

<u>धार्मिक संगठन</u>- हिन्दु धर्म के सभी देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं तथा उनकी पूजा-पाठ करते हैं तथा उनके नाम व्रत भी रखते है। जादू-टोना, भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं।

पर्व एवं त्यौहारों में ये दशहरा, दीपावली, होली, नागपंचमी, महाशवरात्रि आदि को बड़े उल्लास से मनाते हैं।

<u>आर्थिक संगठन</u>- इनके आवासों की संख्या 50 है जिनमें 10 पक्के तथा 40 कच्चे (खपरैल) तथा इनकी कुल जनसंख्या 300 है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। प्राथमिक शिक्षा (5 से 8) 50 प्रतिशत, माध्यमिक (10 से 12) 15 प्रतिशत, उच्च शिक्षा (स्नातक) 2 प्रतिशत है।

<u>सारांश</u>

वर्तमान अध्ययन में निम्न समुदायों का संक्षिप्तिकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

क्षेत्र के निषाद समुदाय जो हिन्दु तथा पिछड़े वर्ग से संबधित हैं इनके परिवार पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय एवं पितृवंशीय हैं। एकल परिवारों की संख्या 85 प्रतिशत

तथा संयुक्त परिवार की संख्या 15 प्रतिशत है। इस समुदाय में लड़की की शादी 15-18 वर्ष तथा लड़के की 18-25 वर्ष में हो जाती है निषाद समुदाय में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह होता है।

निषाद समुदाय के 250 परिवारों में 150 कच्चे मकान, तथा 100 पक्के मकान पाये गये हैं। इनका मुख्या अर्थिक स्रोत - मछली मारना, गंगा की रेत में खीरा-ककड़ी, साक-सब्जी आदि की खेती करना है। तालाब में सिंघाड़ा लगाना तथा मछली पालना, माघ मेले के अवसर पर अखाड़ों का यज्ञशाला बनाते हैं तथा मेले में मजदूरी तथा ठेकेदारी भी करते हैं। 15 प्रतिशत लोग नौकरी में हैं। इनके पास अपनी भूमि भी है जिसमें वे खेती करते हैं। नाव भी चलते हैं।

निषाद समुदाय हिन्दू धर्म से संबंधित हैं। यह शंकर-पार्वती, गणेश-लक्ष्मी, हनुमान, दुर्गा, काली, आदि देवी-देवताओं की पूजा करते है तथा दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, नागंपचमी, होली आदि त्यौहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। भूत-प्रेत में ये विश्वास करते हैं।

इस समुदाय की अपनी एक पंचायत होती है। किसी विवाद के निपटारे के लिए पंचायत में पांच घाट के (दारागंज, मेहदौरी, रसूलाबाद, महेवा, निका, सुलेमसराय आदि) के चौधरी बुलाये जाते है। इनको पंचपरमेश्वर कहते है। इनके निर्णय मान्य होते हैं गम्भीर मामलों में न्यायलय की भी शरण लेते है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। 35 से 65 वर्ष तथा इससे अधिक उम्र के लोगों की शिक्षा लगभग 5 प्रतिशत है। वर्तमान में शिक्षा स्तर बढ़ रहा है। प्राइमरी में 80 प्रतिशत हैं, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिट में लगभग 30 प्रतिशत हैं। उच्च शिक्षा (स्नातक) में 5 प्रतिशत है।

निषाद समुदाय में महिलाओं की स्थिति सामान्य है। ये घर-गृहस्थ कार्य के साथ-साथ गंगा की रेत में खीरा-ककड़ी, साक, सब्जी, आदि की खेती भी करती हैं। महिलाओं की शिक्षा नगण्य है।

निषाद समुदाय अपनी नाव को लकड़ी तथा लोहे की चद्दर से स्वयं बनाते हैं। कुम्भ मेले मे निषाद अखाड़ों का यज्ञशाला, गुम्बज आदि का निर्माण करते हैं। ये हरिद्वार, नासिक, उज्जैन के कुम्भ मेले में भी अखाड़ों का यज्ञशाला, गेट, गुम्वज आदि का निर्माण करने जाते हैं। तालाव में सिंघाड़ा लगाने के लिए "धन्नई" का निर्माण करते हैं जिसमें दो बड़ा घड़ा तथा एक डेढ़ मीटर की दो बांस के डंडे, जिसे घड़े के गलों में बाँध कर बनाते है।

अध्ययन क्षेत्र के पण्डा समुदाय के परिवार का रुप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है। पण्डा हिन्दू धर्म के संस्थापक, प्रवर्तक आदि कहे जा सकते है। इनको पुरोहित भी कहा जाता है। इस समुदाय में एकल परिवार 75 प्रतिशत तथा संयुक्त परिवार 25 प्रतिशत पाये गये।

विवाह की औसत आयु लड़के की 21-30 वर्ष तथा लड़की की 18-25 वर्ष है। देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह भी विशेष स्थिति में होता है।

इस समुदाय का मुख्य आर्थिक स्रोत गंगाजी हैं। गंगा को ही ये अपनी खेती, व्यापार तथा नौकरी मानते हैं। ये अपने जजमानों को पूजा-पाठ, यज्ञ आदि कराते हैं जिसमें इनको दान के रूप में काफी धन की प्राप्ति होती है, जैसे-गौदान, सइयादान, तुलादान, वेणीदान, शनिदान आदि।

इनकी अपनी कोई पंचायत नहीं है। न्यायालय द्वारा इनके विवादों का निराकरण होता है।

ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित हैं। ये हिन्दू के रक्षक तथा प्रचारक भी हैं। गंगा इनकी मुख्य अराध्य है। ये प्रतिदिन गंगा की आरती करते है। ये दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, होली आदि पर्व एवं त्यौहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते है।

इस समुदाय में शिक्षा का स्तर 90 प्रतिशत है जिनमें स्त्री 40 प्रतिशत है।

चमार समुदाय में परिवारों का रुप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, पितृवंशीय है। इनका परिवार एकल परिवार के रूप में है। विवाह की औसत आयु लड़की की 18-20 वर्ष तथा लड़के की 18-25 वर्ष है। सगाई 1 वर्ष पहले हो जाती है। शादी कराने वाले को "अगुआ" कहते हैं। दहेज प्रथा वर मूल्य के रूप में है। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह होता है।

चमार समुदाय भूमिहीन है। ये अपना पेट पालने के लिए मेहनत-मजूरी करते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। सरकार द्वारा चलाई गयी योजनाओं का इनको कोई लाभ नहीं मिलता है।

ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित है। शिव, गणेश, दुर्गा, काली, हनुमान,पार्वती आदि देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, होली आदि पर्व एवं त्यौहारों को मानते हैं।

इनकी अपनी पंचायत है। किसी वृद्ध व्यक्ति या सम्मानित व्यक्ति को गांव का चौधरी चुना जाता है। पंचायत में पाँच सात गाँव के चौधरी आते हैं। गांव के चौधरी को बुलाने "छड़ीवरदार" (चौकीदार) जाता है।

25 घरों में 20 कच्चे (खपरैले) घरों में तथा 5 पक्के (एक दो कमरे तक) घरों में रहते हैं।

इस समुदाय में शिक्षा का स्तर निम्न हैं प्राथमिक (5 से8 तक) 50 प्रतिशत तथा माध्यमिक (9-12 तक) 5 प्रतिशत हैं। उच्च शिक्षा नगण्य है।

धोबी समुदाय अनुसूचित जाति में आती है। इनके परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा 75 प्रतिशत एकल परिवार और 25 प्रतिशत संयुक्त परिवार के रूप में है। इन समुदायो में विवाह 16-18 वर्ष में लड़की का तथा 18-25 वर्ष लड़के का करते है।

इनका मुख्य आर्थिक स्रोत कपड़ा धुलना है। 5 प्रतिशत लोग नौकरी भी करते हैं। ये हिन्दू धर्म से संबंधित सभी देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं।

इस समुदाय में अपनी कोई पंचायत नहीं है। छोटे-मोटे विवाद को आपस में ही समझ लेते हैं। गम्भीर मामलों में न्यायालय की शरण लेते हैं। शिक्षा स्तर निम्न है। प्राथमिक (1-8) 90 प्रतिशत, माध्यमिक 50 प्रतिशत, उच्च शिक्षा 2 प्रतिशत है।

बहेलिया समुदाय राजा हरबोंग के दरबारी थे तथा उस समय ये '989' घर थे। राजा के लिए शिकार करते थे। वर्तमान समय में 10 घर हैं जिनकी संख्या लगभग 100 है। ये अपने को क्षत्रिय वंश से सम्बंधित बताते हैं लेकिन वर्तमान में ये अनुसूचित जाति में आते हैं। इनके परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल परिवार है। लड़की की शादी 18-22 वर्ष में तथा लड़के की 21-25 वर्ष में करते हैं। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह मान्य है। इनका आर्थिक स्रोत मेहनत-मजदूरी तथा छोटे-मोटे व्यापार द्वारा अपना जीविकोपार्जन करना है। ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित हैं तथा हिन्दू के सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं तथा पर्व एवं त्यौहारो में दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, होली नागपंचमी आदि को मानते हैं।

इस समुदाय में "पंचायत" की व्यवस्था है। पंचायत में 12 टाट (जिले) के चौधरी बुलाये जाते हैं। वर्ष में एक बार ही पंचायत होती है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। प्राथमिक शिक्षा (1से 8 तक) 80 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा (9 से 12 तक) 15 प्रतिशत है, उच्च शिक्षा नगण्य हैं

बिन्द परिवार में परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल परिवार 95 प्रतिशत एवं संयुक्त परिवार 5 प्रतिशत हैं। लड़की की शादी 16-18 वर्ष में तथा लड़के की 18-25 वर्ष में करते हैं। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह मान्य है। ये मेहनत-मजदूरी करके अपना जीविकोपार्जन करते है। हिन्दू धर्म से सम्बंधित सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि आदि पर्व एवं त्यौहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। इस समुदाय में "पंचायत" है। पंचायत में गांव का चौधरी एवं गांव के पांच दस मानिन्द व्यक्ति होते हैं। इनका निर्णय मान्य होता है। गम्भीर मामलों में न्यायालय की शरण लेते हैं।

बिन्द समुदाय का 100 परिवार है। 90 कच्चे (खपरैल) मकान है तथा 10 पक्के मकान हैं।

शिक्षा स्तर निम्न हैं प्राथमिक शिक्षा (5 से 8 तक) 25 प्रतिशत है। माध्यमिक (10-12 तक) 5 प्रतिशत तथा स्नातक नगण्य है।

पासी समुदाय जो अनुसूचित जाति में है, इसके परिवर का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल पिरवार में है। लड़की की शादी 16-20 वर्ष में तथा लड़के की 18-25 वर्ष में होती है। हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं राम-सीता, हनुमान, शंकर-पार्वती, गणेश, लक्ष्मी, दुर्गा काली आदि की पूजा पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। आर्थिक स्रोत के अन्तर्गत छोटे-मोटे व्यापार, सुअर पालना, एक दो लोग नौकरी में भी हैं तथा मेहनत-मजदूरी करते हैं इस समुदाय में पंचायत की व्यवस्था है।

पंचायत में गांव का चौधरी तथा गांव के ही 5-10 मानिन्द व्यक्ति होते हैं गम्भीर मामलों में न्यायालयकी शरण लेते हैं। पासी समुदायों का 50 मकान है इनमें 40 कच्चे (खपरैल) है तथा 10 पक्के हैं। शिक्षा प्राथमिक (5-8) 50 प्रतिशत, माध्यमिक (10-12) 15 प्रतिशत, उच्च शिक्षा 2 प्रतिशत है।

----0----

उपर्युक्त समुदायों की वंशावली

निषाद समुदाय की वंशावली
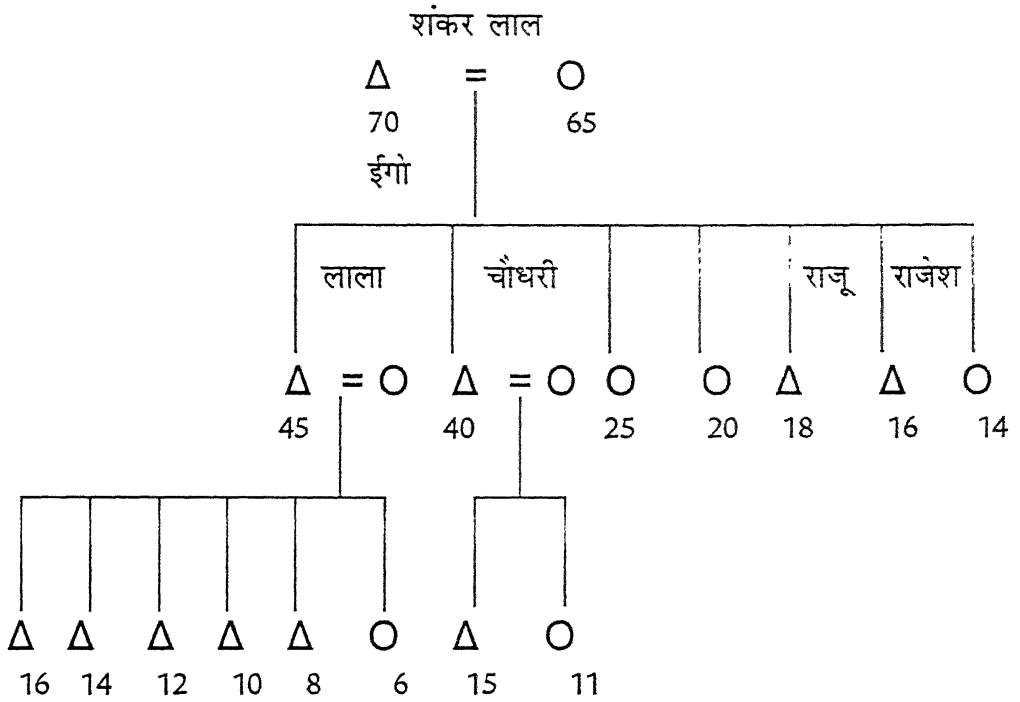
टिप्पणी:

1- परिवार का मुखिया शंकर लाल है।

2- पहला पुत्र (लाला) और दूसरा पुत्र (चौधरी) और बच्चों के साथ ईगो से अलग रह रहा है।

3- ईगो की बड़ी लड़की विवाह के बाद इस परिवार से चली गयी है।

(2)
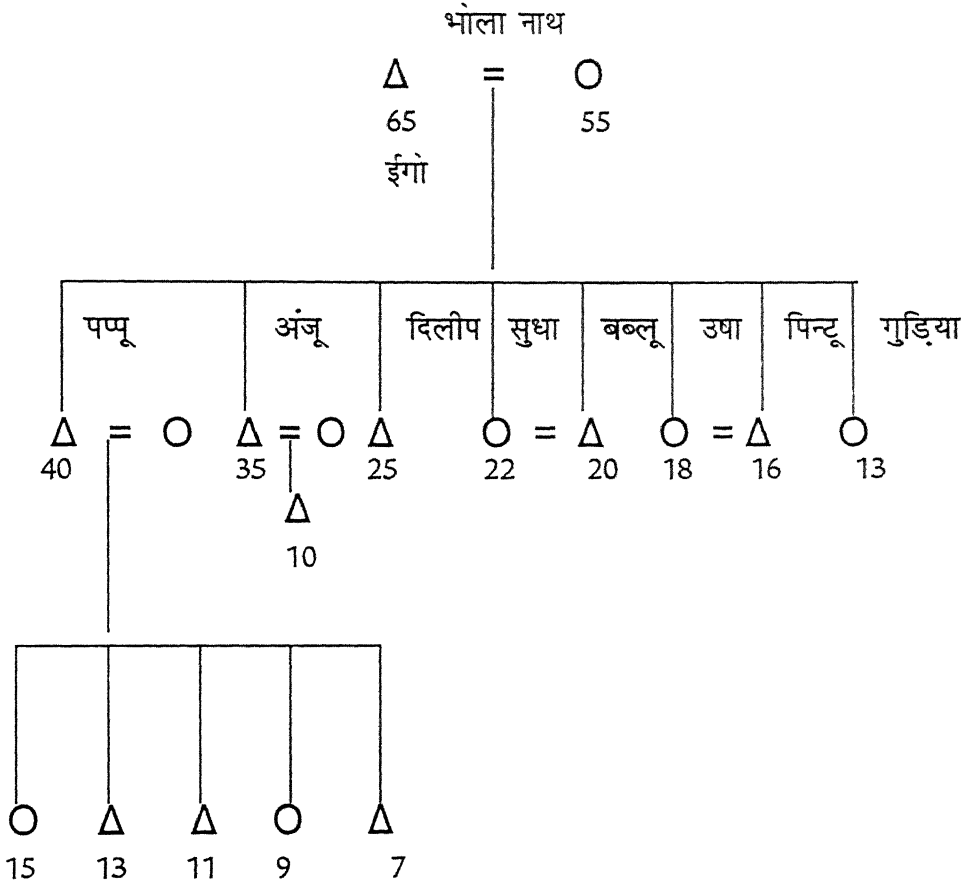
टिप्पणी -

(1) परिवार का मुखिया भोलानाथ है ।

(2) ईगो का पहला लड़का (पप्पू) और दूसरा लड़का (अन्जू) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो से अलग रह रहे हैं।

(3) सुधा तथा उषा विवाह के बाद अपने ससुराल में रह रही हैं।

(3)
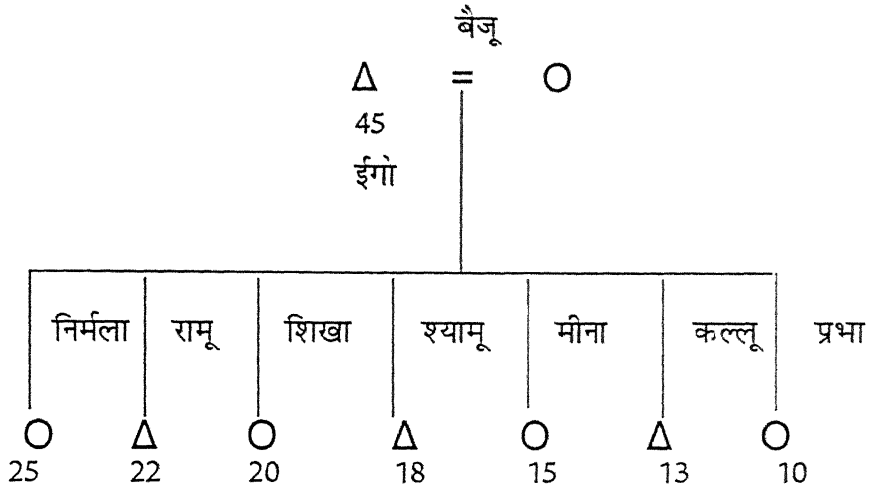
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया बैजू है ।

(2) निर्मला विवाह के बाद अपनी ससुराल महेवा में रह रही है।

(4)
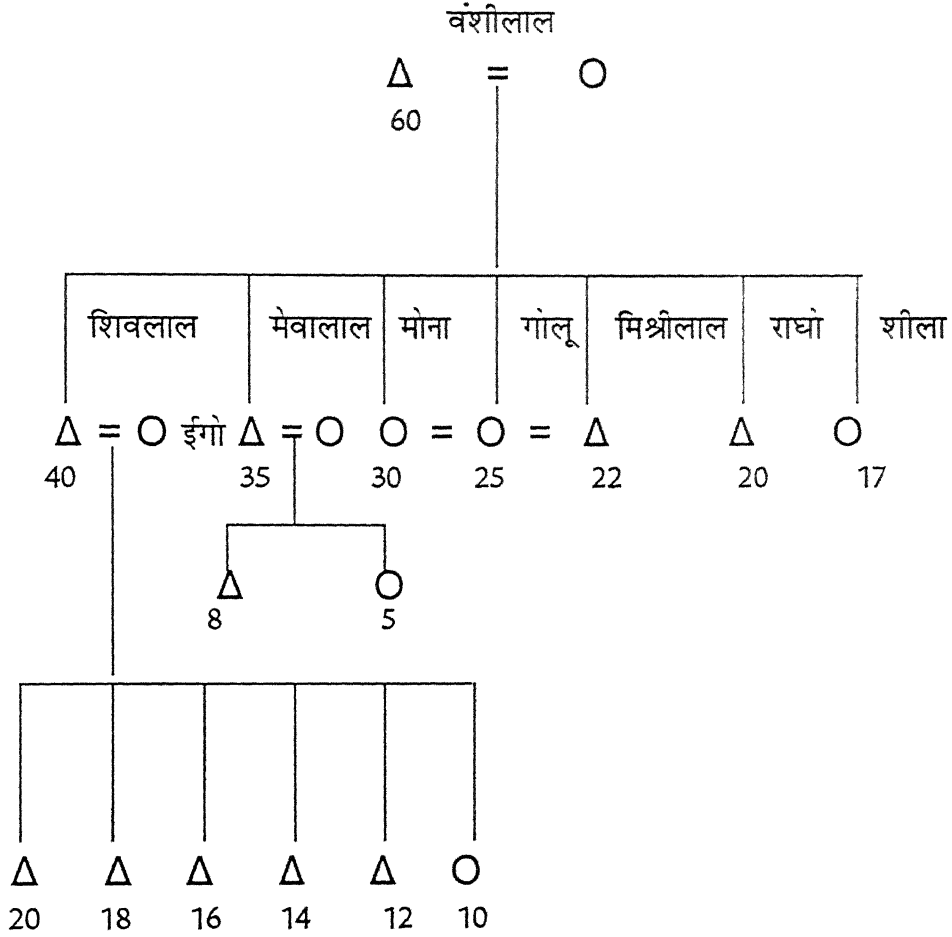
टिप्पणी -

(1) परिवार का मुखिया मेवालाल है ।

(2) शिवलाल अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

(3) मोना तथा गोलू विवाह के बाद अपने ससुराल में रह रही हैं।

(4) ईगो के माता पिता अपने अविवाहित बच्चों मिश्रीलाल, राघो तथा शीला के साथ रह रहे हैं।

(5)
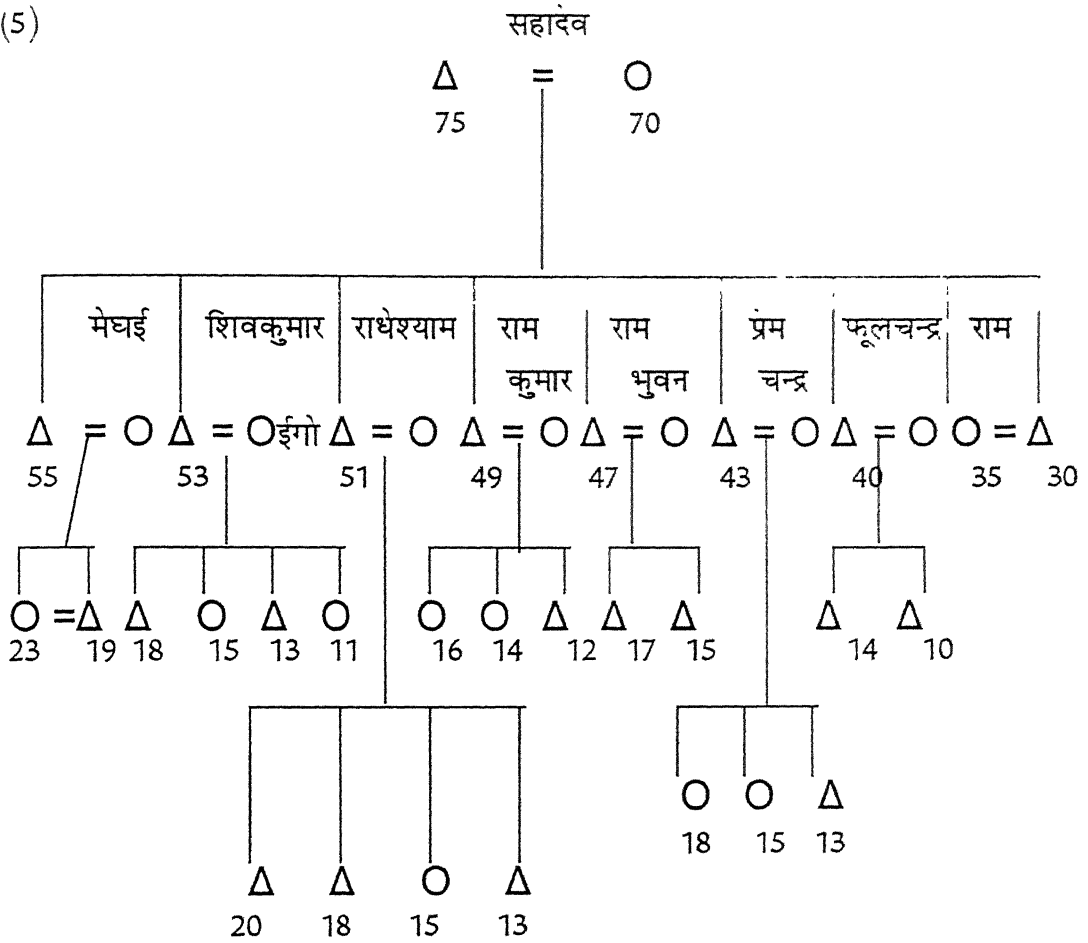
टिप्पणी -

(1) परिवार का मुखिया राधेश्याम है।

(2) मेघई, शिवकुमार, राधेश्याम, रामकुमार, राम भुवन अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहे हैं।

(3) प्रेमचन्द, फूलचन्द, रामचन्द्र अपने माता पिता के साथ रह रहे हैं।

(4) ईगो की बहन विवाह के बाद ससुराल में रह रही है।

(6)
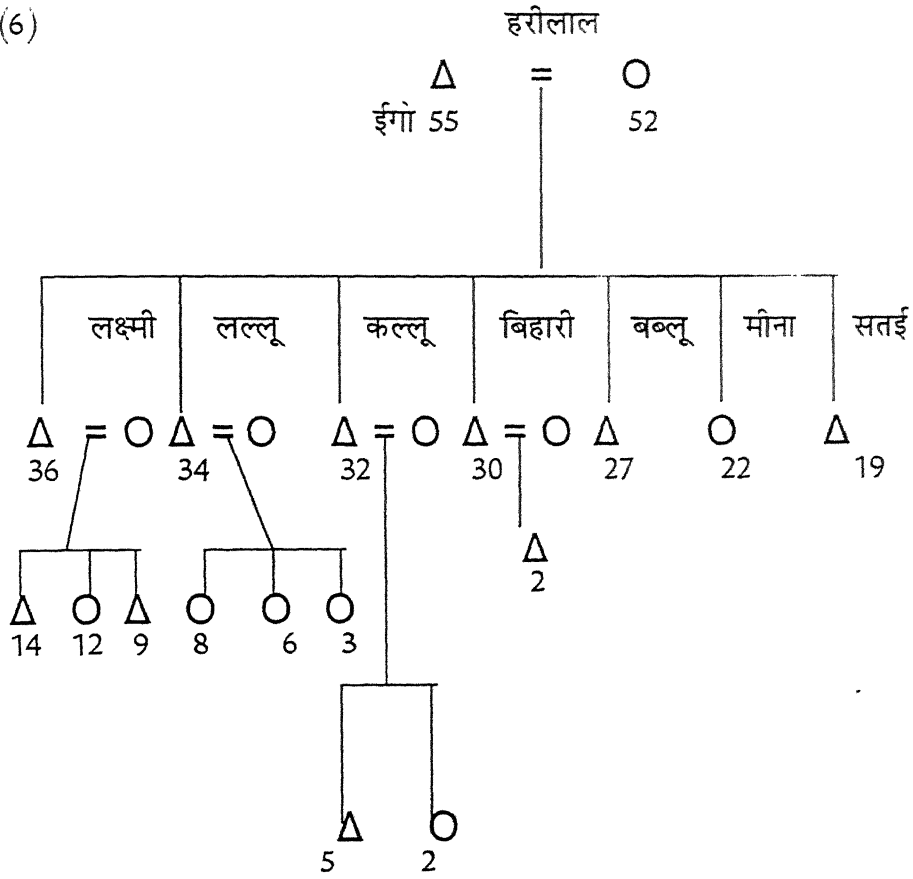
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया हरीलाल है।

(2) लक्ष्मी, लल्लू कल्लू, बिहारी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहे हैं।

(3) बब्लू, मिना, सतई अपने माता पिता के साथ रह रहे हैं।

(7)
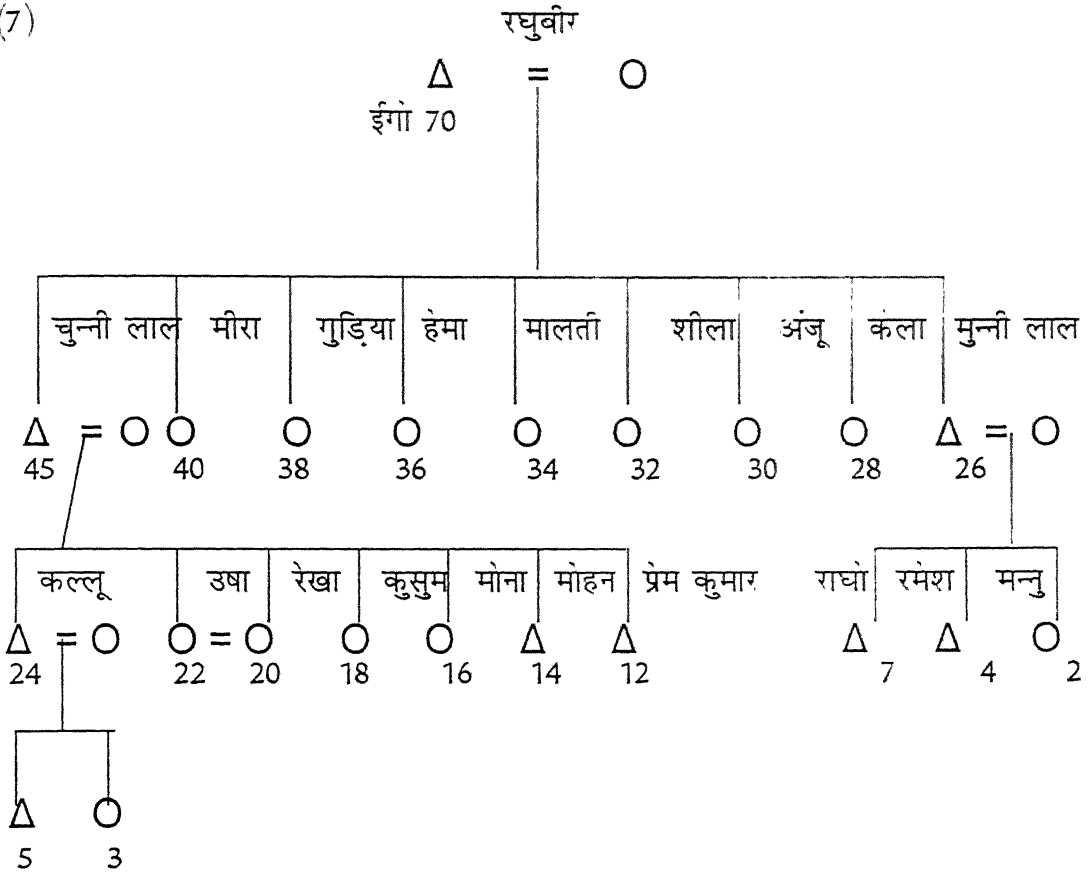
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया रघुबीर है।

(2) ईगो का पहला लड़का (चुन्नीलाला) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

(3) मीरी, गुड़िया, हेमा, मालती, शीला, अन्जू, केला विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(4) उषा विवाह के बाद अपने ससुराल में रह रही है।

(5) चुन्नी लाल का बड़ा लड़का (कल्लू) अपनी पत्नी औरबच्चों के साथ अलग रह रहा है।

(8)
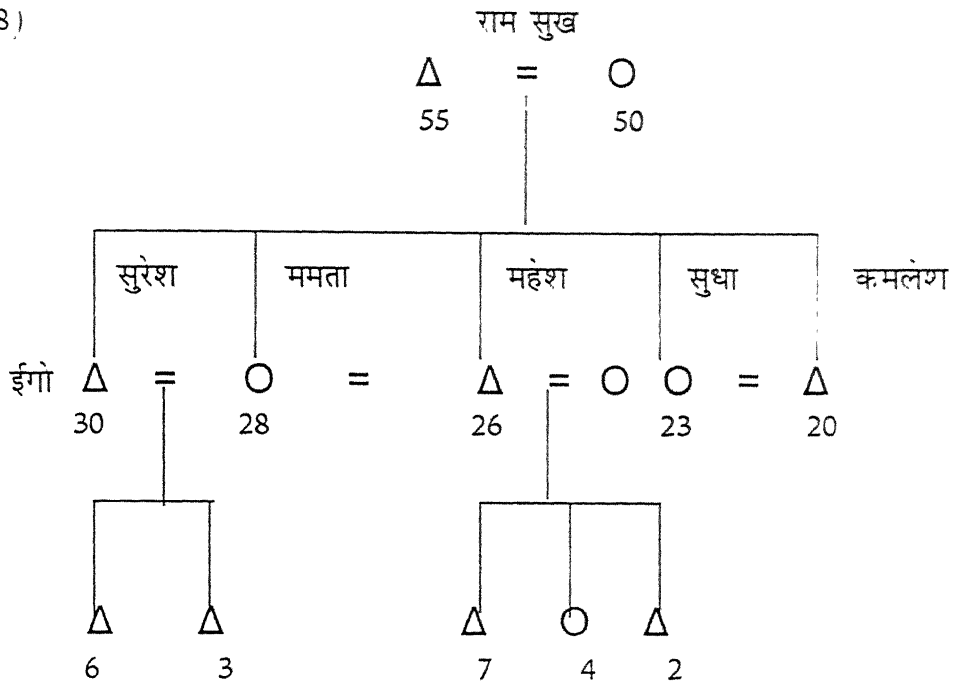
टिप्पणी:

1- परिवार का मुखिया सुरेश है।

2- महेश अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

3- ममता और सुधा विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(9)

टिप्पणी:

1- परिवार का मुखिया शिवनाथ है।

2- ईगो का बड़ा भाई (बैजनाथ) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रहता है।

3- ईगो की सभी बहने विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

पण्डा समुदाय की वंशावली

(1)
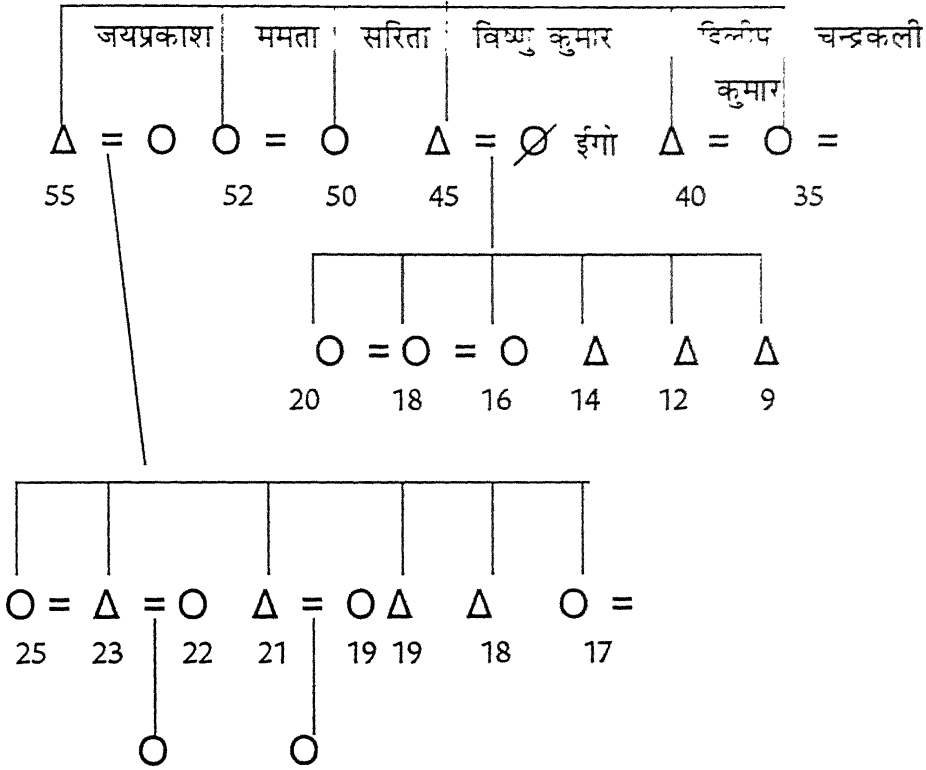
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया दिलीपकुमार है।

(2) ईगो की बहने (ममता, सरिता, चन्द्रकली) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(3) ईगो के बड़े भाई (जय प्रकाश और विष्णु कुमार) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहे हैं।

(4) जयप्रकाश की लड़कियां विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(5) विष्णु कुमार की पहली तथा दूसरी लड़की विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

(2)
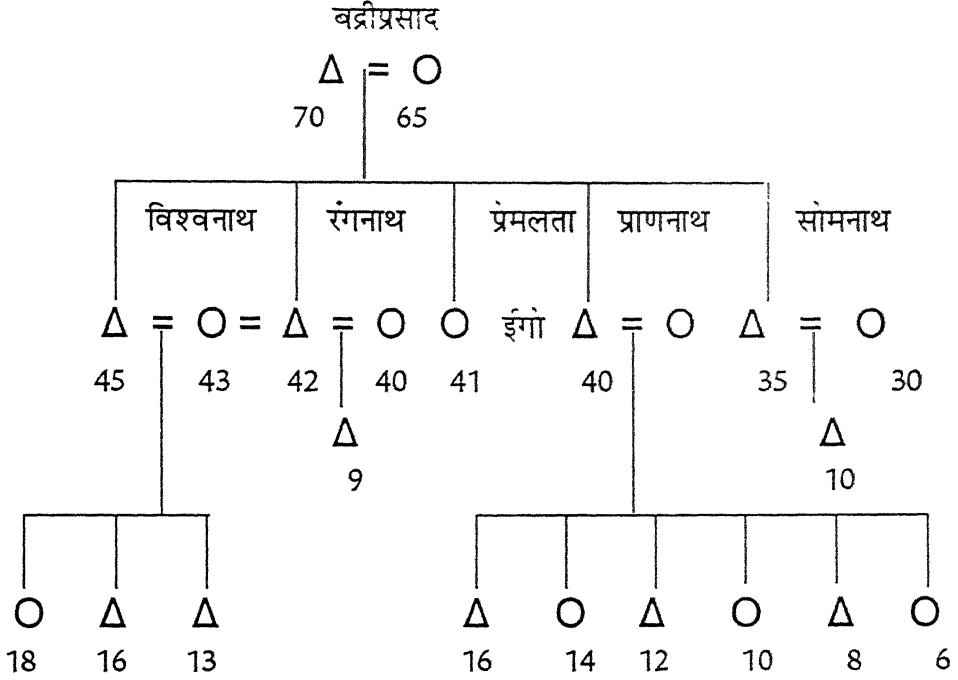
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया प्राणनाथ है।

(2) ईगो का पहला भाई (विश्वनाथ) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहा है।

(3) ईगो की बहन (प्रेमलता) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

(3)
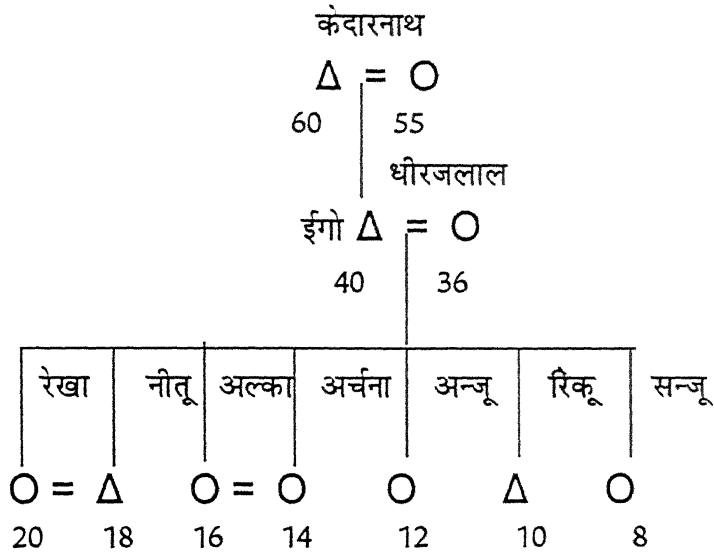
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया धीरजलाल है।

(2) ईगो की पहली तथा दूसरी लड़की (रेखा, नीतू) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(4)
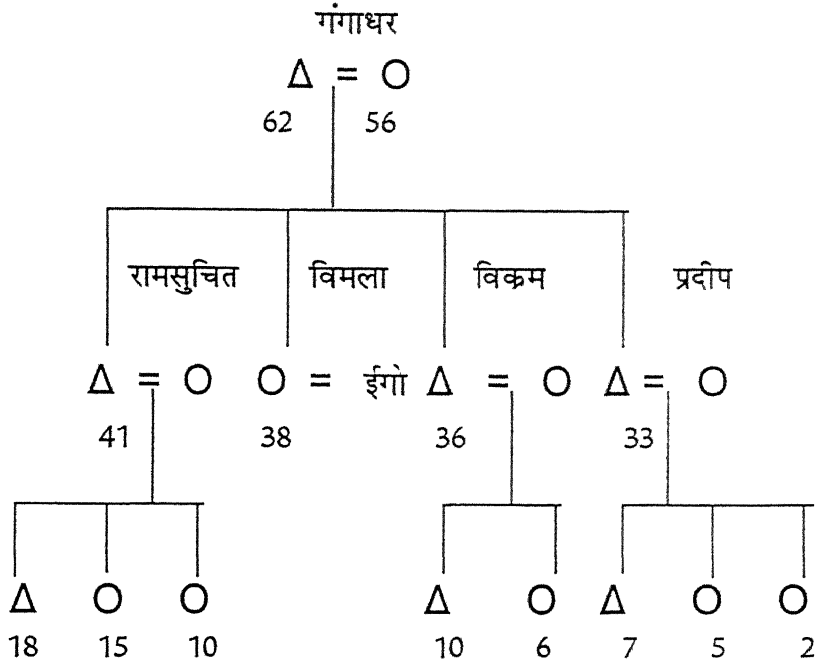
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया विक्रम है।

(2) ईगो का बड़ा भाई (रामसुचित) तथा छोटा भाई (प्रदीप) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहा है।

(3) ईगो की बहन विमला विवाह के बाद अपनी ससूराल में रह रही है।

(5)
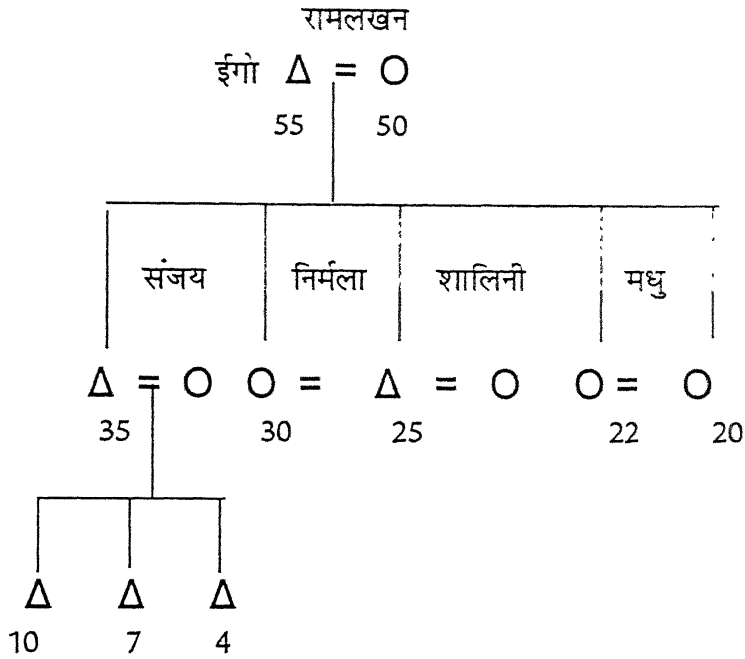
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया रामलखन है।

(2) ईगो की लड़कियां (निर्मला, शालिनी, मधु) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(6)
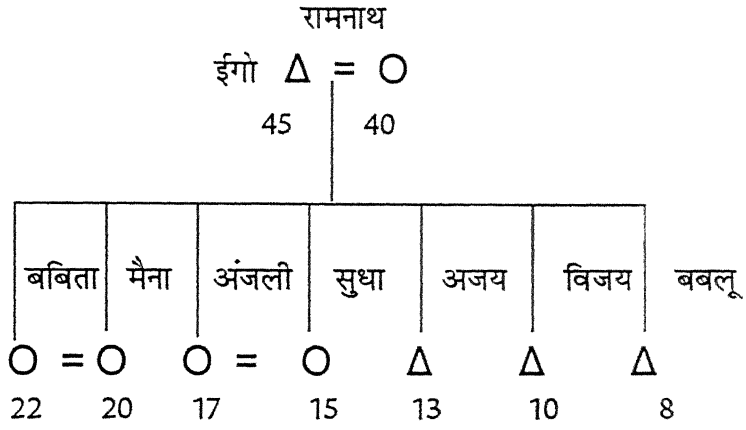
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया रामनाथ है।

(2) ईगो की पहली तथा दूसरी लड़की (बबिता मैना) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

चमार जाति की [illegible]

(1)
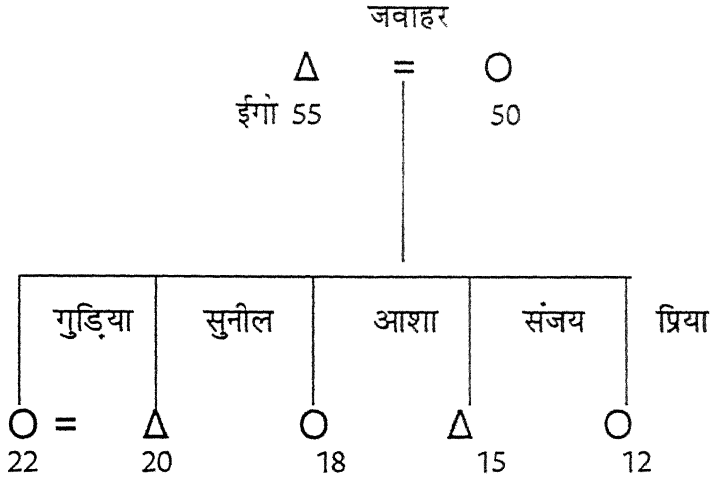
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया जवाहर है।

(2) ईगो की बड़ी लड़की (गुड़िया) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

(2)
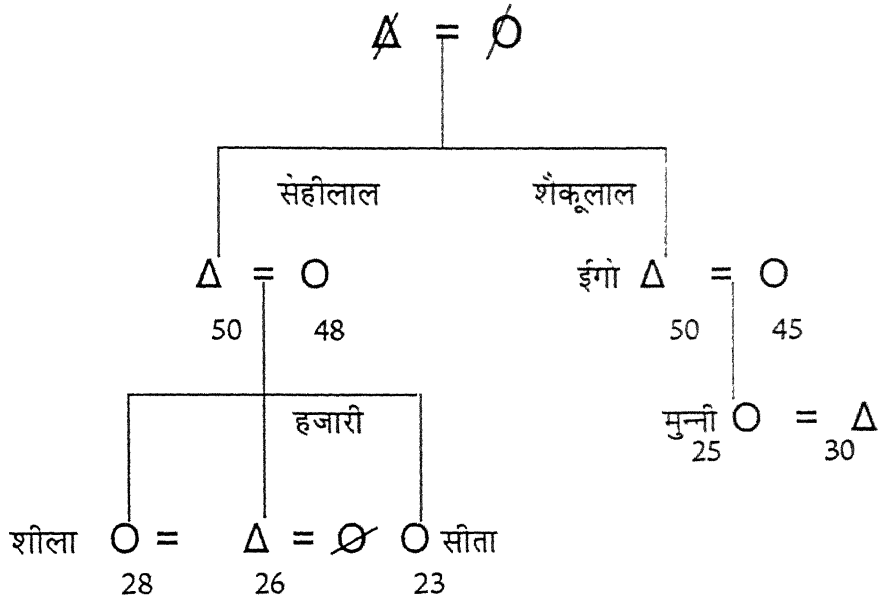
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया शैकूलाल है।

(2) ईगो का बड़ा भाई (सेहीलाल) अपनी पत्नी और के साथ अलग रह रहा है।

(3) सेहीलाल की लड़कियां (शीला, सीता) विवाह के बाद अपनी ससुराल मे रह रही हैं।

(4) ईगो की पुत्री (मुन्नी) विवाह के बाद अपने पति के साथ अपने माता-पिता के साथ मैके में रह रही है।

चमार जाति की वंशावली

(3)
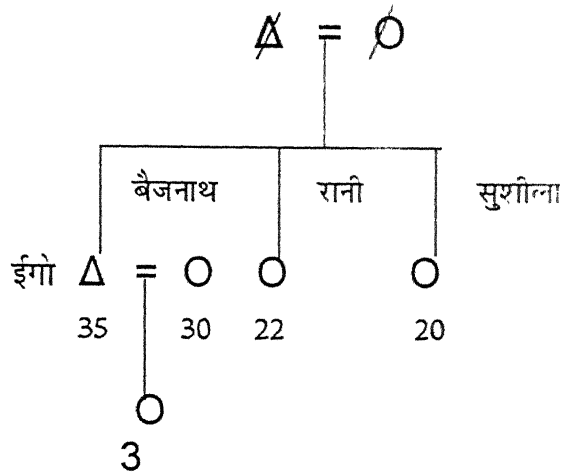
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया बैजनाथ है।

(4)
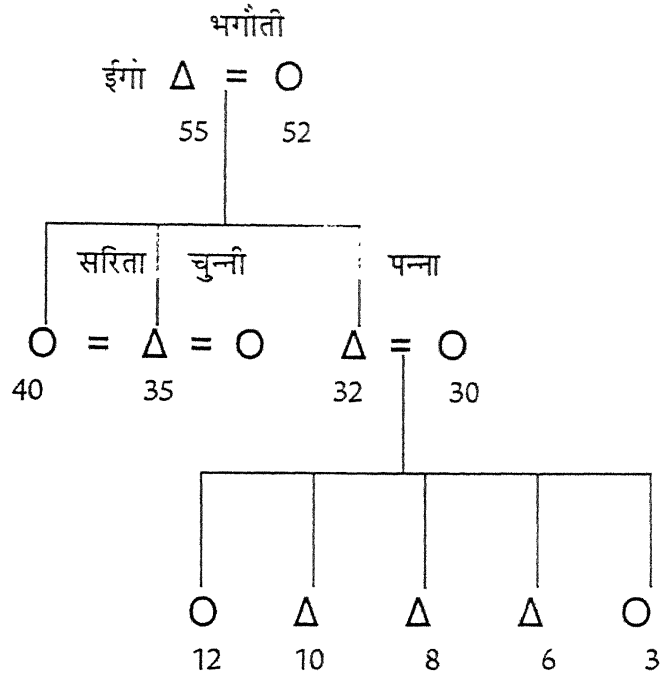
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया भगौती है।

(2) ईगो का दूसरा लड़का (पन्ना) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

(3) ईगो की लड़की (सरिता) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

धोबी समुदाय की वंशावली

(1)
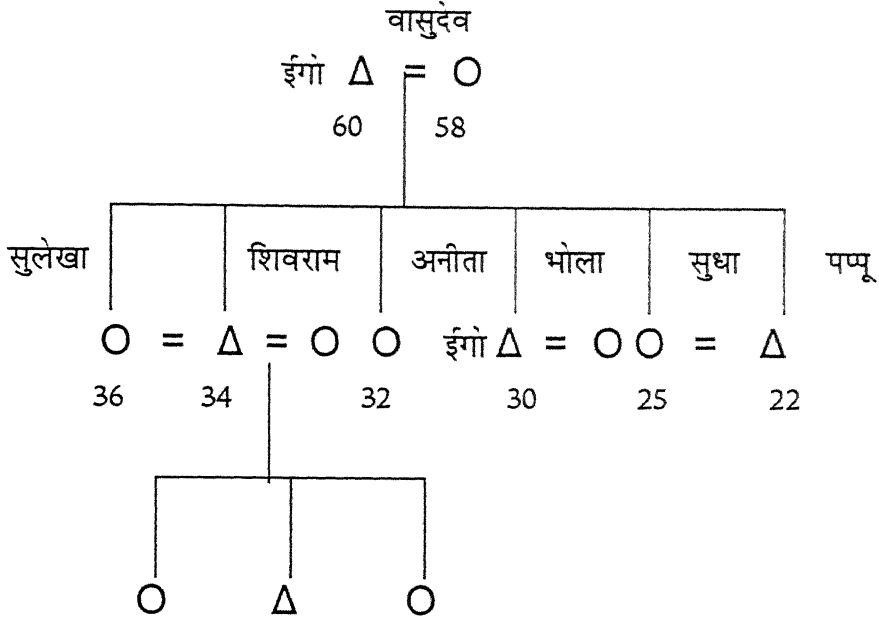
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया भोला है।

(2) ईगो का बड़ा भाई (शिवराम) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहा है।

(3) ईगो की बहने (सुलेखा, अनीता, सूधा) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(2)
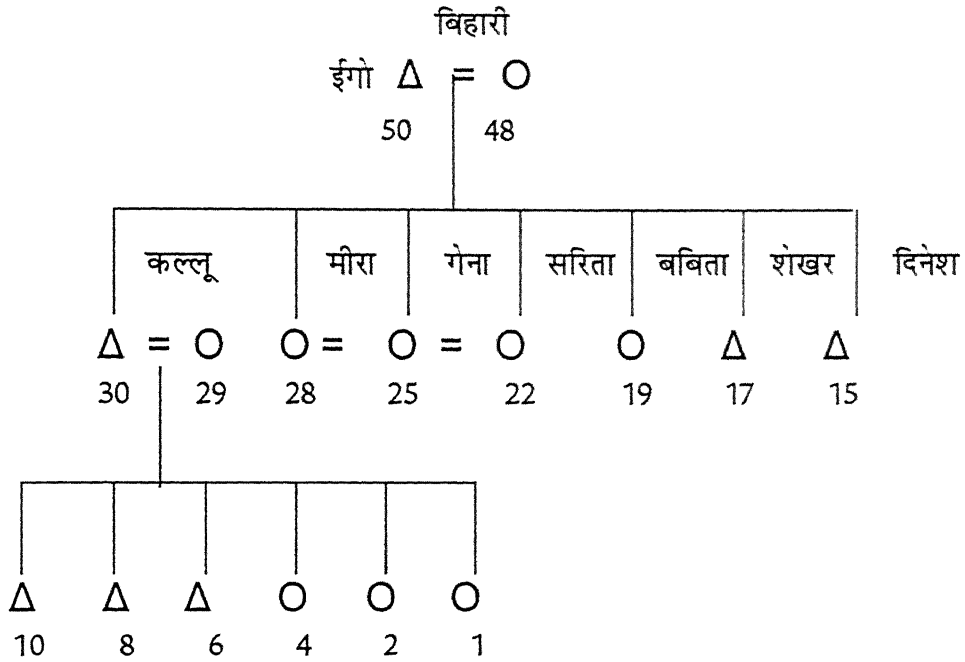
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया बिहारी है।

(2) ईगो का बड़ा लड़का (कल्लू) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहा है।

(3) ईगो की लड़कियां (मीरा, गेना, सरिता, बबिता) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(3)
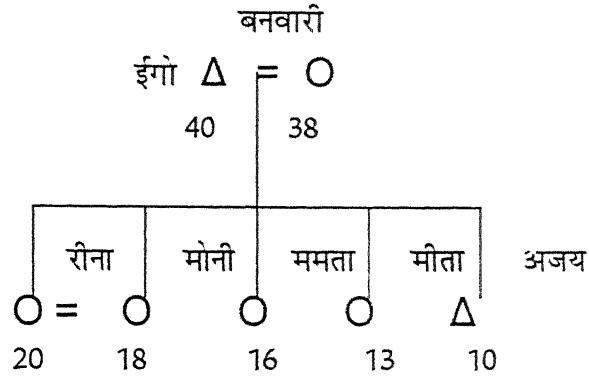
टिप्पणी -

(1) परिवार का मुखिया बनवारी है।

(2) ईगो की बडी लड़की (रीना) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

(4)
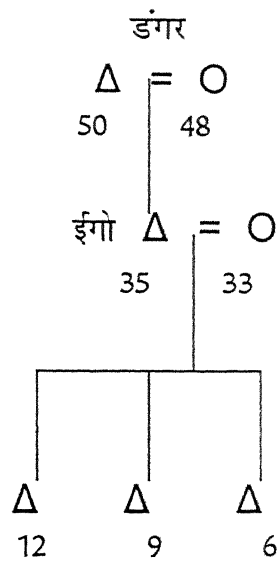
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया सहदेव है।

(5)
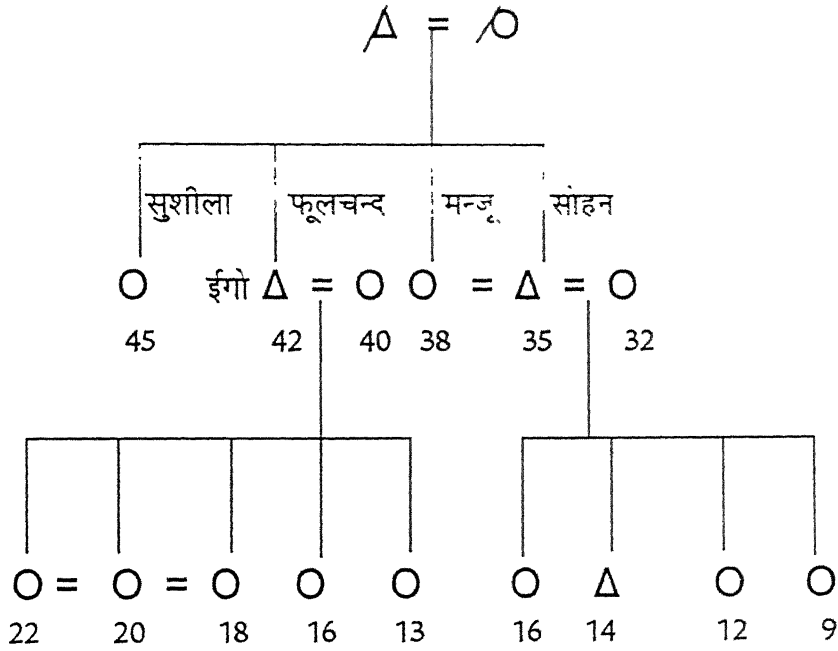
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया फूलचन्द है।

(2) ईगो का भाई (सोहन) अपनी पत्नी बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहा है।

(3) ईगो की बहने (सुशीला, मन्जू) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

वहेलिया समुदाय की वंशावली
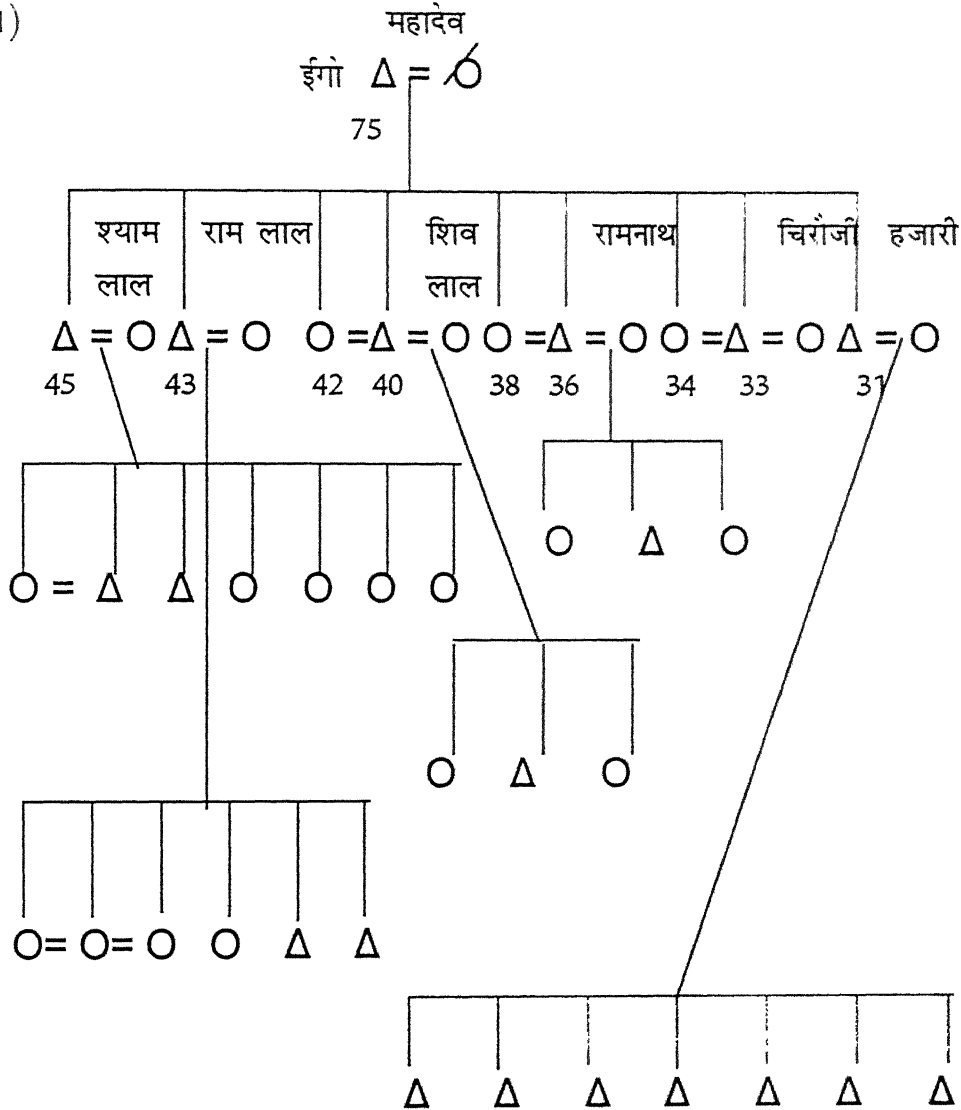
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया महादेव है।

(2) ईगो के लड़के (श्यामलाल, रामलाल, शिवलाल, रामनाथ और चिरोजी) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहे हैं।

(3) ईगो की लड़कियां विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(4) श्यामलाल की बड़ी लड़की विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही है।

(5) रामलाल की पहली तथा दूसरी लड़की विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(2)
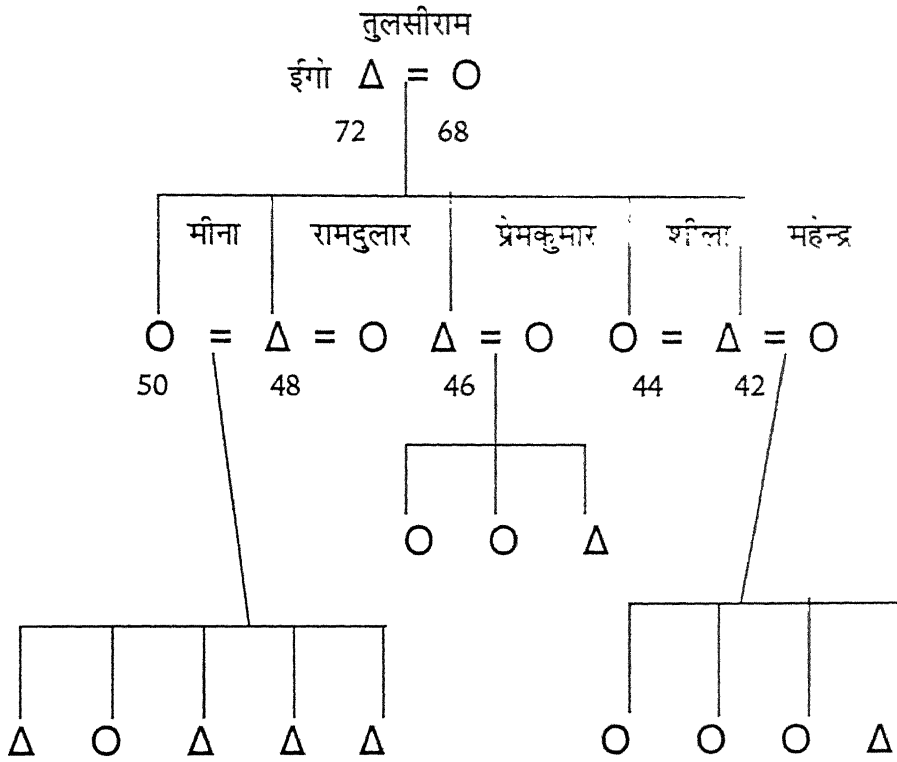
टिप्पणी –

(1) परिवार का मुखिया तुलसीराम है।

(2) ईगो का पहला लड़का (रामदुलार) और दूसरा लड़का (प्रेम कुमार) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ईगो के परिवार से अलग रह रहे हैं।

(3) ईगो की लड़कियां (मीना, शीला) विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

विन्द समुदाय की वंशावली

(1)
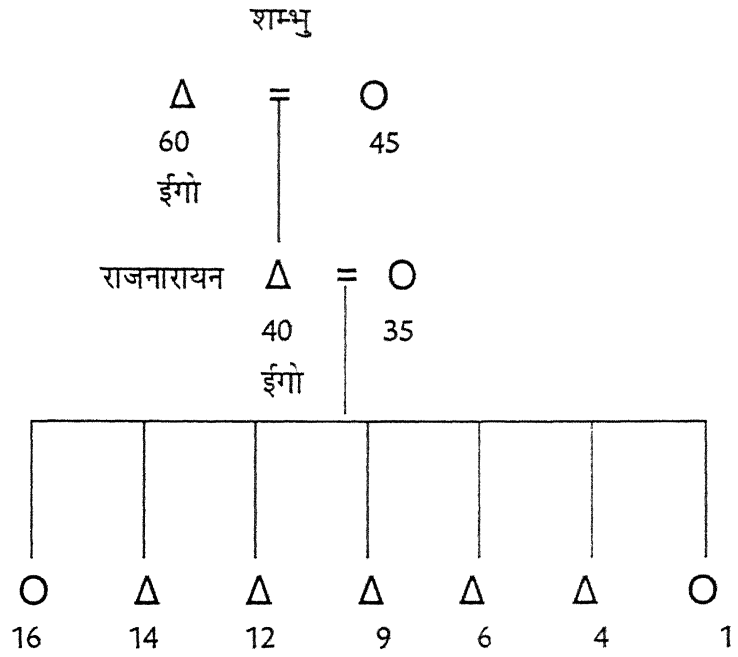
टिप्पणी–

(1) परिवार का मुखिया शम्भू है।

(2)
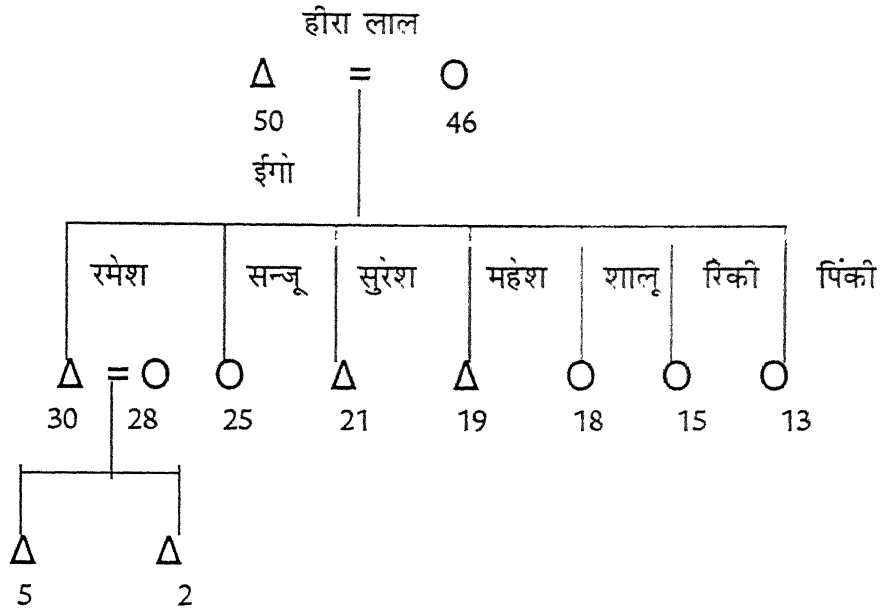
टिप्पणी-

(1) परिवार का मुखिया हरी लाल है।

(2) ईगो का वड़ा लड़का (रमेश) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

(3) ईगो की लड़की सन्जू और शालू विवाह के बाद अपनी ससुराल में रह रही हैं।

(3)
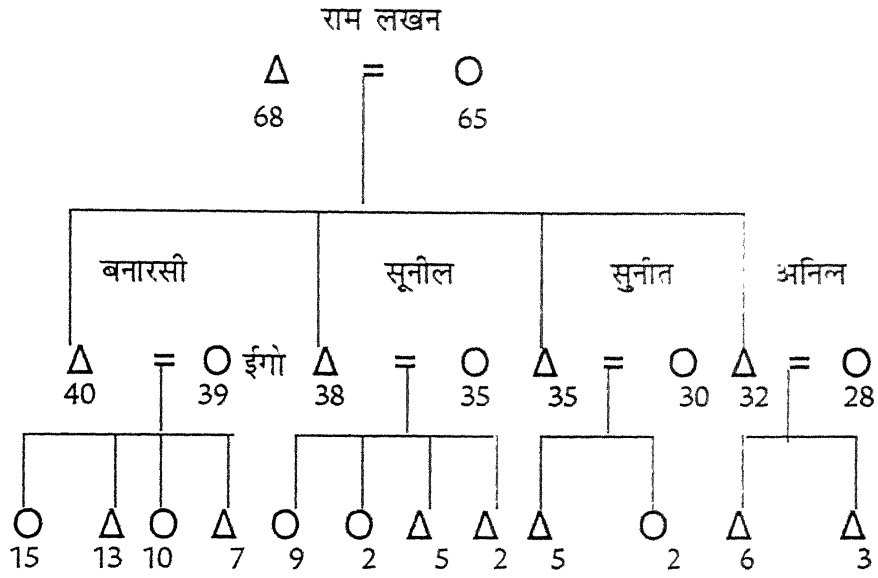
टिप्पणीः

1- परिवार का मुखिया सुनील है।

2- ईगो का बड़ा भाई (बनारसी) अपनी पत्नी और बच्चों के साथ अलग रह रहा है।

अध्याय 4

पृष्ठ 168 - 190

अध्याय 4

झूँसी के प्रमुख तीर्थ स्थलों का संजाति इतिहास

झूँसी के प्रमुख तीथ-स्थल निम्न हैं: (1) हंसतीर्थ (हंसकुटी) (2) हंसकूप (3) गंगोली शिवालय (4) लाला किशोरीलाला का धर्मशाला (5) शंखमाधव (शंखतीर्थ) (6) नागेश्वर मंदिर (7) समुद्रकूप (8) प्राचीन श्री हनुमान गुफा (9) ऐलेश्वर मंदिर (10) संध्यावट (11) शेख तकी की मजार।

इस अध्याय में वर्णित तथ्यों को मानवशास्त्री दृष्टिकोण से निम्न ढंग से विश्लेषित किया जा सकता है।

धार्मिक, ऐतिहासिक परम्पराओं की अध्ययन प्रणाली की शुरुआत अमेरिकी मानवशास्त्री रॉबर्ट रेडफील्ड ने की थी। इनके अनुसार प्राचीन सभ्यता का अध्ययन 'दीर्घ परम्परा' और 'लघु परम्परा' के माध्यम से किया जाना चाहिए।

<u>लघु परम्परा एवं दीर्घ परम्परा</u>

दीर्घ परम्परा और लघु परम्परा में प्रमुख अन्तर यह है कि बृहत (दीर्घ) परम्परा थोड़े से चिन्तनशील लोगों की होती है जबकि लघु परम्परा अचिन्तनशील लोगों की होती है। लघु परम्परा लोक संस्कृति तथा गैर शिक्षितों की संस्कृति है जबकि दीर्घ परम्परा विद्यालयों और मन्दिरों में संस्कार-मूलित की जाती है। लघु परम्परा अशिक्षितों के सामुदायिक जीवन में विकसित और जीवित रहती है। दार्शनिक, धार्मिक तथा साहित्यिक मनुष्य की परम्परा एक ऐसी परम्परा होती है जो विचार पूर्वक संस्कार बद्ध की जाती है तथा सन्ततियों को प्रदान की जाती है। लघु-परम्परा अधिकांश में सहज सिद्ध मानकर स्वीकार की जाती है और उसका विशेष परिस्कार नहीं किया जाता हैं

उल्लिखित दो परम्पराएं परस्पराभिन्न हैं। बृहद् (दीर्घ) तथा लघु परम्परा सदियों से और अभी तक महान महाकाव्य अनेक लोगों द्वारा कथा कहने की परम्परा में उत्पन्न हुए, और ये महाकाव्य पुनः लोगों के पास समुदायों, स्थानीय संस्कृति में रुपान्तर तथा एकीकरण के लिए लौट आयें होंगे।

ओल्ड टेस्टामेंट की नैतिक धारणाएं जातियों से उत्पन्न हुई और दार्शनिकों तथा धर्म-शास्त्रियों द्वारा आलोचित होकर विभिन्न समुदायों के पास लौट गई। कुशन की जो विषयवस्तु है वह इसलिए ऐसी है क्योंकि उसका उद्भव अरब लोगों में हुआ। चीनियों में कन्फ्यूशियस की शिक्षायें केवल उसी के द्वारा आविष्कृत नहीं की गयी थीं।

दीर्घ परम्परा और लघु परम्पराएं विचार तथा कर्म की दो धाराओं के रूप में देखी जा सकती हैं जो कि एक दूसरे से पृथक हैं किन्तु तब भी जो एक दूसरे को मिलती हुई तथा एक दूसरे में निकलती हुई बहती हैं।

प्रत्येक परम्परा के अपने कुछ मार्गदर्शक होते हैं और उस परम्परा को निकट से जाननें वाला हमें यह बता सकता है कि ये मार्गदर्शक कौन हैं और इनके उपदेश सामान्य लोगों तक किस प्रकार पहुँचते हैं। भारत के सम्बन्ध में बी0 राघवन ने बताया है कि वैदिक ऋचायें तथा दार्शनिकों और धार्मिक विचारकों के धार्मिक और नैतिक विधान सामान्यजनों को सम्प्रेषित की जाती थी। हिन्दू संस्कृति कम्बोडिया तथा अल्य राज्यों में भी ले जायी गयी थी और इसके लिये हिन्दू राज्य अपने द्वारा बनवाये गये मन्दिरों में प्राचीन महाकाव्यों को गाने के लिए बड़ी-बड़ी निधियाँ स्थापित करते थे। दक्षिण भारत के सम्बन्ध में राघवन बताते हैं कि वहाँ हिन्दू राजा मन्दिरों में प्राचीन महाकाव्यों, विशेषतः रामायण के पाठ कि लिए धन देते थे। इन कथाओं का केवल पाठ नहीं होता था वरन् चलते-फिरते साधू लोग भक्ति गीतों

द्वारा इनका प्रसार करते थे। इस प्रकार संस्कृति के विद्वान इस महान परम्परा का नीचे की ओर अनुसरण करते हुए आज के भारतीय ग्रामों तक लाते हैं।

इसके विपरीत लघु परम्परा व्यापक अन्तर्धारा के आकार के समान है। इसके बल को बुद्धिजीवी लोग अभी भी अनुभव करते हैं, किन्तु अधिकृत रूप से इसकी निन्दा अथवा निषेध की जायेगी जबकि दीर्घ परम्परा की पूर्व धारणओं को विश्वास की संज्ञा दी जाती है। लघु परम्परा की धारणाओं को अन्धविश्वास का नाम दिया जाता है। वास्तव में किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति इस बात पर निर्भर कर सकती है कि यह इन दोनों में से किस परम्परा के साथ रहने का निर्णय करता है। दीर्घ परम्परा का ज्ञान लघु परम्परा में से ही अद्भुत होता है तथा लघु परम्परा के वाहकों के लिए एक उदाहरण स्वरूप होते हैं। दोनों परम्परायें एक दूसरे के आयाम होती हैं।

लघु परम्परा और दीर्घ परम्परा के आदान-प्रदान को एक उदाहरण (रामायण) से समझा जा सकता है। रामायण का आज के भारतीय ग्राम में व्यापक प्रभाव है। वाल्मीकी नामक एक कवि ने दंतकथाओं के आधार पर महाकाव्य की रचना की थी और उससे यह कथा भारत की उच्च्व परम्परा का अंग बन गयी। नवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक इसका अनुवाद भारत की अनेक जनभावनाओं में हुआ और इन अनुदितों रूपों में इसका सांस्कृतिक संरचना के उन व्यावसायिक वाहनों ने गायन और प्रचार किया जिसके सम्बन्ध में राघवन ने लिखा है, सोलहवीं शताब्दी में तुलसीदास ने इसको हिन्दी भाषा में लिखा जो अनेक ग्राम पर्वों एवं त्यौहारों पर पढ़ी जाने लगी। उच्च्व सांस्कृतिक परम्परा के इस व्याख्याकार ने एक प्रकार के मूल स्रोत ग्रन्थ का निर्माण किया। किन्तु समय बीतने के साथ, ग्रामीणों के लिए तुलसीदास की हिन्दी दुर्बोध हो गयी। उन्होंने अपने स्थानीय प्रचलित शब्द इसमें मिला लिए और अब भारतीय ग्राम में यह मूल ग्रन्थ समझने के लिए व्याख्याकार

की आवश्यकता होती है। लोग रामलीला करते हैं। इस प्रकार गांव में अनुष्ठानिक नैतिक शिक्षा योजना में परम्परा के स्तर श्रृंखलित हैं। इसी प्रकार हम यूरोप के ग्रामीण में बाइबील की कहानियां पढ़ सकते हैं।

संक्षेप में, जब कोई मानवशास्त्री किसी समुदाय का अध्ययन करता है तब सन्दर्भ क्षेत्र समुदाय की स्थानीय संस्कृति और उसके निकटतम संस्कृति का होता है। जब शोधकर्ता समुदाय तथा उसकी संस्कृति का अध्ययन करता है तब संन्दर्भ विस्तृत हो जाता हैं क्योंकि इस समुदाय की संस्कृति स्थानीय परम्परा में "दीर्घ परम्परा" का समावेश हो जाता है। ये दोनों परम्परायें आदान-प्रदान करती रहती हैं।

उपरोक्त बातों को भारतीय सन्दर्भ में कुछ अमेरिकी मानवशास्त्रीयों ने जांच करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश के किशनगढी़ गांव में सम्पादित मैकिम मेरियट का एक शोध कार्य उल्लेखनीय है। जिस गांव का उसने अध्ययन किया वहां धर्म स्थानीय सांस्कृतिक तत्वों, लघु परम्परा तथा सांस्कृतिनिष्ठ (महान परम्परा) के तत्वों के सम्पर्क तथा संगठन से निर्मित है। किशनगढ़ी के उन्नीस में पन्द्रह त्यौहार वे हैं, जिनका विवरण संस्कृत ग्रन्थों में हुआ है। यह दीर्घ परम्परा का परिचायक है। लेंकिन कुछ त्यौहारों के सम्बन्ध में विभिन्न शैली को अपनाते हैं। मेरियट ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि लघु तथा दीर्घ परम्परा के बीच किस प्रकार आदान-प्रदान होता है। इसके लिए उसने निम्न दो अवधारणाओं का जिक्र किया है। "सार्वभौमिक" तथा "प्रादेशिकीकरण"।

ग्रामीण लघु परम्पराएं हिन्दुओं के दीर्घ परमपराओं को प्रभावित करती हैं, क्योंकि इस परम्परा के विशेषज्ञ लघु परम्परा के कुछ तत्वों को ले लेते हैं और उन्हें अपने विचारों में समावेश करके (अपने समर्थकों के लिए) सार्वभौमिकीकरण कर देते हैं। मेरियट के अनुसार निम्न स्थिति सार्वभौमिकीकरण एक उदाहरण है – कीशनगढ़ में एक वार्षिक त्यौहार मनाया जाता है जिसमें पत्नियां अपने भाइयों से मिलने के

लिए मायके जाती हैं और अपने भाइयों के प्रति अपना प्रेम व्यक्त करने के लिए उनके सिर तथा कानों पर अंकुरित जौ रखती हैं और भाई उन्हें कुछ पैसे देते हैं। एक हिन्दु पुराण इसका (ब्राह्मण परम्परा में) एक दूसरे रूप में समावेश कर लेता है। इसके अनुसार उसी दिन गांव का पुजारी अपनी संरक्षक के पास जाकर उसके हाथ में मंत्रयुक्त एक धागा बाँधता है और वह संरक्षक उस ब्राह्मण को कुछ पैसे देता है। यहां स्थानीय अनुष्ठान ने पौराणिक विधान को जन्म दिया न कि पुराण के विधान से स्थानीय अनुष्ठान का उद्भव हुआ। मेरियट प्रथम व्याख्या को अधिक सम्भव मानता है और धर्म के इन दो पक्षों के बीच आदान-प्रदान की स्थानीय परम्परा को सार्वभौमिकीकीरण के उदाहरण के रूप में देखता है।

इसके विपरीत प्रक्रियां, मेरियट के शब्दों में, प्रादेशिकीकरण है जिसमें दीर्घ परम्परा के किसी तत्व को सीखकर उसका ग्रामीणों द्वारा उपासना विधि के रूप में रूपान्तरण कर लिया जाता है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण परम्परा द्वारा एक ऋषि बृहस्पति की इस गांव में एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित कर उसे पूजा जाता है।[1]

लघु एवं बृहत परम्पराओं की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम रेडफील्ड ने किया था। ये धारणाएं उनकी पुस्तक 'पीजेन्ट सोसाइटी एण्ड कल्चर' (1956)[2] में प्रतिपादित की गयी थी।

रेडफील्ड की मान्यता है कि प्रत्येक सभ्यता में परम्पराएं होती हैं। एक छोर पर कुलीनों, अभिजात्य लोगों और चिन्तकों की परम्परा होती है तो दूसरे छोर पर अनपढ़, कृषक समुदायों की। पहले प्रकार की परम्पराएं शहरी केन्द्रों, उनके मन्दिरों, शिक्षण संस्थाओं आदि से निस्सृत होती हैं और बृहत परम्पराएं कहलाती हैं। प्रत्येक समाज में बृहत समुदाय भी होते हैं और लघु समुदाय भी। इन दोनों प्रकार के समुदायों की परम्पराएं, उनके आचरण, व्यवहार, रीति-रिवाज़, कर्मकाण्ड, उत्सव, त्यौहार आदि भी उनकी तरह 'लघु' या 'बृहत' कहे जा सकते हैं।

भारतीय संदर्भ में अगणित देवता, पर्व-त्यौहार, कर्मकाण्ड, साहित्य, नृत्य-संगीत आदि जिनका आदि स्रोत मुख्यता महाभारत, गीता, रामायण, उपनिषद आदि धार्मिक गौरव-ग्रन्थ हैं, बृहत परम्पराओं पर आधारित हैं। लोक-साहित्य, धार्मिक व जादू-टोने के काम, रीति-रिवाज और उनसे सम्बंधित कर्मकाण्ड जिनके सन्दर्भ धार्मिक गौरव-ग्रन्थों में नहीं मिलते और जो मुँह-जबानी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते हैं, लघु परम्पराओं में गिने जाते हैं।

ल्घु व बृहत परम्पराओं का अध्ययन वास्तव में अनपढ़ जनसाधारण के अमानवीयकरण और उन लोगों के गुणगान व महिमागान को प्रोत्साहित करता है जिसकी पहुँच आसानी से शास्त्रीय परम्पराओं व साहित्य में थी।

एल.पी. विद्यार्थी ने सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल गया का अध्ययन किया जिसमें उन्होंने कई विश्लेषणात्मक अवधारणाओं और विवरणात्मक पदों का विकास भी किया है, जैसे धार्मिक भूगोल, धार्मिक कार्यकलाप, और धार्मिक विशेषज्ञ, इन तीन अवधारणाओं के समूह को उन्होंने "सेक्रेड कॉंप्लेक्स" की संज्ञा दी है।

"द सेक्रेड कॉंप्लेक्स ऑंव हिन्दू गया" (1961)[3] नामक अवधी कीर्तिमान पुस्तक में 'सेक्रेड काम्प्लेक्स' के तीनों घटक प्रस्तुत किये है। उनका कहना है कि हिन्दुओं के तीर्थस्थलों का "सेक्रेड कॉंम्पलेक्स" एक सीमा तक बृहत और लघु परम्पराओं के बीच की निरन्तरता, उनके जुटाव और परम्परा समझौते के स्तर को प्रतिबिम्बित करता है। तीर्थस्थलों के धार्मिक विशेषज्ञ पंडे व पुरोहित - एक विशेष प्रकार की जीवन शैली में रहते है, विशेष प्रकार की कथा-वार्ताओं, संस्कार अनुष्ठानों के कार्यकलाप, तीर्थ यात्राओं के संयोजकों और पुरोहितों की भूमिका द्वारा बृहत परम्परा के तत्वों को ग्रामीण आबादी के एक बड़े हिस्से तक सम्प्रेषित करते हैं। पंडे पुरोहित वर्ण के लोग, हिन्दु सभ्यता के व्यापक संसार में हुए सामान्य विकास के फलस्वरुप सुधार और रूप परिवर्तन के दौर से गुजर चुके हैं।

धार्मिक भूगोल, धार्मिक कार्यकलाप और धार्मिक विशेपज्ञ का वर्गीकरण हिन्दुओं के सभी तीर्थस्थानों पर लागू होता है। विद्यार्थी (1961) और कोहन एवं मैरिअट (1959)[4] ने तीर्थस्थलों और तीर्थयात्रा से सम्बंधित संगठित व्यवस्था को भारतीय सभ्यता में एकता पैदा करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना है।

एल.पी. विद्यार्थी से प्रेरणा पा कर सामाजिक मानवशास्त्रियों का एक ''नौजवान समूह'' शोध के इस नये क्षेत्र की ओर आकर्षित हुआ। सरस्वती ने इस क्षेत्र में एक प्रमुख योगदान दिया है। उनके तीन अध्ययन सामने आये : ''द होली सर्किट आफ नीमसार'' (1965)[5(i)], ''द टेम्पुल आर्गनाइज़ेशन इन गोवा'' (1962)[(ii)] और ''काशी द मिथ एण्ड रियेलिटी ऑव ए क्लासिकल कल्चरल ट्रेडीशन'' (1975)[(iii)]। सरस्वती का विचार है कि पवित्रता अथवा धर्म की अवधारणा अनिवार्य रूप से मोक्ष प्राप्त करने के लिए अध्यात्मिक संसार से सम्वद्ध होने की आदमी की आकाँक्षा पर आधारित है।

इस क्षेत्र में कुछ अन्य योगदान है : माखन झा का ''द सेक्रेड काम्पलैक्स ऑव रतनपुर'' (1978)[6]। महापात्र का ''लिंगराज टैम्पल : इट्स स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज''[7], मोरब और गोस्वामी का ''चामुण्डेश्वरी टेम्पुल'' (1995)[8] और चक्रवर्ती का ''तारकेश्वरी टेम्पुल'' (1974)[9]।

झूँसी के प्रमुख तीर्थ-स्थल निम्न हैं।

1- <u>हंस तीर्थ (हंसकुटी)</u>

स्थापना वर्ष -- 16 वीं शताब्दी

संस्थापक -- आत्माराम हंस (लगम्य गांव, बिहार)

स्थिति- हंस तीर्थ गंगा के पूर्वी तट पर शास्त्री पुल से करीब 200 मी0 की दूरी पर उत्तर की ओर नई झूँसी में स्थिति है।

हंस तीर्थ मंदिर का निर्माण मानव के शरीर के आधार पर किया गया है। मानव शरीर के अन्दर देवताओं का भी तीर्थ स्थान दिखाया गया है और इसी के माध्यम से साधू लोग क्रिया योग करते हैं जिसको कुण्डलनी (जागृति) कहते हैं। शरीर के अन्दर छः षडचक्र हैं जिनका नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहदचक्र, विष्णु-आज्ञा आदि तथा तीन नाड़ियां भी शरीर के अन्दर विद्यमान हैं जिनका नाम इंगला, पिंगला तथा सुषुम्ना है।

इस मंदिर के अन्दर मानव शरीर के ढाँचे को तीन भागों में दिखाया गया है - शून्य सिरपर (ब्रह्मण्ड), शून्य महल (मस्तक) तथा अष्टदल (गला)।

गले में सालीगरामजी का निवास स्थान है। इन्हीं के आज्ञानुसार हर मनुष्य अच्छा या बुरा कर्म करता है।

इसके बाद आगे बारहदरी बना हुआ है जो कि उभट्ठरपीट या पीठ के नाम से जाना जाता है। पीठ के दाहिने तरफ राम-जानकी की मूर्ति स्थापित है, बायें तरफ राधा-कृष्ण मंदिर स्थापित है। आगे चलकर थोड़ी दूर पर भ्रमणगुफा है, जिसको हिन्दी में पेठ के नाम से जाना जाता है। उसी के ठीक सामने ब्रह्माजी का कुण्ड बना हुआ है जिसके पेट में नाभि के स्थान पर इनका निवास है। इन्हीं के दाहिने तरफ लक्ष्मी नारायण का मंदिर है तथा बायें तरफ शंकर-पार्वती स्थापित हैं। ब्रह्माजी के पांच पुत्र भी दिखाये गये हैं। नारद जी के ठीक पीछे मेरूदण्ड के नाम से एक खम्भा बना हुआ है जिसमें साढ़े तीन फीट की एक सरपर्णी स्थापित है। इस सरपर्णी में आज भी अमृत प्रविष्ट है। इसी के द्वारा महात्मा लोग क्रियायोग या कुण्डलनी (जागृति) करते हैं। यह सरपर्णी मानव के मस्तिष्क में विष को चूसती है और अमृत को टपकाती है तब लोगों को ज्ञान पैदा होता है। इसी खम्भे के सामने एक कमरा बना हुआ है जिसको त्रिकुटी कहते हैं। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना तीनों

नाड़ियां मिलकर मस्तिष्क और नाक के बीचों बीच छोटे आकार के रूप में दिखाई देती है।

त्रिकुटी के ठीक दाहिने तरफ शंकर जी का मंदिर बना हुआ है। इनका चबूतरा नेत्र के समान है। बायें तरफ भी नेत्र के समान है। इनका निवास स्थान नेत्र है। शरीर के अन्दर चार कोठरियां दिखाई गयी हैं जिन्हें मन, बुद्धि, चितृ, अहंकार का नाम दिया गया है।

मंदिर के मुख्य द्वार के सामने गंगा द्वार के नाम से तथा बायें तरफ पूर्व की ओर जमुना द्वार दर्शाया गया है जो कि जिसकी उपमा कान से की गयी है और मंदिर के अन्दर छोटी-छोटी सड़कें बनी हुई हैं जिन्हें शरीर की नाड़ी कहा गया है। मंदिर के ऊपर छोटे-छोटे पान के पत्ते के आकार में कलशियां लगी हुई हैं जिन्हें शरीर के रोयें के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

पैर के बायें अंगूठे पर भैरवजी का निवास स्थान दिखया गया है। पैर के घुटने पर एक सुषुम्ना नाम का कुआँ दिखाया गया है जिसके अगल-बगल आठ-नौ सीढ़ियां बनाई गयी हैं। इन्हीं आठ-नौ सीढ़ियों को साधने के समय मानव ब्रह्मण्ड में स्वांस को खींचता है। अगर शरीर में ताकत एवं ब्रह्मचर्य का रूप है तो ब्रह्मण्ड से नीचे स्वांस को शरीर के अन्दर पुनः प्रवेश करा पायेगा अन्यथा अंतिम संस्कार अथवा मौत का द्वार दिखाई देता है जो कि सुषुम्ना के नाम से प्रसिद्ध है।

मंदिर की पूरी आकृति पान के पत्ते जैसी बनायी गयी है।

मंदिर के पूर्व की ओर "संध्यावट" नाम का एक विशाल बरगद का पेड़ खड़ा है जिसके नीचे लोग साधना करते हैं। इस संध्यावट के नीचे साधना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस वृक्ष की लोग आज भी पूजा करते हैं।

2- हंसकूप

हंसतीर्थ से लगा हुआ थोड़ी दूर पर पूर्व की ओर हंसकूप स्थित है जिसका निर्माण ब्रह्माजी के द्वारा बतलाया गया है। इसका पानी पीने से, स्नान करने तथा दर्शन करने से मानव के सारे पाप कट जाते हैं तथा हंसगति को प्राप्त करते हैं। अर्थात मोक्ष प्राप्त करते हैं।

3- <u>गंगोली शिवालय</u>

साक्षात्कार दाता- लक्ष्मी नारायण पंडित

आयु- 84 वर्ष

निवासी- नई झूँसी

शिक्षा- 5वीं

व्यवसाय- पुजारी

<u>स्थिति-</u> गंगोली शिवालय नई झूँसी में गंगाजी के पूर्वी तट पर रेलवे पुल से उत्तर की ओर करीब 200 मी0 की दूरी पर स्थित है।

संस्थापक- श्री गंगेश्वर प्रसाद तिवारी

स्थापना- 16 वीं शताब्दी

गंगोली शिवालय का निर्माण पत्थरों से हुआ है। उन पत्थरों पर वैदिक कालीन सभी देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दरता के साथ उकेरी या चित्रित की गयी हैं।

इस मंदिर के मुख्य गर्भ में शिवलिंग की मूर्ति को स्थापित किया गया है। गर्भ के चारों ओर विष्णु, सूर्यदेवता, हनुमानजी, पार्वती, गणेशजी, बुद्धदेवता आदि देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं।

मंदिर के मुख्य द्वार पर नन्दी की मूर्ति स्थापित है तथा बाहरी दीवारों पर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, मारकण्डेय ऋषि, काली माँ, नरसिंह भगवान आदि देवी-देवताओं की मूर्तियां बनायी गयी हैं।

इस मंदिर पर महाशिवरात्रि पर्व पर बहुत बड़ा मेला लगता है तथा रुद्राभिषेक और रात्रि जागरण होता है।

इस मंदिर में नाल, अखाड़ा, व्यायामशाला आदि की व्यवस्था थी, जहाँ पर पहलवान लोग प्रतिदिन कुश्ती लड़ते थे तथा व्यायाम करते और नालों को भांजते थे।

विदेशी लोग तो भारतीय संस्कृति से बहुत प्रभावित होते हैं और इसकी सराहना भी करते हैं। इस मंदिर से भी विदेशी लोग अछूते नहीं रहे। प्रतिवर्ष प्रयाग के माघ मेले में करीब 100-200 की संख्या में यहाँ आते हैं, और इस मंदिर को देखकर मग्नमुग्ध हो जाते हैं और इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं तथा पूजा-पाठ और दान-दक्षिणा भी करते है।

4- <u>लाला किशोरी लाल का धर्मशाला</u>

यह धर्मशाला नई झूँसी में पुरानी जी.टी. रोड के दक्षिण में स्थित हैं। इसका निर्माण लाल किशोरी लाल ने 1905-1908 में करवाया था। यह धर्मशाला लगभग छः बीघे के घेरे में बना है। मुख्य द्वार दो मंजिला है जिसमें तीर्थ-यात्री ठहरते हैं। मुख्य द्वार से अन्दर की ओर लगभग 50-60 मीटर की दूरी पर श्री राधा-कृष्ण के भव्य मंदिर का निर्माण हुआ है।

लाला किशोरी लाला इस धर्मशाला में प्रतिदिन 1000 से अधिक व्यक्तियों को भोजन कराते थे तथा दक्षिणा के रूप में कुछ द्रव्य भी दिया करते थे। इस धर्मशाला में किसी जाति का रोक टोक नहीं था। सभी धर्मों तथा जाति के लोग इस

धर्मशाला में भोजन ग्रहण करने आते थे जिसका गुण-गान क्षेत्रीय लोग आज भी करते हैं।

5- <u>शंख माधव (शंख तीर्थ)</u>

शंख माधव तीर्थ-स्थल का उल्लेख पुराणों में हुआ है। विभिन्न समुदाय के लोग इसकी स्थापना 1000 वर्ष पूर्व बतलाते हैं। प्रयाग तीर्थयात्रियों की बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूरी होती है। आठवें दिन झूँसी (छतनाग) में नाग तीर्थ एवं शंखमाधव के दर्शन का उल्लेख पुराणों में मिलता है।

स्थितिः- शंखमाधव या शंख तीर्थ झूँसी के पूर्व-दक्षिण (छतनाग गांव में बिडला तथा सदाफल आश्रम के दक्षिण) गंगा के तट पर स्थित है। चकहरिहर जी.टी. रोड के दक्षिण तीन कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

इस मंदिर में शंख-माधव, विष्णु, लक्ष्मी, कृष्ण, गणेश, शंकरजी, नन्दी, हनुमानजी, काली माता आदि देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। मंदिर के बगल (पूर्व-दक्षिण) एक वट-वृक्ष है जो 800-900 वर्ष पुराना है।

परम्परानुसार आठ गांव के लोग शंखमाधवका दर्शन करने प्रतिदिन आते हैं। इनका दर्शन करने से शंखमाधव (भगवान) सभी कष्टों से मुक्त कर देते हैं तथा लोगों की सभी मनोकामना पूर्ण हो जाती हैं।

माघ माह में भारतीय तथा विदेशी लोग प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में शंखमाधव का दर्शन करने आते हैं तथा दान-दक्षिणा भी करते हैं।

6- <u>नागेश्वर मंदिर (नागतीर्थ)</u>

स्थिति- नाग तीर्थ का भी उल्लेख पुराणों में हुआ है। नागेश्वर मंदिर (नागतीर्थ) झूँसी के दक्षिण-पूर्व (गंगा के तट पर छतनाग) गांव में स्थित है। चकहरिहर,जी.टी. रोड के दक्षिण चार कि.मी. की दूरा पर स्थित है।

किसी समय सभी देवता ऋषि-मुनि क्षीर-सागर विष्णु के पास पधारे। विष्णु जी से कहा यहां कथा हो। व्यास जी, सुखदेवजी, सूतजी आदि ऋषियों-मुनियों ने कहा कि प्रयाग का माहात्मय सुनाया जाय। विष्णु जी ने कहा आप सभी प्रयाग ही चलें वहीं कथा होगी तथा प्रयाग का माहात्मय सुनाया जायेगा। सभी देवता ऋषि-मुनि प्रयाग (गंगा-यमुना-सरस्वती के तट पर) आये। कथा आरम्भ हुई। प्रयाग के सभी देवताओं के स्थान तथा उनके माहात्मय के बारे में बताने लगे। व्यास जी, सुखदेव जी, सूतजी आदि ऋषि-मुनि, देवताओं ने दशाश्वमेध-घाट (दारागंज) भरद्वाज आश्रम, अक्षयबट, सोमेश्वरनरथ (अरैल), शुलटकेश्वर (अरैल) मनकेश्वर (सरस्वती घाट) आदि के माहात्मय को बताया। कथा की समाप्ति के बाद जब सभी अपने अपने स्थान को जाने लगे तो नागदेवता जो पाताल से आये थे उन्होंने विचार बनाया कि हम प्रयाग में आये हैं तो कुछ कर के चलें जिससे प्रयाग में हमारा भी माहात्मय रहे। तब नाग देव प्रयाग के पूर्व झूँसी के दक्षिण-पूर्व गंगा के तट पर छतनाग में स्थापित हुए जिसे नागेश्वर मंदिर या नाग-तीर्थ कहते हैं। इन्हीं के नाम पर एक गांव छतनाग बसा जिसे पहले सतनाग या छत्रनाग कहते थे।

नागेश्वर मंदिर के गर्भ में शिवलिंग की मूर्ति, पीतल के सर्प, नन्दी आदि देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। यहां के लोग इस मंदिर में बहुत आस्था और विश्वास रखते हैं। इनका विश्वास है कि सूखा पड़ने पर शिवलिंग के गर्भ को गांव के निवासी गंगा जल से भरते हैं जब तक कि शिवलिंग की मूर्ति डूब न जाये। ऐसा करने से बरसात अवश्य होती है चाहे बूंदा-बांदी ही क्यों न हो।

इस मंदिर के सामने झूठ बोलने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। झूठ बोलने वाला व्यक्ति जब इस के सामने आता है तो उस के हाथ पैर कांपने लगते हैं तब वह झूठ नहीं बोलता। जैसे कोई व्यक्ति किसी की वस्तु चुरा लिया है और वह बता नहीं रहा है तो इस मंदिर में लाने पर वह सारी सच्चाई बता देता है।

नागेश्वर मंदिर (नागतीर्थ) का दर्शन करने बजहां, सुमेरपुर, छिबैयॉ, अन्दॉवा, औस्तापुर, नीबीं, खोभार, महीन, चक, झूँसी, चमनगंज आदि गाँवों के लोग प्रतिदिन नागेश्वर मंदिर में गंगा स्नान करने, गंगा जल चढ़ाते हैं जिससे उनकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। नागपंचमी और महाशिवरात्रि के दिन यहां बहुत वड़ा मेला लगता है जिसमें विभिन्न क्षेत्रों से हजारों की संख्या में शंकर जी के दर्शन करने आते हैं। माघ मेले में भारतीय तथा विदेशी भी सैंकड़ों की संख्या में नागतीर्थ का दर्शन करने आते हैं।

7- समुद्रकूप

प्रयाग के पूर्व झूँसी में गंगा के तट पर उल्टा किला स्थित है जिसे हवेलिया का टीला कहते हैं। टीले के पूर्वी कोने पर एक पक्का कुंआ स्थित है जिसे समुद्रकूप कहते हैं। लोगों की ऐसी धारणा है कि इस का निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया था। मत्स्य पुराण में भी इसका उल्लेख किया गया है। इसमें प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) को समुद्रकूप कहा गया है।

> ''पूर्व पार्श्व गंगायारिका धुलों केषु भारत ।
> कूप-चैव समुद्रं प्रतिष्ठान च विश्रुतम् ।।''

समुद्रकूप सागर अथवा सप्तसागर का प्रतिनिधि माना जाता है। पुराणों में भी विविध दोनों क प्रसंग में ''सप्तसागर महादान'' का उल्लेख मिलता है। यह दान समुद्रकूप के समीप दिया जाता है। पद्म-पुराण के अनुसार समुद्रकूप के दर्शन एवं जलपान से मनुष्य पाप-रहित हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण पर इसकी परिक्रमा करने से पृथवी की प्ररिक्रमा करने का लाभ होता है।

वर्तमान समय में यहां के स्थानीय निवासियों की भी यही धारणा है कि- जो समुद्रकूप का दर्शन एवं जल पीता है वह मोक्ष प्राप्त करता है तथा सूर्यग्रहण,

चन्द्रग्रहण, अमावस्या, पूर्णिमा को इसके चारों ओर सात बार परिक्रमा करता है वह पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

पहले यह कूप बंद था। लोगों की यह धारणा थी कि इस कुएं का सम्बंध समुद्र से है तथा इसे खोलने से समुद्र उमड़ आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। लगभग सौ वर्ष हुए अयोध्या के एक वैरागी साधु सुदर्शन दास ने इस कुएं को खुदवाया, साफ करवाया और यहां एक आश्रम भी बनवाया।

स्थानीय लोगों को यह विश्वास है कि समुद्रकूप के जल के नीचे लोहे का एक तावां लगा है, जब प्रलय होगा तब यह तावां खुलेगा जिससे सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी क्योंकि इसका सम्बंध समुद्र से है।

चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, पूर्णिमा तथा अमावस्या के दिन सैंकड़ों की संख्या में लोग समुद्रकूप का दर्शन, परिक्रमा एवं् जलपान करने आते हैं।

माघ मेले में समुद्रकूप का दर्शन एवं् जलपान करने भारतीय तथा विदेशी भी सैंकड़ों की संख्या में आते हैं।

8- प्राचीन श्री हनुमान गुफा

समुद्रकूप के उत्तर टीले पर कोठबाबा दयाराम आश्रम स्थित है। इसी आश्रम के अन्दर प्राचीन श्री हनुमान गुफा है। गुफा में जाने के लिय मुख्य द्वार से सीढ़ियां बनी हैं। गुफाके अन्दर हनुमान जी की एक बड़ी पत्थर की मूर्ति पश्चिम की ओर मुंह करके खड़ी की गयी है। पश्चिम की ओर से भी गुफा में आने के लिये गंगा के तट से सीढ़ियां बनी हैं। गुफा की लम्बाई पूर्व-पश्चिम 100 मीटर तथा ऊँचाई लगभग 6 फीट है।

प्राचीन श्री हनुमान गुफा का निर्माण 200 वर्ष पूर्व बाबा दयाराम ने करवाया था। स्थानीय निवासी प्रतिदिन हनुमान गुफा का दर्शन करने आते हैं। माघ मेले के समय में विभिन्न जिलों, प्रान्तों एवं देशों के लोग सैंकड़ों की संख्या में हनुमान गुफा का दर्शन करने आते हैं।

9- ऐलेश्वर मंदिर (ऐल-तीर्थ)

ऐलेश्वर मंदिर (ऐल-तीर्थ) प्रयाग के पूर्व पुरानी झूँसी में गंगा के तट पर शास्त्री पुल के दक्षिण लगभग 400 मीटर की दूरी पर स्थित है। लोगों की ऐसी धारणा है कि इस मंदिर का निर्माण ऐल राजा ने करवाया था।

तीर्थ-सेवन का माहात्मय तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक उस स्थल के सभी देवताओं का दर्शन न कर लिया जाये। प्रयाग परिक्रमा को दो भागों में रखा गया है - अन्तर्वेद परिक्रमा और बहिर्वेदी परिक्रमा। बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूर्ण होती है। नवें दिन झूँसी में स्थित समुद्र-कूप, ऐल-तीर्थ, संध्यावट, हंसकूप तीर्थ का दर्शन किये बिना प्रयाग तीर्थ यात्रा पूर्ण नहीं होती है।

ऐलेश्वर मंदिर के गर्भ में शिवलिंग, नन्दी, हनुमान आदि देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जो व्यक्ति सच्चे दिल से इनका दर्शन तथा पूजा पाठ करता है उसकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं तथा सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है। माघ मेले के समय प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में लोग इनका दर्शन करने आते हैं।

10- संध्यावट

संध्यावट नयी झूँसी गंगा के तट पर शास्त्री पुल से उत्तर की ओर 200 मीटर की दूरी पर हंस-तीर्थ के अन्दर पश्चिम की ओर स्थित है। इसे वट वृक्ष या

संध्यावृक्ष भी कहते हैं। इसका पुराणों में भी उल्लेख मिलता है। पहले यह एक विशाल वृक्ष के रूप में था। कुछ लोगों ने इसको कटवा दिया था परन्तु वह अब भी छोटे रूप में विद्यमान है। इस संध्यावट के नीचे जो योग क्रिया या साधना करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। तीर्थ सेवन पूर्ण तभी होता है जब बहिर्वेदी परिक्रमा के नवें दिन इनका दर्शन करते हैं। वर्तमान में यहां लोग योग-क्रिया और साधना करते हैं। माघ मेले के समय सैंकड़ों की संख्या में लोग संध्यावट का दर्शन करने आते हैं।

11- हजरत सैय्यद ना मखदुम कुतुब शेख सदउल हक शाह तकीउद्दीन की दरगाह (शेख तकी की मजार)

शेख तकी की मजार पुरानी झूँसी में किले के दक्षिण गंगा के पूर्वी तट पर स्थित है। लोगों की यह धारणा है कि इस दरगाह की स्थापना 600-700 वर्ष पूर्व हुई थी। मुसलमानों की यह धारणा है कि प्रतिष्ठानपुर किले को शेख तकी बाबा ने ही उलटा था। बाबा के मजार (कब्र) के पूर्व उनके बड़े लड़के तथा तीन पौत्रों की कब्र है और पश्चिम में बाबा के छोटे लड़के तथा उनकी पत्नी की मजार (कब्र) है। बाबा की कब्र के पूर्व दक्षिण के कोने पर उनके शिष्य व खलीफा कोट बादशाह बाबा की कब्र है।

इन सभी कब्रों के पश्चिम शेख तकी के बाबा के गुरू (मौलाना सैय्यद अब्दुल कुद्दूश रहमेतुल्ला रूले) की कब्र (मजार) है तथा दक्षिण-पश्चिम कोने पर शेख तकी बाबा के शिष्यों की कब्रें हैं।

मुहर्रम के बाद के महीने, सफर महीने के आखिरी बुद्धवार को यहां मेला लगता है तथा बकरीद के चाँद पर 1 से 6 तारीख तक बाबा शेखतकी का उर्स होता है जिसमें लाखों की संख्या में हिन्दू, मुसलमान आते हैं।

शेख तकी बाबा के मजार के ठीक पीछे गंगा के तट पर एक बहुत पुराना वृक्ष है जिसे लोग ''विलायती इमली'' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति के विषय में लोगों की यह धारण है कि शेख तकी बाबा ने दातुन को गाड़ दिया था, जिससे इस वृक्ष की उत्पत्ति हुई। बाबा ने कहा जब तक दुनिया रहेगी तब तक तू भी रहेगा।

लोगों को ऐसा विश्वास है जो इस पेड़ की पूजा करते है, उसकी मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं। पूजा के समय धागों से इस वृक्ष को सात फेरों से बाधते हैं। जब इनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है तो 40 या 22 मीटर कपड़े से वृक्ष को लपेटते हैं।

सारांश

वर्तमान अध्याय के अन्तर्गत झूँसी क्षेत्र के विभिन्न तीर्थ-स्थलों का संक्षिप्तिकरण पस्तुत किया जा रहा है।

हंसतीर्थ की स्थापना 16वीं शताब्दी में आत्माराम हंस ने करवायी थी। यह तीर्थ-स्थल गंगा के पूर्वी तट पर शास्त्री पुल से करीब 200 मीटर की दूरी पर उत्तर की ओर झूँसी में स्थित है। हंसतीर्थ मंदिर का निर्माण मानव के शरीर के आधार पर किया गया है तथा शरीर के ढांचे को तीन भागों में दिखाया गया है - शून्य सिर पर (ब्रह्माण्ड), शून्य महल (मस्तक) मथा अष्टदल (गला)। गले में सालिगराम जी का निवास स्थान है। इन्हीं के आज्ञानुसार हर मनुष्य अच्छा या बुरा कर्म करता है।

इस मंदिर में राम-जानकी, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, शंकर-पार्वती आदि देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। मेरुदण्ड के नाम से एक खम्भा बना हुआ है जिसमें साढ़े तीन फीट की एक सरपर्णी स्थापित है। यह सरपर्णी मानव के मस्तिष्क में विष

को चूसती है और अमृत को टपकाती है। तब लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है। मंदिर की पूरी आकृति पान के पत्ते जैसी बनायी गयी है।

मंदिर के पूर्व की ओर ''संध्यावट'' नाम का एक विशाल रूप में बरगद का पेड़ है जिसके नीचे लोग साधना करते हैं। इस 'संध्यावट' के नीचे साधना करने से मोक्ष प्राप्त होता है। इस वृक्ष के नीचे लोग आज भी साधना करते हैं।

हंसतीर्थ से थोड़ी दूर पूर्व की ओर हंसकूप स्थित है जिसका निर्माण ब्रह्माजी के द्वारा बतलाया गया है। इसका उल्लेख पुराणों में भी किया गया है। इसका पानी पीने, स्नान करने तथा दर्शन करने से मानव के सारे पाप कट जाते हैं तथा हंसगति को प्राप्त करते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।

गंगोली शिवाला की स्थापना 16वीं शताब्दी में श्री गंगेश्वर प्रसाद तिवारी ने करवायी थी। यह झूँसी में गंगा के पूर्व रेलवे पुल से उत्तर की ओर करीब 200 मी0 की दूरी पर स्थित है। गंगोली शिवालय का निर्माण पत्थरों से हुआ है। उन पत्थरों पर वैदिक कालीन सभी देवी देवताओं की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दरता के साथ उकेरी या चित्रित की गयी हैं। इस मंदिर के मुख्य गर्भ में शिवलिंग की मूर्ति को स्थापित किया गया है। गर्भ के चारों ओर विष्णु, सूर्यदेवता, हनुमान जी, पार्वती, गणेशजी, बुद्धदेवता आदि देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर पर महाशिवरात्रि पर्व पर बहुत बड़ा मेला लगता है तथा रुद्राभिषेक और रात्रि जागरण होता है। प्रतिवर्ष प्रयाग के माघ मेले में करीब 100-200 की संख्या में विदेशी लोग भी दर्शन करने आते हैं और इसकी प्रशंसा करते हैं।

लाला किशोरी लाल का धर्मशाला नई झूँसी में पुरानी जी.टी. रोड में दक्षिण में स्थित है। इसका निर्माण लाला किशोरी लाल ने 1905-1908 में करवाया था। इसके अन्दर राधा-कृष्ण के भव्य मंदिर का निर्माण हुआ है। लाला किशोरी लाल

इस धर्मशाला में प्रतिदिन 1000 से अधिक व्यक्तियों को भोजन कराते थे जिसका गुणगान क्षेत्रीय लोग आज भी करते हैं।

शंखमाधव झूँसी के पूर्व-दक्षिण (छतनाग गाँव में बिडला तथा सदाफल आश्रम के दक्षिण) गंगा के तट पर स्थित है। विभिन्न समुदाय के लोग इसकी स्थापना 1000 वर्ष पूर्व स्थित बतलाते हैं। प्रयाग तीर्थ यात्रा की बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूरी होती है। आठवें दिन शंखमाधव के दर्शन का उल्लेख पुराणों में मिलता है। परम्परानुसार आठ गाँव के लोग शंखमाधव का दर्शन करने प्रतिदिन आते हैं जिससे लोगों को सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है तथा इनकी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। माघ मास में कुम्भ के पर्व पर सैकड़ों की संख्या में विदेशी भी शंखमाधव का दर्शन करने आते हैं।

नागेश्वर मंदिर या नाग तीर्थ का उल्लेख पुराणों में हुआ है। नाग तीर्थ झूँसी के दक्षिण-पूर्व (गंगा के तट पर छतनाग) गाँव में स्थित है। नागतीर्थ के गर्भ में शिवलिंग, नन्दी आदि देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यहाँ के लोग इस मंदिर में बहुत आस्था और विश्वास रखते हैं। इनका विश्वास है कि सूखा पड़ने पर शिवलिंग के गर्भ को गाँव के निवासी गंगा जल से भरते हैं जब तक कि मूर्ति डूब न जाये। ऐसा करने से बरसात अवश्य होती है चाहे बूंदा-बूंदी ही क्यों न हो। इस मंदिर के सामने झूठ बोलने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। दस-बारह गाँवों के लोग प्रतिदिन नाग-तीर्थ का दर्शन करने आते हैं। नागपंचमी और महाशिवरात्रि के दिन यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। यहाँ के मेले में विदेशी भी सैकड़ों की संख्या में दर्शन करने आते हैं।

समुद्रकूप प्रयाग के पूर्व गंगा के तट पर हवेलिया का टीला है, टीले के पूर्वी कोने पर स्थित है। लोगों की ऐसी धारणा है कि इसका निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया

था। मत्स्य पुराण में भी इसका उल्लेख किया गया है। पद्मपुराण के अनुसार समुद्रकूप के दर्शन एवं जलपान से मनुष्य पाप रहित हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण पर इसकी परिक्रमा करने से पृथ्वी की परिक्रमा करने का लाभ प्राप्त होता है। वर्तमान समय में स्थानीय निवासियों की भी यही धारणा है कि समुद्रकूप का दर्शन एवं परिक्रमा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पहले यह कूप बंद था। लोगों की यह धारणा थी कि इस कुएं का सम्बंध समुद्र से है तथा इसे खोलने से समुद्र उमड़ आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। लगभग सौ वर्ष पहले एक साधु ने इसे खुलवाया, साफ करवाया और यहाँ एक आश्रम बनवाया।

स्थानीय लोगों का यह विश्वास है कि समुद्रकूप के जल के नीचे लोहे का एक तावां लगाा है, जब प्रलय होगा तब यह तावां खुलेगा जिससे सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी क्योंकि इसका सम्बंध समुद्र से है।

प्राचीन श्री हनुमान गुफा समुद्रकूप के उत्तर टीले पर कोटबाबा दयाराम आश्रम के अन्दर स्थित है। गुफा में हनुमानजी की एक बड़ी पत्थर की मूर्ति है। गुफा में जाने के लिए गंगा तट से भी सीढ़ियां बनी हैं। इसका निर्माण 200 वर्ष पूर्व बाबा दयाराम ने करवाया था।

ऐलेश्वर मंदिर (ऐल तीर्थ) प्रयाग के पूर्व पुरानी झूँसी में गंगा के तट पर शास्त्री पुल (जी.टी.रोड) के दक्षिण लगभग 400 मीटर की दूरी पर स्थित है। लोगों की ऐसी धारणा है कि इस मंदिर का निर्माण ऐल राजा ने करवाया था। ऐलेश्वर मंदिर के गर्भ में शिवलिंग, नन्दी, हनुमान आदि देवी देवताओं की मूर्तियाँ हैं। लोगों की ऐसी धारण है कि जो व्यक्ति सच्चे दिल से इनका दर्शन तथा पूजा-पाठ करता है उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं तथा सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।

तीर्थ सेवन का माहात्म्य तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक उस स्थल के सभी देवताओं का दर्शन न कर लिया जाय। प्रयाग परिक्रमा को दो भागों में रखा गया है, अन्तर्वेद परिक्रमा और बहिर्वेदी परिक्रमा। बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूर्ण होती है। नवें दिन झूँसी में स्थित समुद्रकूप, ऐल-तीर्थ, संध्यावट, हंसकूप का दर्शन तथा आठवें दिन नागतीर्थ और शंखमाधव का दर्शन किये बिना प्रयाग तीर्थ-यात्रा पूर्ण नहीं होती है।

शेख तकी की मजार पुरानी झूँसी में हवेलिया टीला (किला) के दक्षिण गंगा के पूर्वी तट पर स्थित है। विभिन्न समुदायों के अनुसार इस दरगाह की स्थापना 600-700 वर्ष पूर्व हुई थी। मुसलमानों की यह धारणा है कि प्रतिष्ठानपुर किले (राजधानी) को शेख तकी बाबा ने ही उलटा था।

मुहर्रम के बाद के महीने, सफर महीने के आखिरी बुद्धवार को यहाँ मेला लगता है तथा बकरीद के चाँद पर 1 से 6 तारीख तक बाबा शेख तकी का उर्स होता है जिसमें लाखों की संख्या में हिन्दू, मुसलमान आते हैं।

शेख तकी बाबा के मजार के ठीक पीछे गंगा के तट पर एक पुराना वृक्ष है जिसे लोग ''विलायती इमली'' कहते हैं। शेख तकी बाबा ने दातुन को इसी स्थान पर गाड़ दिया था जिससे इस वृक्ष की उत्पत्ति हुई। बाबा ने कहा जब तक दुनिया रहेगी तब तक तू भी रहेगा।

इस वृक्ष की पूजा करने से जब लोगों की मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं तो 40 या 22 मीटर कपड़े से इस को लपेटते हैं।

<u>अध्याय-4 का अध्ययन स्रोत</u>

1. ए.आर.एन. श्रीवास्तव, भारत में मानवविज्ञान (1995), अध्याय-9, भाग-3, पृष्ठ 206-208.

2. रॉबर्ट रेडफील्ड, पीज़ेन्ट सोसाइटी एण्ड कल्चर (1956).

3. एल.पी. विद्यार्थी, ''द सेक्रेड कॉम्प्लैक्स ऑव हिन्दू गया'' (1961).

4. कोहन एवं मैरिअट (1959).

5. वैद्यनाथ सरस्वती -

   (i) ''द होली सर्किट आफ नीमसार'' (1965).

   (ii) ''द टमपुल आर्गनाइज़ेशन इन गोवा'' (1962).

   (iii) ''काशी द मिथ एण्ड रियेलिटी ऑव ए क्लासिकल कल्चरल ट्रेडीशन'' (1975).

6. माखन झा, ''द सेक्रेड काम्प्लैक्स ऑव रतनपुर'' (1978).

7. महापात्र, ''लिंगराज टैम्पलःइट्स स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज''.

8. मोरब और गोस्वामी, ''चौमुण्डेश्वरी टैम्पुल'' (1995).

9. चक्रवर्ती, ''तारकेश्वरी टैम्पुल'' (1974).

---0---

अध्याय 5

पृष्ठ 191 - 200

अध्याय 5

हरबोग राजा के विषय में संजाति इतिहास

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) का क्षेत्र प्रयाग के गंगा के पूर्व तट पर स्थित है। प्राचीन समय (400-700 वर्ष पहले) पुरूरवा राजा (चन्द्रवंशीय) की राजधानी थी। पुराणों में भी पुरूरवा राजा के सम्बंध में कुछ घटनाओं का जिक्र है।

इसी चन्द्रवंश का राजा हरबोंग हुआ। इनके शासनकाल में प्रतिष्ठानपुर का पतन होता गया। इसका इतिहास लिखित साक्ष्यों के आधार पर उपलब्ध नहीं है। पुरातात्विक खुदाई आरम्भ हो चुकी है। ऐसी उम्मीद की जाती है कि पूर्व प्रतिष्ठानपुर के सम्बंध में और जानकारी मिलेगी। ऐसी स्थिति में यहां के निवासियों के अनुसार हरबोंग राजा के विषय में जानकारी देने का प्रयास इस अध्याय में किया जा रहा है।

<u>हिन्दू सम्प्रदाय के अनुसार</u>- निषाद, पण्डा, चमार, पासी,धोबी, बहेलिया, केवट, ब्राह्मण, यादव, गुप्ता, प्रजापति, स्वर्णकार, लोहार, केसरवानी, अग्रवाल, श्रीवास्तव, आदि के सम्पर्क में हम डेढ़ वर्ष से हैं। इन्हीं लोगों के अनुसार मैंने इन सब के विषय में जानकारी ली है।

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में हरबोंग नाम का एक राजा राज्य करता था। राज्य का सारा कार्य भार मंत्री के ऊपर था, वही राजा को सभी कार्यों में सलाह देता था, जिसका नाम बीरबल था, इस राजा को हिन्दू सम्प्रदाय के लोग अकबर का समकालीन बताते हैं। जब अकबर इलाहाबाद आया तो हरबोंग राजा की ओर से मंत्री बीरबल उपहार के रूप में कुछ वस्तुओं को लेकर गया। अकबर बीरबल की बातों से बहुत प्रभावित हुआ और उसने बीरबल को अपना मंत्री बना लिया।

बीरबल के चले जाने के बाद हरबोंग राजा ही राज्य की देखभाल करने लगा। इसके राज्य में सभी वस्तुओं का दाम एक ही था। अर्थात "अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा"।

इस राज्य में दो महन्त गुरू और चेला (शिष्य) आये। चेले ने एक दिन भिक्षा में सात पैसे पाया, चेले ने एक हलवाई की दूकान पर जा कर पूछा, एक सेर लड्डू का क्या दाम है। हलवाई ने कहा टके सेर। चेले ने पूछा, गुलाब जामुन का दाम, हलवई ने कहा चाहे जो भी वस्तु लीजिए सभी टके सेर में हैं। चेले ने साढ़े तीन पैसे के साढ़े तीन सेर लड्डू लिया, आधा सेर खुद खाया और तीन सेर गुरु जी के लिए ले गया। चेले ने कहा अरे गुरुजी! इतने राज्यों में घूमा लेकिन ऐसा राज्य कहीं नहीं मिला, यहां बडा आनन्द है, सभी वस्तुएं टके सेर में हैं, अब इसे छोड़ कर कहीं नहीं जायेंगे। गुरु ने कहा, यहां तो बड़ा अंधेर है, यहां रहना ठीक नहीं है। गुरुजी उस राज्य को छोड़ कर चले गये और चेले से कहा कि यदि तुम्हारे ऊपर कोई मुसीबत आयेगी तो मुझको याद करना, हम तुम्हारे पास आ जायेंगे।

राजा के दरबार में एक व्यक्ति (फरियादी) चिल्लाता हुआ आता है - दोहाई है महाराज दोहाई, हमारा न्याय होय। राजा ने कहा, चुप रहो, तुम्हारा न्याय यहां ऐसा होगा कि जैसा यम के यहां भी न होगा। बोल क्या हुआ? व्यक्ति कहता है, महाराज! कल्लू बनिया की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब कर मर गयी - दोहाई हो महाराज न्याय हो। राजा ने मंत्री से कहा, कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओ। मंत्री ने कहा, दीवार नहीं लायी जा सकती। राजा ने कहा अच्छा उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो भी हो, उसको पकड़ लाओ। मंत्री ने कहा, महाराज! दीवार ईंट चूने की होती है, उसका भाई बेटा नहीं होता।

राजा ने कहा, अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। (नौकर लोग बनिये को पकड़ कर लाते हैं) क्यों बे बनिये! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दब कर मर

गयी? कल्लू बनिये ने कहा - महाराज मेरा कुछ दोष नहीं है। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी। राजा ने कहा, अच्छा इस बनिया को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ (कारीगर को पकड़ कर लाते हैं)। क्यों बे कारीगर, इस की बकरी किस तरह मर गयी? कारीगर ने कहा, महाराज मेरा कुछ कसूर नहीं है, चूने वाले ने ऐसा बोदा चूना बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा ने कहा, अच्छा चूने वाले को बुलाओ (चूने वाले को पकड़ कर लाते हैं) क्यों बे खैर-सुपाड़ी चूने वाले! इसकी कबरी (बकरी) कैसे मर गयी? चूने वाले ने कहा, मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इससे चूना कमज़ोर हो गया। राजा - भिश्ती को पकड़ो (भिश्ती को लाया जाता है)। गंगा-यमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गयी? भिश्ती, महाराज! मेरा कोई दोष नहीं है। कसाई ने मसक इतनी बडी बनाई कि उसमें पानी ज्यादा आ गया।

राजा - कसाई को लाओ (कसाई को लाते हैं)। क्यों बे कसाई! मसक ऐसी क्यों बनायी कि दीवार लगायी बकरी दबाई? कसाई बोला, महाराज! गडेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गयी।

राजा- गडेरिया को लाओ। (गडेरिया आता है)। क्यों बे ऊख पौडे के गडरिया, ऐसी भेड़ क्यों बेची कि बकरी मर गयी? गडेरिया बोला - महाराज उधर से कोतवाल साहब की सवारी आ गयी, सो उसको देखने में मैंने छोटी-बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा- कोतवाल को पकड़ लाओ (कोतवाल आता है)। क्यों बे कोतवाल! तूने सवारी ऐसी धूम-धाम से क्यों निकाली कि गडरिये ने घबरा कर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनिया दब गया?

कोतवाल- महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इन्तजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री ने सोचा- यह तो बड़ा गजब हुआ। ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे दे। (मंत्री ने कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली?

राजा- हाँ-हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी?

कोतवाल - महाराज, महाराज!

राजा - कुछ नहीं, महाराज-महाराज। ले जाओ कोतवाल को अभी फाँसी दो।

जब फाँसी देने कोतवाल को ले गये तो फँसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल दुबला था। राजा को यह बात बतायी गयी। इस पर राजा ने कहा कि एक मोटा आदमी पकड़ कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मरने के अपराध में किसी न किसी को सज़ा होनी जरूरी है, नहीं तो न्याय नहीं होगा।

उधर चेला (शिष्य) टके सेर में मिठाई खा-खा कर खूब मोटा हो गया था और इस नगरी की बड़ी प्रशंसा करता था कि ऐसी मौज कहां मिलेगी। माना कि देश बुरा है, पर अपना क्या, रोज मिठाई चाभना, मजे से राम-भजन करना। चेले (शिष्य) को सैनिक लोग पकड़ लेते हैं कि यही फाँसी के लिए ठीक है, खूब मिठाई खा-खा कर मोटा हुआ है।

चेले ने (घबड़ा कर), हाँय! यह आफत कहां से आई। अरे भाई मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो? सैनिक ने कहा, आपने बिगाड़ा या बनाया है इससे क्या मतलब। अब चलिये फाँसी चढ़िये। चेले ने कहा, मुझे क्यों फाँसी पर

चढ़ाओगे? सैनिक, क्योंकि तुम मोटे हो। चेले ने - क्या इस नगर में और कोई मोटा नहीं है? सैनिको ने कहा - इसमें दो बाते हैं। एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता नहीं, दूसरे, और किसी को पकड़ें तो वह न जाने क्या क्या बात बनावे कि हमीं लोगों के सिर कहीं न घहराय। और फिर इस राज्य में साधू-महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फाँसी देंगे।

चेले ने इस मुसीबत में गुरूजी को याद किया। अरे गुरूजी! कहां हो आओ मेरे प्राण बचाओ। गुरूजी आते हैं, अरे बच्चा यह तेरी क्या दशा है। गुरूजी! दीवार के नीचे बकरी मर गयी सो इसके लिए मुझे फाँसी देते हैं, गुरूजी बचाओ! कोई चिंता नही, नारायण सब समर्थ है। गुरूजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं। चेले ने कहा तब तो गुरूजी हम फाँसी चढ़ेंगे। गुरूजी ने कहा, नहीं बच्चा मुझे चढ़ने दो। इसी प्रकार गुरू-चेले ऐसे आपस में इुज्जत करते हैं। सिपाही लोग चकित हो गये, भाई यह क्या माजरा है कुछ समझ में नहीं आता, कैसा गड़बड़ है। राजा ने कहा- यह क्या गोलमाल है! सिपाही लोग कहते हैं - महाराज, चेला कहता है, मैं फाँसी चढूंगा, गुरू कहता है मैं चढूंगा, कुछ मालूम नहीं पड़ता क्या बात है।

राजा गुरू से बोले! काहे को आप फाँसी चढ़ते हैं? गुरू ने कहा-राजा, इस समय ऐसी साइत (मुहूर्त) है कि जो मरेगा, सीधा बैकुंठ जायेगा। मंत्री ने कहा, तब तो हमीं फाँसी पर चढ़ेंगे। कोतवाल ने कहा हम, हमको तो हुकुम है।

राजा ने कहा चुप रहो सभी लोग। राजा के रहते कौन बैकुंठ जा सकता है। हम को फाँसी चढ़ाओ जल्दी-जल्दी। राजा को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

गुरूजी ने ऐसे अंधेर नगरी चौपट राजा से क्रुद्ध होकर इस राज्य को पलट दिया अर्थात प्रतिष्ठानपुर के किले को उलट दिया। किला पलटने की खबर जब राजा की पुत्रवधु को पता चली तो (जो मैके में थी और गर्भवती भी थी) रोती हुई

गुरुजी के पास आयी। गुरूजी ने कहा अब तुम्हारा राज्य नहीं चलेगा लेकिन तुम्हारी जमींदारी बनी रहेगी। तुम इस स्थान से रात्रि को चलकर भोर में जिस स्थान पर रुकोगी वहीं से तुम्हारी जमींदारी शुरू हो जायेगी। यहां से चलकर वह कोटवाँ पहुँची और वहीं उसकी जमींदारी हो गयी। (लल्लन ठाकुर कोटवाँ के इसी वंश के हैं।)

किला के पलटने के बाद इस प्रतिष्ठानपुर को 'झुलसी' कहने लगे। धीरे-धीरे इसी का नाम झूँसी हो गया। किला पलटने के बाद कुछ लोग किला के उत्तर में आकर बस गये। इस बस्ती को नई झूँसी कहा हैं तथा किले के स्थान को पुरानी झूँसी।

शोध क्षेत्र में हमें हरबोंग राजा के खानदान के बारे में पता चला कि कोटवाँ के पूर्व जमींदार लल्लन सिंह हरबोंग राजा के खानदान से सम्बन्धित हैं, तो मैं उनके पास गया और इसके बारे में जानकारी लीः-

पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में हरबोंग नाम का राजा राज्य करता था, वह सनकी था। राजा के पास एक पुत्री थी। उसकी शादी रायबरेली बैसवारा में की थी। राजा के बाद राजगद्दी उसी को मिलती क्योंकि उसके पास कोई पुत्र नहीं था, इसलिए राजा के दामाद और पुत्री यहीं रहते थे। इस राज्य में एक फकीर रहता था उसे सिद्धि प्राप्त थी। वह झाड़ फूंक तथा दुवा से लोगों के कष्टों को दूर कर देता था इससे वह बहुत विख्यात हो गया तथा राज्य में लोग उसी का गुण-गान गाने लगे। जब इसकी सूचना राजा को मिली तो राजा बड़ा क्रोधित हुआ। उसने फकीर को बुलवाकर कोड़े से खूब पिटवाया। फकीर किले के पास बैठकर मन्त्र जाप करने लगा जिससे किले में आग लग गयी और किला उलट गया। इसमें राजा तथा राजा के सभी लोगों की मृत्यु हो गयी, सिर्फ राजा की पुत्री बच गयी थी जो गर्भवती थी। वह रोती हुई फकीर के पास आयी। फकीर ने कहा बेटी, अब तुम्हारा राज्य नही चलेगा अर्थात् अब तुम्हारे वंश का न तो कोई राजा होगा और न ही इस वंश की

जाति इस राज्य में रहेगी। लेकिन तुम्हारी जमींदारी बनी रहेगी। तुम यहां सीधे पूर्व की ओर जाओ, जहाँ भोर होगी वहीं पर तुम अपना किला बनाओ। जब वह कोटवा पहुँची तो उसने वहां एक किला बनाया। यहीं उसकी जमींदारी बन गयी। उसके गर्भ से लड़का पैदा हुआ जिसका नाम पुरन्दर शाह था। पुरन्दर शाह के तेरह लड़के पैदा हुए तथा तालुको में बंट गये। राजा राजशाह, केशरीशाह, और भुवनशाह ये तीनो कोटवाँ के जमींदार थे। इन तेरह भाइयों में दो भाई मुसलमान हो गये जिनकी जमींदारी मन्डौर और कन्हियार में थी। कन्हियार के जमींदार फिर अपनी जाति में आना चाहते थे, बहुत बड़ा भोज देने के लिए कहे, लेकिन उनके बिरादरी के लोग नहीं माने।

किले के जलने तथा पलटने के बाद प्रतिष्ठानपुर को 'झौंसी' कहते थे, धीरे-धीरे इसी को झूँसी कहने लगे। किले के पलटने के बाद जो बस्ती किले के उत्तर की ओर बसी उसे नई झूँसी कहते हैं, उस समय यहां 560 बहेलिया, 50 मुसलमान तथा 50-60 निषाद जाति के लोग थे।

<u>मुस्लिम समुदाय के अनुसार</u>

पूर्व प्रतिष्ठानुपर (वर्तमान झूँसी) में हरबोंग नाम का एक राजा राज्य करता था। राजा सनकी तथा मूर्ख था। उसी के समय इस राज्य में एक सूफी संत हजरत मखदूम सैय्यद शाह अली ए मुर्तजा उर्फ शाहशाबान बियाबानी, सख्खर भख्खर मुल्तान (सिन्ध) से आये। संत को सिद्धि प्राप्त थी। तारा मिरिख (ध्रुव) आमील थे, अर्थात तारा ध्रुव संत के अधीन थ। राजा के पास जितनी गायें तथा भैंसे थीं, चरवाहा जब इनको वापस लेकर लौटता तो सभी गायें तथा भैंसे संत के पास जाकर दूध देकर चली आती थीं। चरवाहे ने जब इसकी सूचना राजा को दी तो राजा ने संत को बुलवाया। संत ने राजा के पास जाने से इन्कार कर दिया। राजा ने सूफी

(संत) को तरह-तरह से परेशान करना शुरू किया, यहां तक कि खाना-पानी पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया, फिर भी सूफी (संत) ने राजा के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। राजा जब संत को कोई नुकसान न पहुँचा सका तो सूफी (संत) को दावत पर बुलाया। सूफी ने दावत स्वीकार कर ली। राजा ने संत को मारने के उद्देश्य से दावत दी थी। राजा ने एक कुँआ खुदवाया, कुँआ में आग जला कर उसके ऊपर बांस की खपाची से ढक दिया तथा उसके ऊपर चादर बिछा दिया। राजा ने भोजन जहरीले जीव-जन्तुओं (सांप, गोजर, बिच्छुओं) का बनवाया था। संत जब भोजन के लिए चादर पर बैठे तो बांस की खपाची लोहे की हो गयी, कुएं की आग बुझ गयी। संत ने भोजन के प्यालों को देखकर कहा, जो जानवर जिस रूप में थे वे ईश्वर की कृपा से उसी रूप में आकर अपने स्थान पर चले जायें। सभी जानवर प्याले से निकलकर भागने लगे। मखदमू साहब किले से बाहर आ गये और बहुत क्रोधित हुए। जब राजा उनको इस तरह नहीं मार सका तो उसने अपने सैनिकों से आक्रमण कराया। सूफी (संत) इपने अनुयायियों के साथ एक गोला खींचकर उसी के अन्दर बैठ गये और कहा इससे कोई बाहर नहीं निकले। सूफी का एक लड़का घेरे से बाहर आ गया। उसे एक तीर लग गया और वहीं शहीद हो गया जिसकी मजार अकेला पेड़ के पास शेख तकी बाबा मजार के दक्षिण एक कि.मी. की दूरी पर है। इस मजार का नाम ''सैय्यद मुरादशाह बाबा'' है। लड़के की मृत्यु से मख़दूम साहब बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने अपनी उंगली उठा कर ''या उखतुलु मिर्रिख'' यही शब्द तीन बार कहे अर्थात् ऐ तारा आ और इसे समाप्त कर दे। इतना कहते ही तारा मिर्रिख का एक छोटा सा कण किले पर गिरा और किले में भूचाल आ गया और आग लग गयी। राजा के साथ सभी लोग उसी में मर गये। आग लगने से पूरा प्रतिष्ठापनपुर झुलस गया तो इसे झुलसी कहने लगे। धीरे-धीरे इसी का नाम झूँसी पड़ गया।

किला पलटने के बाद हरबोंग की एक बहन थी, जो अरैल की रानी थी। इस रानी को कोई सन्तान नहीं थी। वह बाबा के पास आयी और उनसे बिनती तथा प्रार्थना की कि आप मुझे एक सन्तान दे दें। बाबा (संत) ने उसे दुआ दी और कहा जा, नौ महीने बाद तुझे एक पुत्र पैदा होगा। जब वह घोड़े पर सवारी करने लायक हो जाये तो उस बच्चे को ले कर हमारे पास आना। जब लड़का घोड़े पर सवारी करने लायक हो गया तो राजा और रानी बच्चे के साथ झूँसी बाबा के पास आये। बाबा ने अपनी कुलाह (टोपी) को उतार कर बच्चे के सर पर रख कर, घोड़े पर बैठा कर कहा, जहां शाम होगी वहीं का तू राजा होगा। घोड़ा प्रतापगढ़ कालाकांकर पहुंचा जहां शाम हो गयी। वहीं का वह राजा हो गया जिसका नाम कुलदीया राजा था।

<u>सारांश</u>

ऊपर हमने वर्तमान झूँसी के दो सम्प्रदायों - हिन्दू और मुसलमानों के अनुसार जानकारी दी है। यह स्पष्ट होता है कि राजधानी के पतन का कारण हिन्दुओं के अनुसार एक व्यक्ति विशेष से जोड़ते हैं। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। दूसरी ओर मुस्लिम सम्प्रदाय वालों का यह मत है कि इस राजधानी को एक सूफी संत फकीर ने उलटा था।

यहां स्पष्ट कर देना उचित होगा कि हिन्दू और मुसलमान दोनो हरबोंग राजा को मान्यता देते हैं। किला पलटने यानि राजधानी टूटने का कारण इस राजा की कार्य असमर्थता थी। अपनी मूर्खता के कारण ही वह अपनी जान खो बैठा। लोगों का ऐसा मानना है कि हरबोंग के बाद (किला पलटने के बाद) ठाकुर वंश का कोई समुदाय यहां नहीं पनप पाया। वे कहीं और चले गये। कुछ समुदायों का यह कहना है कि ये कोटवा चले गये और कुछ समुदायों का यह मानना है कि इस वंश

के लोग उत्तर दिशा में स्थित एक क्षेत्र में चले गये जिसे आजकल प्रतापगढ (कालाकांकर) कहते हैं।

शोधकर्ता ने कोटवां जा कर लोगों से जानकारी ली और यह पाया कि यहां के कुछ समुदाय वाले इस बात का दावा करते हैं कि उनका सम्वंध हरबोंग राजा के वंशजों के साथ था तथा इनके अनुसार इनके वंशज तेरह तालुकों में बटे हैं, जैसे मन्डौर, ढोकरी, कन्हीयार आदि जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

वर्तमान में झूँसी में रहने वाले बहेलिया कहते हैं कि हमारे वंश के लोग हरबोंग के दरबारी थे और राजा के लिए जानवरों का शिकार करके लाते थे। और

अध्याय 6

पृष्ठ - 201 - 224

अध्याय 6

अध्ययन निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय है: ''प्रयाग के प्राचीन स्थलों का संजाति इतिहास, (झूँसी क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में)''। (Ethnohistory of Prayag (Allahabad), with special reference to Jhusi).

इस विषय का मानवशास्त्रीय ढंग से समझने के लिए शोधकर्ता निम्न उद्‌देश्यों को ध्यान में रखा हैं जिसका उल्लेख अध्याय दो में किया जा चुका है। वे निम्न है-

1- पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल है। यहां चन्द्रवंशीय राजा पुरूरवा की राजधानी थी। इसका संजाति इतिहास प्रस्तुत करना तथा इतिहास की प्रासंगिकता जानना।

2- पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में हरबोंग राजा की राजधानी थी। इसके समय में इस नगर का नाम ''अंधेर नगरी'' था तथा इसी के समय राजधानी उलटी इसका संजाति इतिहास प्रस्तुत करना तथा इतिहास की प्रासंगिकता जानना।

3- इस क्षेत्र के धार्मिक स्थलों का संजाति इतिहास प्रस्तुत करना।

4- सामाजिक जीवन, घटनाओं, तथ्यों या समस्याओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना।

शोध समस्या और उद्‌देश्यों के अनुरुप शोधकर्ता ने अध्ययन प्रणाली की रुपरेखा तैयार की जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत्‌ है -

(1) झूँसी क्षेत्र को अध्ययन की इकाई माना और इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की प्रारम्भिक जानकारी ली। इसके लिए प्राथमिक तथा द्वितीय स्रोतो का सहारा लिया।

<u>प्राथमिक स्रोत</u>

प्राथमिक तथ्य वे भौगोलिक सूचनाएं या आँकड़े होते हैं जो कि एक अनुसन्धानकर्ता वास्तविक अध्ययन स्थल में जा कर विषय या समस्या से सम्बंधित जीवित व्यक्तियों से, साक्षात्कार करके अथवा अनुसूची या और प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है अथवा प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा प्राप्त करता है।

अतः प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के दो प्रमुख स्रोत हो सकते हैं - एक तो जीवित व्यक्तियों से और दूसरा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा। प्रथत स्रोत के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कि अध्ययन विषय या समस्या के सम्बंध में ज्ञान रखते हैं अथवा दीर्घ समय से उसके घनिष्ठ सम्पर्क में हैं।

श्रीमती यंग के अनुसार प्राथमिक स्रोत निम्नलिखित हैं -

1- <u>प्रत्यक्ष निरीक्षण</u>: अनुसंधानकर्ता स्वयं अध्ययन स्थल पर जा कर अपने विषय से सम्बंधित घटनाओं, वस्तुओं तथा व्यवहारों का स्वयं निरीक्षण करके सूचना एकत्रित करता है।

2- <u>प्रश्नावली</u> : जब अध्ययन क्षेत्र बड़ा होता है तो अनुसंधानकर्ता विषय से सम्बंधित अपने प्रश्नों की एक सूची डाक के द्वारा सूचनादाताओं के पास इस अनुरोध के साथ भेज देता है कि वे उन प्रश्नों का उत्तर भरकर उसे लौटा दे। इसे प्रश्नावली कहते हैं।

3- <u>अनुसूची</u> : अनुसंधानकर्ता अपने विषय से सम्बंधित प्रश्नों को सूचनाकर्ताओं के पास स्वयूं जा कर प्रश्न पूछकर उत्तर भरता है।

4- <u>साक्षात्कार</u> : अनुसंधानकर्ता स्थानीय व्यक्तियों से स्वयं मिलकर व उनसे बातचीत करके विषय से संबंधित तथ्यों को एकत्रित करता है।

5- <u>वंशावली</u> : वैसे तो वंशावली विधि का प्रयोग नातेदारी प्रणाली के अध्ययन के लिए अधिक किया जाता है, किन्तु अगर अनुसंधानकर्ता नातेदारी समस्या से परे कोई अन्य समस्या सम्बंधी तथ्य इकट्ठा करना चाहता है तो भी वंशावली प्रविधि उपयोगी है। इससे सूचनादाताओं के सम्बंध में अनेक जानकारी मिलती है।

6- <u>मानचित्र</u> : सामाजिक सर्वेक्षण के दौरान क्षेत्र (स्थान या गांव) का फैलाव, मकान, पीने का पानी, धार्मिक स्थल आदि को मानचित्रों के सहारे प्रस्तुत करने से अनेक बातों की जानकारी मिलती है।

7- <u>फोटोग्राफी तथा टेपरिकार्डिन्ग</u> : समकालीन सामाजिक मानववेत्ता अध्ययन के समय कैमरा द्वारा फोटोग्रेफ्स भी लेते हैं। किसी समाज विशेष का अध्ययन हुआ है या नहीं फोटोग्राफ्स का उपयोग प्रमाण के रूप में किया जाता है।

टेपरिकार्डर के प्रयोग से विविध लोककथा व गीतों का ज्ञान सम्भव हो सका है। अपरिचित भाषा को सीखने व समझने में सहायता मिलती है।

<u>वैयक्तिक अध्ययन</u>

किसी विषय बिन्दु (वस्तु, घटना) पर गहन रूप से तथ्य एकत्र कर उन्हें क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करना वैयक्तिक अध्ययन है। वैयक्तिक अध्ययन का आधार अवलोकन और साक्षात्कार है।

<u>द्वितीय स्रोत</u> - द्वितीय स्रोत वे सूचनाऐ और आँकड़े हैं जो कि अनुसंधानकर्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों, रिपोर्ट, साँख्यिकी, पाण्डुलिपि, पत्र-डायरी आदि से प्राप्त होते हैं।

लुन्डबर्ग ने सूचनाओं के स्रोतों को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया है-

(1) <u>ऐतिहासिक स्रोत</u>-

(अ) प्रलेख, कागजात, शिलालेख आदि।

(ब) भूतलीय स्तरें, खुदाई से प्राप्त वस्तुएं।

(2) <u>क्षेत्रीय स्रोत</u> -

(क) जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएं।

(ख) क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण।

<u>समुदायों का चुनाव</u>

प्रस्तुत अध्ययन प्रतिचयन के आधार पर आधारित नहीं है, तथापि हमने निम्न समुदायों को अपना अध्ययन केन्द्र बनाया - निषाद, पण्डा, ब्राह्मण, यादव, श्रीवास्तव, बिन्द, बहेलिया, चमार, पासी, धोबी, मुसलमान आदि। प्रत्येक समुदाय के स्थायी परिवारों के साथ सम्पर्क किया और अनुभवी लोगों से मिलकर इस क्षेत्र की ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त की।

यहाँ उल्लेखनीय है कि यदि हमें लिखित साक्ष्य मिलते हैं तो उनको भी मिला दिया। सूचनादाताओं से सूचना साक्षात्कार करके प्राप्त की गयी। कुछ अवसरों पर टेपरिकार्डर, फोटोग्राफ्स का भी उपयोग किया। साक्षात्कार अनुसूची में उन्हीं विषयों को सम्मिलित किया गया जो संजाति इतिहास से सम्बंधित हैं। इस तरह क्षेत्रीय अध्ययन द्वारा तथ्य एकत्रित किया तथा उनका विश्लेषण विभिन्न अध्यायों में किया।

<u>सारांश</u>

अध्याय-एक में सामाजिक, सांस्कृतिक, मानवविज्ञान और इतिहास के परस्पर सम्बन्ध के प्रति विभिन्न मानववेत्ताओं के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इस क्रम में यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार सामाजिक मानवविज्ञान, मानवजातिविज्ञान से भिन्न है, साथ ही प्रकार्यवादी मत के प्रवर्तक इतिहास की अवहेलना क्यों करते हैं।

हमारे विवेचन का तीसरा मुद्‌दा है कि सामाजिक मानवविज्ञान और सांस्कृतिक मानवविज्ञान में इतिहास की क्या प्रासंगिकता है।

वर्तमान अध्ययन के अन्तर्गत प्रयाग और झूँसी के विवरण का संक्षिप्तीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकपितामह ब्रह्माजी ने बहुत खोज की कि पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है। बहुत खोजने के पश्चात उनको यही क्षेत्र सबसे श्रेष्ठ जान पड़ा। इसलिए यहाँ उन्होंने प्रकृष्ट-प्रकृष्ठ याग-यज्ञ किये। इसलिए इस स्थान का नाम प्रयाग पड़ा। सब तीर्थों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की - प्रभो! हम सब तीर्थों में जो सबसे श्रेष्ठ हो, उसे आप सबका राजा बना दो। तब ब्रह्माजी ने इस प्रयाग को ही सब तीर्थों का राजा बना दिया। उसी दिन से सब तीर्थ इनके अधीन रहने लगे और ये "तीर्थराज" कहलाये। प्रयाग राज सब तीर्थ का राजा है इसलिए समस्त तीर्थ आकर इनकी उपासना करते है।

प्रयाग देवाधिदेव ब्रह्मा, विष्णु, और महेश की निवास भूमि है। गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के उत्तर दिशा में ब्रह्मा गुप्त रूप में निवास करते हैं, विष्णु वेणीमाधव के रूप में विद्यमान हैं, और शिव अक्षयवट के रूप में रहते है। स्वयमेव शरीर त्याग या आत्महत्या को सभी शास्त्रकारों ने महापाप माना है, किन्तु स्मृतिकारों और निबन्धकारों ने घोषणा की है कि "अक्षयवट" के मूल में प्राणोत्सर्ग

करने या आत्महत्या करने से मोक्ष प्राप्त होता है। वेणीमाधव स्वरूप विष्णु योगमूर्ति के रूप में विराजमान हैं।

प्रयाग के स्नान, तीर्थाटन और निवास से जो पुण्य फल प्राप्त होते हैं उनकी संख्या अनन्त है। किन्तु कोसों सुदूर बैठकर भी यदि उसका पवित्र अन्तःकरण से स्मरण किया जाय तो उतने से ही मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और उसे सहज ही विष्णु पद की प्राप्ति हो जाती है।

प्रस्तुत अध्याय में गंगा और यमुना के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है। गंगा और यमुना का संगम तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वह सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ है। माघ मास में प्रयागराज में प्रतिदिन स्नान किया जाय तो उससे मनुष्य को अत्यन्त पुण्य फलों की प्राप्ति होती है। करोड़ों गायों के दान करने से जो फल प्राप्त होता है, प्रयाग में माघ मास के स्नान से वह फल सहज ही सुलभ हो जाता है। इसी प्रकार अश्वमेघ करने से जो फल होता है वही फल माघ मास स्नान में होता है। संगम में माघ मास में स्नान करने से मनुष्य की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और उसको दिव्यधाम प्राप्त होता है।

प्रयाग स्नान के लिए सभी तिथियाँ और सभी काल शुभ बताये गये हैं, किन्तु यदि माघ मास और विशेष रूप से माघ की मकर संक्रान्ति को स्नान किया जाय तो उसके फल का कोई अन्त नहीं है। बांध के नीचे गंगा-यमुना तट पर मकर संक्रान्ति से कल्पवासी एक महीना कल्पवास करते हैं। प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति या पौष पूर्णिमा से यह प्रारम्भ होता है। यहां माघ भर लगभग 25 लाख श्रद्धालु, दूकानदार, प्रशासन आदि डेरे और झोपड़ियों में रहते हैं।

बारह वर्ष में प्रयाग में ''कुम्भ'' का पर्व पड़ता है। कुम्भ में देश के कोने-कोने से करोड़ों यात्री त्रिवेणी स्नान के लिए आते है। साथ ही विदेशों से भी हजारों लोग उस

मेले का आनन्द लेने के लिए आते हैं। प्रत्येक कुम्भ के बीच छः वर्षों में ''अर्द्ध कुम्भ'' का मेला लगता है। जब 12वाँ कुम्भ होता है उसे ''महाकुम्भ'' या ''पूर्णकुम्भ'' कहते है। यानि 12 गुणा 12 वर्षों अर्थात् 144 वर्षों में महाकुम्भ होता है। कुम्भ का पर्व चार स्थानों पर - हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन में होता है। अर्द्धकुम्भ का पर्व केवल प्रयाग और हरिद्वार में ही होता है। पौराणिक काल से ही प्रयाग स्नान का महत्व प्रतिपादित है, किन्तु कुम्भ और अर्द्धकुम्भ का पहला ऐतिहासिक वर्णन सातवीं शताब्दी में महाराजा हर्ष के समय का मिलता है। प्रसिद्ध चीनी हेनसांग ने अपनी यात्रा वर्णन में उसका उल्लेख किया है। उसके अनुसार प्रति छः वर्षों में महाराजा हर्षवर्धन प्रयाग आकर अपना सम्पूर्ण एकत्रित धन गंगा तट पर निवास कर बौद्धों, ब्राह्मणों और अन्य लोगों में वितरित कर देते थे। वे यहां लगभग 75 दिन निवास करते थे।

सभी स्नानों में माघ की अमावस्या के दिन का स्नान सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसे मौनी अमावस्या कहा गया है। प्रयाग पर मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी, माघ पूर्णिमा और महाशिवरात्रि भी बड़ी है। आदि शंकराचार्य ने आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व माघ मौनी अमावस्या और शिवरात्रि पर नागा संतों को प्रथम स्नान का अधिकार दिया है। यह परम्परा अन्य कुम्भों में भी मान्य मानी जाती है।

प्रयाग भगवान माधव का मुख्य क्षेत्र है। यहाँ माधवजी बारह रूप रखकर रहते हैं। उनके नाम शंखमाधव, चक्रमाधव, गदामाधव, पद्ममाधव, अनन्तमाधव, बिन्दुमाधव आदि है। यहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों मिली हैं, इससे इसे 'युक्तत्रिवेणी' कहते हैं। इसी परम पावन क्षेत्र में महार्षि भरद्वाजजी निवास करते थे। यहीं से रामचरितमानस की सुरसरि धारा बही है जिसने समस्त संसार को भक्ति रस में डुवो दिया है।

पुराणों में शिवपुराण की रचना भी भगवान वेदव्यास जी ने प्रयाग में की है। त्रिवेणी के सम्मुख प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में शंखमाधव जी के समीप व्यास जी का स्थान

था। इन सब कारणों से प्रयागराज की उपमा कोई अन्य तीर्थ कर ही नहीं सकता। प्रयाग में पग-पग पर पुण्य तीर्थ हैं। बीस कोस के बीच में यह प्रयाग का क्षेत्र है। इसमें करोड़ों तीर्थ रहकर तीर्थराज की उपासना करते हैं। इन सब तीर्थों में त्रिवेणी, वेणीमाधव, सोमेश्वर, भरद्वाज आश्रम, नागवासुकी अक्षयवट, शेषजी, दशाश्वमेघ घाट मुख्य है।

प्रयाग में मुण्डन का बड़ा माहात्म्य हैं कहावत है - ''गया पिंडे प्रयाग मुण्डे''। यहां मुण्डन का कोई विधान नहीं है। राजा हो, दीक्षित हो, स्त्री हो, पुरुष हो, सधवा हो, विधवा हो, सभी को प्रयाग में मुण्डन कराने का विधान है। सधवा स्त्रियां पूरा मुण्डन नहीं करातीं। वे अपनी वेणी को तनिक कैंची से कटवाकर त्रिवेणी में प्रवाहित करती हैं। प्रयाग में भी गया की भाँति पितरों को पिण्ड देने का अक्षय फल बताया गया है।

प्रयाग के सामने गंगा के पूर्वी तट पर प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) एक बहुत ही प्राचीन स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ चन्द्रवंशीय शासक पुरूरवा ऐल राजा की राजधानी थी। महाकवि कालीदास ने ''विक्रमोर्वशीयम'' की रचना पुरुरवा और उर्वशी के प्रणय को लेकर की है। देवलोक से पृथ्वीलोक में अवतरित होने वाली अप्सरा उर्वशी और उसकी सखी चन्द्रलेखा के संवाद में कालीदास ने चन्द्रलेखा के मुखसे कहलाया है ''अरी सखी देख, हम लोग राजर्षि के उस भवन में पहुँच गयी हैं जिसके समान दूसरा भवन प्रतिष्ठानपुर में नहीं है और जो ऐसा दिखाई दे रहा है, मानों यमुनाजी के संगम के कारण और भी अधिक पवित्र बने हुए गंगाजी के जल में अपना मुँह देखा रहा हो।''

पूर्व प्रतिष्ठानपुर को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ''अंधेर नगरी'' कहा है और ''अंधेर नगरी'' शीर्षक पर एक कहानी लिखि है। झूँसी के विषय में एक प्रसिद्ध दन्तकथा है कि वहाँ एक हरवेश या हरबोंग राजा था जिसके राज्य में ऐसा अंधेर था कि ''टका सेर भाजी और टका सेरा खाजा'' बिकता था। हरबोंग राजा से उस समय के बड़े माहात्म्य गोरखनाथ तथा उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने रुष्ट होकर शाप दिया था जिससे झूँसी उलट

गयी। मुसलमान कहते हैं कि सन् 1359 ई0 में सैयद अली मुर्तजा नामक एक फकीर की बद्दुआ से झूँसी में एक बड़ा भुचाल आया और उसका किला उलट गया।

झूँसी क्षेत्र में निम्न तीर्थ स्थल हैं - हंसतीर्थ, हंसकूप, संध्यावट, गंगोत्री शिवालय, लाला किशोरी लाल की धर्मशाला, समुद्रकूप, ऐलतीर्थ, प्राचीन हनुमान गुफा, शंखमाधव, नागतीर्थ आदि हैं जिनके माहात्म्य की चर्चा इस अध्याय में की गयी है।

सन् 1830 ई0 में झूँसी में त्रिलोचनकाल का ताम्रपत्र मिला है जिसमें प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) में दान आदि करने का उल्लेख हैं तथा 1876 ई0 के लगभग कुमार गुप्त के समय की '24' अशर्फियाँ मिली हैं।

इलाहावाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग ने पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के टीले का उत्खनन कार्य शुरु कर दिया है।

अध्याय-तीन में निम्न समुदायों का संक्षिप्तिकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

क्षेत्र के निषाद समुदाय जो हिन्दु तथा पिछड़े वर्ग से संबधित हैं इनके परिवार पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय एवं पितृवंशीय हैं। एकल परिवारों की संख्या 85 प्रतिशत तथा संयुक्त परिवार की संख्या 15 प्रतिशत है। इस समुदाय में लड़की की शादी 15-18 वर्ष तथा लड़के की 18-25 वर्ष में हो जाती है निषाद समुदाय में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह होता है।

निषाद समुदाय के 250 परिवारों में 150 कच्चे मकान, तथा 100 पक्के मकान पाये गये हैं। इनका मुख्या अर्थिक स्रोत - मछली मारना, गंगा की रेत में खीरा-ककड़ी, साक-सब्जी आदि की खेती करना है। तालाब में सिंघाड़ा लगाना तथा मछली पालना, माघ मेले के अवसर पर अखाड़ों का यज्ञशाला बनाते हैं तथा मेले में

मजदूरी तथा ठेकेदारी भी करते हैं। 15 प्रतिशत लोग नौकरी में हैं। इनके पास अपनी भूमि भी है जिसमें वे खेती करते हैं। नाव भी चलते हैं।

निषाद समुदाय हिन्दू धर्म से संबंधित हैं। यह शंकर-पार्वती, गणेश-लक्ष्मी, हनुमान, दुर्गा, काली, आदि देवी-देवताओं की पूजा करते है तथा दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, होली आदि त्यौहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। भूत-प्रेत में ये विश्वास करते हैं।

इस समुदाय की अपनी एक पंचायत होती है। किसी विवाद के निपटारे के लिए पंचायत में पांच घाट के (दारागंज, मेहदौरी, रसूलाबाद, महेवा, निका, सुलेमसराय आदि) के चौधरी बुलाये जाते है। इनको पंचपरमेश्वर कहते है। इनके निर्णय मान्य होते हैं गम्भीर मामलों में न्यायलय की भी शरण लेते है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। 35 से 65 वर्ष तथा इससे अधिक उम्र के लोगों की शिक्षा लगभग 5 प्रतिशत है। वर्तमान में शिक्षा स्तर बढ़ रहा है। प्राइमरी में 80 प्रतिशत हैं, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिट में लगभग 30 प्रतिशत हैं। उच्च शिक्षा (स्नातक) में 5 प्रतिशत है।

निषाद समुदाय में महिलाओं की स्थिति सामान्य है। ये घर-गृहस्थ कार्य के साथ-साथ गंगा की रेत में खीरा-ककड़ी, साक, सब्जी, आदि की खेती भी करती हैं। महिलाओं की शिक्षा नगण्य है।

निषाद समुदाय अपनी नाव को लकड़ी तथा लोहे की चद्दर से स्वयं बनाते हैं। कुम्भ मेले मे निषाद अखाड़ों का यज्ञशाला, गुम्बज आदि का निर्माण करते हैं। ये हरिद्वार, नासिक, उज्जैन के कुम्भ मेले में भी अखाड़ों का यज्ञशाला, गेट, गुम्बज आदि का निर्माण करने जाते हैं। तालाब में सिंघाड़ा लगाने के लिए "धन्नई" का

निर्माण करते हैं जिसमें दो बड़ा घड़ा तथा एक डेढ़ मीटर की दो बांस के डंडे, जिसे घड़े के गलों में बाँध कर बनाते है।

अध्ययन क्षेत्र के पण्डा समुदाय के परिवार का रुप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है। पण्डा हिन्दू धर्म के संस्थापक, प्रवर्तक आदि कहे जा सकते है। इनको पुरोहित भी कहा जाता है। इस समुदाय में एकल परिवार 75 प्रतिशत तथा संयुक्त परिवार 25 प्रतिशत पाये गये।

विवाह की औसत आयु लड़के की 21-30 वर्ष तथा लड़की की 18-25 वर्ष है। देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह भी विशेष स्थिति में होता है।

इस समुदाय का मुख्य आर्थिक स्रोत गंगाजी हैं। गंगा को ही ये अपनी खेती, व्यापार तथा नौकरी मानते हैं। ये अपने जजमानों को पूजा-पाठ, यज्ञ आदि कराते हैं जिसमें इनको दान के रूप में काफी धन की प्राप्ति होती है, जैसे-गौदान, सइयादान, तुलादान, वेणीदान, शनिदान आदि।

इनकी अपनी कोई पंचायत नहीं है। न्यायालय द्वारा इनके विवादों का निराकरण होता है।

ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित हैं। ये हिन्दू के रक्षक तथा प्रचारक भी हैं। गंगा इनकी मुख्य अराध्य है। ये प्रतिदिन गंगा की आरती करते है। ये दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, होली आदि पर्व एवं त्यौहारों को वड़ी धूम-धाम से मनाते है।

इस समुदाय में शिक्षा का स्तर 90 प्रतिशत है जिनमें स्त्री 40 प्रतिशत है।

चमार समुदाय में परिवारों का रुप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, पितृवंशीय है। इनका परिवार एकल परिवार के रूप में है। विवाह की औसत आयु लड़की की 18-20 वर्ष तथा लड़के की 18-25 वर्ष है। सगाई 1 वर्ष पहले हो जाती है। शादी

कराने वाले को ''अगुआ'' कहते हैं। दहेज प्रथा वर मूल्य के रूप में है। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह होता है।

चमार समुदाय भूमिहीन है। ये अपना पेट पालने के लिए मेहनत-मजूरी करते हैं। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय है। सरकार द्वारा चलाई गयी योजनाओं का इनको कोई लाभ नहीं मिलता है।

ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित है। शिव, गणेश, दुर्गा, काली, हनुमान,पार्वती आदि देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, होली आदि पर्व एवं त्यौहारों को मानते हैं।

इनकी अपनी पंचायत है। किसी वृद्ध व्यक्ति या सम्मानित व्यक्ति को गांव का चौधरी चुना जाता है। पंचायत में पाँच सात गाँव के चौधरी आते हैं। गांव के चौधरी को बुलाने ''छड़ीवरदार'' (चौकीदार) जाता है।

25 घरों में 20 कच्चे (खपरैले) घरों में तथा 5 पक्के (एक दो कमरे तक) घरों में रहते हैं।

इस समुदाय में शिक्षा का स्तर निम्न हैं प्राथमिक (5 से8 तक) 50 प्रतिशत तथा माध्यमिक (9-12 तक) 5 प्रतिशत हैं। उच्च शिक्षा नगण्य है।

धोबी समुदाय अनुसूचित जाति में आती है। इनके परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा 75 प्रतिशत एकल परिवार और 25 प्रतिशत संयुक्त परिवार के रूप में है। इन समुदायों में विवाह 16-18 वर्ष में लड़की का तथा 18-25 वर्ष लड़के का करते है।

इनका मुख्य आर्थिक स्रोत कपड़ा धुलना है। 5 प्रतिशत लोग नौकरी भी करते हैं। ये हिन्दू धर्म से संबंधित सभी देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं।

इस समुदाय में अपनी कोई पंचायत नहीं है। छोटे-मोटे विवाद को आपस में ही समझ लेते हैं। गम्भीर मामलों में न्यायालय की शरण लेते हैं। शिक्षा स्तर निम्न है। प्राथमिक (1-8) 90 प्रतिशत, माध्यमिक 50 प्रतिशत, उच्च शिक्षा 2 प्रतिशत है।

बहेलिया समुदाय राजा हरबोंग के दरबारी थे तथा उस समय ये '989' घर थे। राजा के लिए शिकार करते थे। वर्तमान समय में 10 घर हैं जिनकी संख्या लगभग 100 है। ये अपने को क्षत्रिय वंश से सम्बंधित बताते हैं लेकिन वर्तमान में ये अनुसूचित जाति में आते हैं। इनके परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल परिवार है। लड़की की शादी 18-22 वर्ष में तथा लड़के की 21-25 वर्ष में करते हैं। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह मान्य है। इनका आर्थिक स्रोत मेहनत-मजदूरी तथा छोटे-मोटे व्यापार द्वारा अपना जीविकोपार्जान करना है। ये हिन्दू धर्म से सम्बंधित हैं तथा हिन्दू के सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं तथा पर्व एवं त्यौहारो में दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि, होली नागपंचमी आदि को मानते हैं।

इस समुदाय में ''पंचायत'' की व्यवस्था है। पंचायत में 12 टाट (जिले) के चौधरी बुलाये जाते हैं। वर्ष में एक बार ही पंचायत होती है।

शिक्षा का स्तर निम्न है। प्राथमिक शिक्षा (1से 8 तक) 80 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा (9 से 12 तक) 15 प्रतिशत है, उच्च शिक्षा नगण्य हैं

बिन्द परिवार में परिवार का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थार्नीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल परिवार 95 प्रतिशत एवं संयुक्त परिवार 5 प्रतिशत हैं। लड़की की

शादी 16-18 वर्ष में तथा लड़के की 18-25 वर्ष में करते हैं। विशेष स्थिति में देवर-भाभी, जीजा-साली विवाह मान्य है। ये मेहनत-मजदूरी करके अपना जीविकोपार्जन करते है। हिन्दू धर्म से सम्बंधित सभी देवी-देवताओं की पूजा-पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। दशहरा, दीपावली, महाशिवरात्रि आदि पर्व एवं त्यौहारों को बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। इस समुदाय में "पंचायत" है। पंचायत में गांव का चौधरी एवं गांव के पांच दस मानिन्द व्यक्ति होते हैं। इनका निर्णय मान्य होता है। गम्भीर मामलों में न्यायालय की शरण लेते हैं।

बिन्द समुदाय का 100 परिवार है। 90 कच्चे (खपरैल) मकान है तथा 10 पक्के मकान हैं।

शिक्षा स्तर निम्न हैं प्राथमिक शिक्षा (5 से 8 तक) 25 प्रतिशत है। माध्यमिक (10-12 तक) 5 प्रतिशत तथा स्नातक नगण्य है।

पासी समुदाय जो अनुसूचित जाति में है, इसके परिवर का रूप पितृसत्तात्मक, पितृस्थानीय, एवं पितृवंशीय है तथा एकल पिरवार में है। लड़की की शादी 16-20 वर्ष में तथा लड़के की 18-25 वर्ष में होती है। हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं राम-सीता, हनुमान, शंकर-पार्वती, गणेश, लक्ष्मी, दुर्गा काली आदि की पूजा पाठ करते हैं। भूत-प्रेत में भी विश्वास करते हैं। आर्थिक स्रोत के अन्तर्गत छोटे-मोटे व्यापार, सुअर पालना, एक दो लोग नौकरी में भी हैं तथा मेहनत-मजदूरी करते हैं इस समुदाय में पंचायत की व्यवस्था है।

अध्याय-चार के अन्तर्गत झूँसी क्षेत्र के विभिन्न तीर्थ-स्थलों का संक्षिप्तिकरण पस्तुत किया जा रहा है।

हंसतीर्थ की स्थापना 16वीं शताब्दी में आत्माराम हंस ने करवायी थी। यह तीर्थ-स्थल गंगा के पूर्वी तट पर शास्त्री पुल से करीब 200 मीटर की दूरी पर

उत्तर की ओर झूँसी में स्थित है। हंसतीर्थ मंदिर का निर्माण मानव के शरीर के आधार पर किया गया है तथा शरीर के ढांचे को तीन भागों में दिखाया गया है - शून्य सिर पर (ब्रह्माण्ड), शून्य महल (मस्तक) मथा अष्टदल (गला)। गले में सालिगराम जी का निवास स्थान है। इन्हीं के आज्ञानुसार हर मनुष्य अच्छा या बुरा कर्म करता है।

इस मंदिर में राम-जानकी, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, शंकर-पार्वती आदि देवी देवताओं की मूर्तियां हैं। मेरुदण्ड के नाम से एक खम्भा बना हुआ है जिसमें साढ़े तीन फीट की एक सरपर्णी स्थापित है। यह सरपर्णी मानव के मस्तिष्क में विष को चूसती है और अमृत को टपकाती है। तब लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है। मंदिर की पूरी आकृति पान के पत्ते जैसी बनायी गयी है।

मंदिर के पूर्व की ओर ''संध्यावट'' नाम का एक विशाल रूप में बरगद का पेड़ है जिसके नीचे लोग साधना करते हैं। इस 'संध्यावट' के नीचे साधना करने से मोक्ष प्राप्त होता है। इस वृक्ष के नीचे लोग आज भी साधना करते हैं।

हंसतीर्थ से थोड़ी दूर पूर्व की ओर हंसकूप स्थित है जिसका निर्माण ब्रह्माजी के द्वारा बतलाया गया है। इसका उल्लेख पुराणों में भी किया गया है। इसका पानी पीने, स्नान करने तथा दर्शन करने से मानव के सारे पाप कट जाते हैं तथा हंसगति को प्राप्त करते हैं अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं।

गंगोली शिवाला की स्थापना 16वीं शताब्दी में श्री गंगेश्वर प्रसाद तिवारी ने करवायी थी। यह झूँसी में गंगा के पूर्व रेलवे पुल से उत्तर की ओर करीब 200 मी0 की दूरी पर स्थित है। गंगोली शिवालय का निर्माण पत्थरों से हुआ है। उन पत्थरों पर वैदिक कालीन सभी देवी देवताओं की मूर्तियॉ बड़ी सुन्दरता के साथ उकेरी या चित्रित की गयी हैं। इस मंदिर के मुख्य गर्भ में शिवलिंग की मूर्ति को

स्थापित किया गया है। गर्भ के चारों ओर विष्णु, सूर्यदेवता, हनुमान जी, पार्वती, गणेशजी, बुद्धदेवता आदि देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर पर महाशिवरात्रि पर्व पर बहुत बड़ा मेला लगता है तथा रुद्राभिषेक और रात्रि जागरण होता है। प्रतिवर्ष प्रयाग के माघ मेले में करीब 100-200 की संख्या में विदेशी लोग भी दर्शन करने आते हैं और इसकी प्रशंसा करते हैं।

लाला किशोरी लाल का धर्मशाला नई झूँसी में पुरानी जी.टी. रोड में दक्षिण में स्थित है। इसका निर्माण लाला किशोरी लाल ने 1905-1908 में करवाया था। इसके अन्दर राधा-कृष्ण के भव्य मंदिर का निर्माण हुआ है। लाला किशोरी लाल इस धर्मशाला में प्रतिदिन 1000 से अधिक व्यक्तियों को भोजन कराते थे जिसका गुणगान क्षेत्रीय लोग आज भी करते हैं।

शंखमाधव झूँसी के पूर्व-दक्षिण (छतनाग गाँव में बिडला तथा सदाफल आश्रम के दक्षिण) गंगा के तट पर स्थित है। विभिन्न समुदाय के लोग इसकी स्थापना 1000 वर्ष पूर्व स्थित बतलाते हैं। प्रयाग तीर्थ यात्रा की बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूरी होती है। आठवें दिन शंखमाधव के दर्शन का उल्लेख पुराणों में मिलता है। परम्परानुसार आठ गाँव के लोग शंखमाधव का दर्शन करने प्रतिदिन आते हैं जिससे लोगों को सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है तथा इनकी मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। माघ मास में कुम्भ के पर्व पर सैकड़ों की संख्या में विदेशी भी शंखमाधव का दर्शन करने आते हैं।

नागेश्वर मंदिर या नाग तीर्थ का उल्लेख पुराणों में हुआ है। नाग तीर्थ झूँसी के दक्षिण-पूर्व (गंगा के तट पर छतनाग) गाँव में स्थित है। नागतीर्थ के गर्भ में शिवलिंग, नन्दी आदि देवताओं की मूर्तियाँ हैं। यहाँ के लोग इस मंदिर में बहुत आस्था और विश्वास रखते हैं। इनका विश्वास है कि सूखा पड़ने पर शिवलिंग के

गर्भ को गाँव के निवासी गंगा जल से भरते हैं जब तक कि मूर्ति डूब न जाये। ऐसा करने से बरसात अवश्य होती है चाहे बूंदा-बूंदी ही क्यों न हो। इस मंदिर के सामने झूट बोलने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। दस-बारह गाँवों के लोग प्रतिदिन नाग-तीर्थ का दर्शन करने आते हैं। नागपंचमी और महाशिवरात्रि के दिन यहां बहुत बड़ा मेला लगता है। यहाँ के मेले में विदेशी भी सैकड़ों की संख्या में दर्शन करने आते हैं।

समुद्रकूप प्रयाग के पूर्व गंगा के तट पर हवेलिया का टीला है, टीले के पूर्वी कोने पर स्थित है। लोगों की ऐसी धारणा है कि इसका निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया था। मत्स्य पुराण में भी इसका उल्लेख किया गया है। पद्मपुराण के अनुसार समुद्रकूप के दर्शन एवं जलपान से मनुष्य पाप रहित हो जाता है। अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण पर इसकी परिक्रमा करने से पृथ्वी की परिक्रमा करने का लाभ प्राप्त होता है। वर्तमान समय में स्थानीय निवासियों की भी यही धारणा है कि समुद्रकूप का दर्शन एवं परिक्रमा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पहले यह कूप बंद था। लोगों की यह धारणा थी कि इस कुएं का सम्बंध समुद्र से है तथा इसे खोलने से समुद्र उमड़ आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। लगभग सौ वर्ष पहले एक साधु ने इसे खुलवाया, साफ करवाया और यहाँ एक आश्रम बनवाया।

स्थानीय लोगों का यह विश्वास है कि समुद्रकूप के जल के नीचे लोहे का एक तावां लगाा है, जब प्रलय होगा तब यह तावां खुलेगा जिससे सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी क्योंकि इसका सम्बंध समुद्र से है।

प्राचीन श्री हनुमान गुफा समुद्रकूप के उत्तर टीले पर कोटवाबा दयाराम आश्रम के अन्दर स्थित है। गुफा में हनुमानजी की एक बड़ी पत्थर की मूर्ति है। गुफा में जाने के लिए गंगा तट से भी सीढ़ियां बनी हैं। इसका निर्माण 200 वर्ष पूर्व बाबा दयाराम ने करवाया था।

ऐलेश्वर मंदिर (ऐल तीर्थ) प्रयाग के पूर्व पुरानी झूँसी में गंगा के तट पर शास्त्री पुल (जी.टी.रोड) के दक्षिण लगभग 400 मीटर की दूरी पर स्थित है। लोगों की ऐसी धारणा है कि इस मंदिर का निर्माण ऐल राजा ने करवाया था। ऐलेश्वर मंदिर के गर्भ में शिवलिंग, नन्दी, हनुमान आदि देवी देवताओं की मूर्तियाँ हैं। लोगों की ऐसी धारण है कि जो व्यक्ति सच्चे दिल से इनका दर्शन तथा पूजा-पाठ करता है उसकी सभी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं तथा सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।

तीर्थ सेवन का माहात्म्य तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक उस स्थल के सभी देवताओं का दर्शन न कर लिया जाय। प्रयाग परिक्रमा को दो भागों में रखा गया है, अन्तर्वेद परिक्रमा और बहिर्वेदी परिक्रमा। बहिर्वेदी परिक्रमा दस दिन में पूर्ण होती है। नवें दिन झूँसी में स्थित समुद्रकूप, ऐल-तीर्थ, संध्यावट, हंसकूप का दर्शन तथा आठवें दिन नागतीर्थ और शंखमाधव का दर्शन किये बिना प्रयाग तीर्थ-यात्रा पूर्ण नहीं होती है।

शेख तकी की मजार पुरानी झूँसी में हवेलिया टीला (किला) के दक्षिण गंगा के पूर्वी तट पर स्थित है। विभिन्न समुदायों के अनुसार इस दरगाह की स्थापना 600-700 वर्ष पूर्व हुई थी। मुसलमानों की यह धारणा है कि प्रतिष्टानपुर किले (राजधानी) को शेख तकी बाबा ने ही उलटा था।

मुहर्रम के बाद के महीने, सफर महीने के आखिरी बुद्धवार को यहाँ मेला लगता है तथा बकरीद के चाँद पर 1 से 6 तारीख तक बाबा शेख तकी का उर्स होता है जिसमें लाखों की संख्या में हिन्दू, मुसलमान आते हैं।

शेख तकी बाबा के मजार के ठीक पीछे गंगा के तट पर एक पुराना वृक्ष है जिसे लोग "विलायती इमली" कहते हैं। शेख तकी बाबा ने दातुन को इसी स्थान पर गाड़ दिया था जिससे इस वृक्ष की उत्पत्ति हुई। बाबा ने कहा जब तक दुनिया रहेगी तब तक तू भी रहेगा।

इस वृक्ष की पूजा करने से जब लोगों की मनोकामनाएं पूर्ण हो जाती हैं तो 40 या 22 मीटर कपड़े से इस को लपेटते हैं।

अध्याय पाँच में हमने वर्तमान झूँसी के दो सम्प्रदायों - हिन्दू और मुसलमानों के अनुसार जानकारी दी है। यह स्पष्ट होता है कि राजधानी के पतन का कारण हिन्दुओ के अनुसार एक व्यक्ति विशेष से जोड़ते हैं। इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। दूसरी ओर मुस्लिम सम्प्रदाय वालों का यह मत है कि इस राजधानी को एक सूफी संत फकीर ने उलटा था।

यहां स्पष्ट कर देना उचित होगा कि हिन्दू और मुसलमान दोनो हरबोंग राजा को मान्यता देते हैं। किला पलटने यानि राजधानी टूटने का कारण इस राजा की कार्य असमर्थता थी। अपनी मूर्खता के कारण ही वह अपनी जान खो बैठा। लोगों का ऐसा मानना है कि हरबोंग के बाद (किला पलटने के बाद) ठाकुर वंश का कोई समुदाय यहां नहीं पनप पाया। वे कहीं और चले गये। कुछ समुदायों का यह कहना है कि ये कोटवा चले गये और कुछ समुदायों का यह मानना है कि इस वंश के लोग उत्तर दिशा में स्थित एक क्षेत्र में चले गये जिसे आजकल प्रतापगढ (कालाकांकर) कहते हैं।

शोधकर्ता ने कोटवां जा कर लोगों से जानकारी ली और यह पाया कि यहां के कुछ समुदाय वाले इस बात का दावा करते हैं कि उनका सम्बंध हरबोंग राजा के

वंशजों के साथ था तथा इनके अनुसार इनके वंशज तेरह तालुकों में बटे हैं, जैसे मन्डौर, ढोकरी, कन्हीयार आदि जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

वर्तमान में झूँसी में रहने वाले बहेलिया कहते हैं कि हमारे वंश के लोग हरबोंग के दरबारी थे और राजा के लिए जानवरों का शिकार करके लाते थे। और यह भी बताते हैं कि राजा हरबोंग के राज्य में हम लोग '989' घर थे।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत विषय सांस्कृतिक मानवविज्ञान और प्राचीन इतिहास से जुड़ा हुआ है। मानव विज्ञान के छात्र के रूप में शोधकर्ता ने प्रयाग के धार्मिक स्थलों को समझने का प्रयास किया है। प्रयाग हिन्दू सभ्यता का एक अभिन्न अंग रहा है। इसका महत्व उसी तरह है जिस तरह, गया, बद्रीनाथ, कैलाशनाथ, हरिद्वार आदि का है।

सांस्कृतिक मानव विज्ञानी इस सभ्यता को एक समझने के लिए सैद्धान्ति प्रारूप तैयार किया, यह प्रारूप सबसे पहले रॉबर्ट रेडफील्ड ने तैयार किया था। उनका यह मानना था कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं को सांस्कृतिक परम्परा के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है, रेडफील्ड और उनके अनुयायियों ने एल0पी0 विद्यार्थि, मैरियट, मिल्टन सिंगर आदि ने दो परम्पराओं का दीर्घ परम्परा और लघु परम्परा का उपयोग किया।

झूँसी के निवासियों के अनुसार लघु परम्पराएं निम्न हैं और धार्मिक साहित्यों के आधार पर निम्न लघु परम्परा वाले यह नहीं जानते की दीर्घ परम्परा क्यों आया, कब आया, कैसे हुआ। लेकिन वे उनके साथ सम्बन्धित है। संजाति इतिहास की सहायता से इस कड़ी के सम्बन्ध को समझा जा सकता हैं हमारा मानना हैं कि ऐतिहासिक विषय को इस सांस्कृतिक संबंध से नहीं जाना जा सकता क्योंकि औपचारिक इतिहास अनुपलब्ध है ऐसे स्थिति में मानवशास्त्री क्या करें। चूंकि मानव शास्त्री क्षेत्रीय अध्ययन द्वारा लक्ष्य प्राप्त करते हैं अतः स्थानीय निवासियों से सम्पर्क

कर उनका पूर्व इतिहास जाना जा सकता हैं यह पूर्णरुपेण सही नहीं भी हो सकता हैं उपलब्ध साहित्य इसे खण्डित कर सकता है, लेकिन जहाँ उपलब्ध साहित्य है ही नहीं वहॉ खण्डन की स्थिति नहीं उपलब्ध हो सकता।

अतः हमारा (शोधकर्ता) का यह मानना है कि यदि दीर्घ और लघु परम्परा का समझना है तो संजाति इतिहास सबल सैद्धांतिक दृष्टिकोण का विवेचन करेगा और यहीं हमने करने का प्रयास किया है।

यहाँ पुरातात्विक कार्य चल रहा है। आने वाले समय पुरातात्विक साक्ष्यों से कुछ निष्कर्ष पर पहुंचे। हमें पुरातात्विक निषर्क की प्रतीक्षा करनी होगी।

हमारा यह सुझाव है कि चूंकि शोधकर्ता मानवविज्ञान का एक छात्र है वह पुरातात्विक विश्लेषण भी समझता है, अतः पुरातात्विक साक्ष्यों को संजाति इतिहास के प्राप्त तथ्यों को मिलाकर समझना होगा। ऐसा सांस्कृतिक मानवशास्त्री व पुरातत्व दोनों मिलकर कर सकते है।

अध्ययन का सैद्धान्तिक सार

झूँसी के संजाति इतिहास का वर्णन उस दृष्टिकोण से नहीं किया गया है जिस ढंग से प्राचीन इतिहास, मध्यकालीन इतिहास तथा औपचारिक इतिहास वाले करते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन इतिहास की परिधि में नहीं किया गया है, बल्कि इसे मानवशास्त्रीय ढंग से समझने का प्रयास किया गया है। प्रारम्भिक तथ्यों के अभाव में यही करना उचित है। इसी प्रयास को सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने संजाति इतिहास कहा है।

संजाति इतिहास कई रूपों में परिभाषित किया गया है।

''संजाति इतिहास उन व्यक्तियों का इतिहास है जिसका अध्ययन सामान्यत: मानवविज्ञानशास्त्री करते हैं''। ''इतिहास'' के दो रूपों का अध्ययन करते समय हम मानवविज्ञानशास्त्रियों तथा इतिहासज्ञों की अध्ययन पद्धती में भिन्नता पाते हैं। मानवविज्ञानवेत्ता लिखित अभिलेखों को संजाति इतिहास का आधार मानते हैं (जो कि 'इतिहास' की एक संकीर्ण परिभाषा है) जबकि इतिहासवेत्ता अलिखित अथवा लिखित अभिलेखों को समाज के भूतकाल को जानने के लिए केवल एक आधार के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इतिहासवेत्ताओं के अनुसार या तो ऐसे लिखित अभिलेख पूर्ण नहीं हैं अथवा पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हैं ('इतिहास' की यह एक विस्तृत परिभाषा है)। मानवविज्ञानशास्त्री गैर-मानवविज्ञानशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त साक्ष्य (अर्थात् ऐतिहासिक अभिलेख) के साथ-साथ क्षेत्र सर्वेक्षण को संजाति इतिहास के अध्ययन के लिए आवश्यक अंग मानते हैं जबकि इतिहासवेत्ता क्षेत्र सर्वेक्षण को इतिहासवेत्ताओं के लिए एक गैर-ऐतिहासिक (अर्थात् सामाजिक विज्ञान का लेखा-जोखा) अनुपयुक्त समझते हैं।

संजाति इतिहास को परिभाषित करने के लिये तीन दृष्टियां महत्वपूर्ण हैं - (1) भूत अथवा वर्तमान पर केन्द्रित होना, (2) लिखित अथवा अलिखित 'अभिलेखों' का प्रयोग, (3) तत्कालीन भाषा अथवा लिपि एवं इतिहास की 'लोक दृष्टि' और यह ध्यान देना कि समाज के अध्ययन का आधार पश्चिमी या पूर्वी सभ्यता है अथवा पाश्चात्य विचारधारा है।

संजाति इतिहास की दो प्रमुख रुचियां हैं जिन्हें मानवजाति के वैज्ञानिक विश्लेषण तथा मानव इतिहास के रूप में जाना जा सकता है। मानवजाति का वैज्ञानिक अध्ययन भूतकाल की संस्कृति के अलिखित विवरण का पुनर्निर्माण है, विशेषतय: उस काल के अभिलेख। इतिहासवेत्ताओं ने मध्य-यूरोपियन नगरों, चौदहवीं से सोलहवीं सदी की कला आदि से प्रभावित इस प्रकार के अनेक संजाति इतिहासों को जन्म दिया है। उन का प्रयत्न इन ऐतिहासिक तथ्यों को उन तथ्यों के निकटतम लाना है जो क्षेत्रीय सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त होते हैं। यद्यपि वे तथ्य वे नहीं होते जिन्हें मानवविज्ञानशास्त्री ने स्वय् देखा, सुना अथवा उसे बताया गया हो अपितु वे वही तथ्य होते हैं जिन्हें गैर-मानवविज्ञानशास्त्री द्वारा पढ़ा और लिखा गया हो। वह संजाति इतिहास लेखन के लिए अभिलेख, अपितु सूचनाएं मांगेगा और प्राय: उसे वे सारी बाते लिखित अभिलेख नहीं उपलब्ध करा सकते जिन्हें वह जीवित समाज से प्राप्त कर लेता है। मानवविज्ञानशास्त्री को प्राय: वांछित तथ्य लिखित अभिलेखों से अधिक जीवित समाज से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त ये अभिलेख प्राय: बाहरी लेखकों के द्वारा लिखे जाते हैं जो प्राय: पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होते हैं जबकि जीवित समाज द्वारा दी गयी सूचनाएं पक्षपात तथा त्रुटिविहीन होती हैं। जहां तक सम्भव हो इन पक्षपातों पर निगाह रखनी चाहिए, इनका संज्ञान लेना चाहिए और इन्हें सही करना चाहिए।

संजाति इतिहास के लेखन में उपलब्ध अभिलेख काफी उपयोगी होते हैं, परन्तु उस क्षेत्र के बाहर के लोगों (विदेशियों) द्वारा लिखे जाने के कारण वे प्रायः पक्षपातपूर्ण होते हैं, अतः दूसरे उपलब्ध प्रमाण, यथा, मौखिक रीति-रिवाज, भूगर्भीय सर्वेक्षण आदि का भी प्रयोग करना चाहिए। इतिहासवेत्ताओं से अनुरोध है कि वे "मौखिक इतिहास" को भी महत्व दें।

क्षेत्रीय सर्वेक्षण के कुछ और महत्व भी हैं। कई पुरानी कालोनीज़ के नये देश के रूप में निर्मित होने के फलस्वरूप उस देश की गौरवशाली संस्कृति के वि-ाय में पक्षपातपूर्ण लेखकों द्वारा प्रस्तुत भ्रामक तथ्यों को सही करना आवश्यक होता है। परन्तु ऐसे कई देशों के विषय में सही इतिहास संजाति इतिहास ही हो सकता है, क्योंकि इन के सम्बंध में लिखित अभिलेख बहुत कम उपलब्ध होते हैं और जो होते हैं वे प्रायः विदेशियों द्वारा लिखे होते हैं जिनके पक्षपातपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण होने की सम्भावना अधिक रहती है। अतः ऐसे नये निर्मित देशों के पुनर्निर्माण में मानवशास्त्र वैज्ञानिकों द्वारा रचित इतिहास को सर्वाधिक आधार माना जाना चाहिए।

---0---

अध्ययन स्रोत

पृष्ठ 225 - 231

अध्ययन स्रोत

हेरिस, मार्विन (1968) - *दि राईज ऑफ एन्थ्रोपोलिजिकल थियरी* - थॉमस (न्यूयार्क)

ईभान्स-प्रीचार्ड, ई.ई. (1951) - *सोशल एन्थ्रोपोलाजी* - ऑक्सफोर्ड।

श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य (2000) - *सांस्कृतिक मानवविज्ञान* - पृष्ठ 145, अध्याय 14 - के.के. पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

(महाभारत के वनपर्व - 87/18-19) - हरिमोहनदास टण्डन - प्रयागराज (1996)

(ब्रह्मपुराण) - हरिमोहनदास टण्डन - प्रयागराज (1996)

(ऋग्वेद खिल 10/24) तीर्थचिन्तामणि

ऋग्वेद (खिल 9/113/12)''तीर्थेन्दु शेखर'' - नागेश भट्ट, पृष्ठ 26

(ब्रह्मपुराण) - भीमासेक नारायण भट्ट ''त्रिस्थली सेतु''।

''सितासिता तु य धारा सस्वत्याविदर्भिता''
पद्मपुराण, VI.126.35 = TC, 20=TS, 7=TP, 331, NP,II 63.236-249.

हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 17

''पद्मपुराण'' हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 17

हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 18

''ब्रह्मपुराण'' हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज

''भविष्यपुराण'' हरिमोहन टण्डन, प्रयागराज, पृष्ठ 20

''मत्स्यपुराण'' और ''स्मन्दपुराण'', हरिमोहन टण्डन

इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहरथों दिव्यः स सुपर्णोगरूत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति अग्निर्यमोंभातरिश्वानभाहु।।
ऋग्वेद (1/164/46)

सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानितानि वै।
गंगाबिन्दुभिषेकस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम्।। - बृहन्नारदीय पुराण (6/11)

नाम्यङ्गितः प्रविशेतु गंगायां न मलार्दितः।
न जल्पन्न मृषा वीक्षन्नवदन्नणृतं वचः।। - स्कन्दपुराण - गंगावाक्यावली, पृष्ठ 311, प्रायश्चितत्व, पृष्ठ 98.
"स्कन्दपुराण"

सितासिते सरिते यत्र सङ्गते यत्राप्लुतासों दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं वि'सृजन्ति धारास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते।।
(ऋग्वेद, खिल सूत्र 22/1)

"ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण" देवीप्रसाद दुबे, कुम्भ 1989, पृष्ठ 38

मार्कण्डेय पुराण, 77/5-7

"यमुनायमाधि श्रत मुंद राघो गव्य मृजे नि राघे अश्व्यं मृजे"।
ऋकसंहिता, 5/52/17

ऋग्वेद (10/75/5)

ऐतरेय ब्राह्मण (8/23)

शतपथ ब्राह्मण (13/5/11)

पंचविश ब्राह्मण (9/4/11)

शांख्यायन श्रौतसूत्र (13/29/25)

कात्यायन श्रौतसूत्र (24/6/10)

शांख्यायन श्रौतसूत्र (10/19/9)

आश्वलायन श्रौतसूत्र (2/4/10)

गंगा च यमुनै चैत्र उभे तुल्यफलेस्मृते।
केवलं ज्येष्ठभावेन गंगा सर्वत्र पूज्यते।।
मत्स्यपुराण, 108/32

रामायण, 2/55/20-21

पद्मपुराण (उत्तर खण्ड 195/18-12)
"जल से सत्य की उत्पत्ति हुई। सत्य से ब्रह्म का उद्भव हुआ। ब्रह्म से प्रजापति का दय हुआ और प्रजापति से देवताओं की सृष्टि हुई।" - वृहदाण्याकोनिष्द् (5/5/1)
महाकवि कालिदास - रघुवंश महाकाव्य - (13/54-58)

महाकवि मुरारि - अनर्घराघव (7/125)

महाभारत, 3185/75, 85

रामायण, 2/54/2, 2/55/4

कूर्म पुराण (1/37/1-2)

नारदीय पुराण (2/63/5)

"सरस्वती विनशने दीक्षन्ते", ताण्ड्य ब्राह्मण (24/17/1)

ततो विनशंनंगच्छेन्नियतो नियताशनः ।
भच्छत्यन्तहिंता यत्र मेरुपृष्ठे सरस्वती।।
महाभारत (3/82/111)

"हे सरस्वती! तू पूर्व पर्वत से निकल कर पश्चिम सागर में गिरती है - ऐकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिम्अ आ समुद्रात्"। ऋग्वेद (7/95/2)

सितासिता तु या धारा सरस्वती सरस्वत्या विदिर्भता।
तं मार्ग ब्रह्मलोकस्य सृष्टिकर्ता ससर्ज वे।।
नारदीय पुराण (2/62/23)

पद्यम पुराण (6/23/34)

"स्कन्द पुराण" देवी प्रसाद दुबे, कुम्भ 1989, पृष्ठ 12-13।

"मत्स्यपुराण" (104/5)

सालिगराम श्रीवास्तव - प्रयाग प्रदीप (1937) खण्ड दो, अध्याय 8, पृष्ठ 271

(पद्मपुराण) - भास्कर नाथ तिवारी - प्रयाग दर्शन, अध्याय 8, पृष्ठ 63

(मत्स्य पुराण) शोकहा श्याम नारायण, शेषनारायण शर्मा - प्रयाग माहात्म्यशताध्यायी।

"पूर्वपार्श्वे गंगायारिका धुलाकेषु भारत।
कूप चैव समुद्रं प्रतिष्ठान चं विश्रुतम।।"
(पद्मपुराण) भास्कर नाथ त्रिवारी (1976) अध्याय 8, पृष्ठ 63.

एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता।
तीर्थयात्रा मापुण्या सर्वपापप्रमोचनी।।
महाभारत (3185/114)

महाकवि मुरारि - अनर्घराघव (7/127-128)

मत्स्य पुराण (105/26)

पद्म पुराण (6/24/3)

किंबहूत्तकेन विपेन्द्रमहोदयम भीप्सुना।
सेव्यं सितासितं तीर्थ प्रकृष्ट जगतीतले।।
"स्कन्द पुराण"

महाभारत (3/85/84)

मत्स्य पुराण (105/26)

कूर्म पुराण (2/34/14)

अग्नि पुराण (111/9)

पद्म पुराण (3/43/24)

मत्स्य पुराण (109/1-3)

पद्म पुराण (3/47/1-3)

नारदीय पुराण (2/63/49 ब0ड0अ)

कूर्म पुराण (2/37/6)

अन्येच बहवस्तीर्थाः सर्वधपहराः शुभाः।
न शक्याः कथितुं राजन बहुचतैशषि।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्यः तु कीर्तनम्।।
मत्स्यपुराण (103/6), ऋषिमार्कण्डेय।

देवी प्रसाद दुबे - "नेशनल ज्यौग्रैफिकल जर्नल आफ इन्डिया" (31(4) 1995, 319-340), "दी सेक्रेड ज्योग्राफी ऑफ प्रयाग"

कल्हण राजतरंगिणी (4/314-18)

राजतरंगिणी, सर्ग-7, पंक्ति 20-20

ब्रह्म पुराण (59/11-12

मत्स्य पुराण (106/8-9)

पद्म पुराण (3/43/9)

कूर्म पुराण (1135/6-7)

नारदीय पुराण (2/63/125-126)

त्रिस्थली सेतु, पृष्ठ 50

यत्र विष्णुच्च अदृश्च यत्रेन्द्रश्च तथा पनुः।
वेऽपि सर्वेवसन्तीह प्रयागे तीर्थसत में।।
तत्र दानं प्रशंसन्ति नियमांश्च तथैव च।।
पद्य पुराण (6/25/22)

कल्हन-राजतरंगिणी (4/414-18)

विल्हन, देवचरित (18/90-91)

ए.आर.एन. श्रीवास्तव - सामाजिक मानवविज्ञान (1992) अध्याय 4, पृष्ठ 38.

श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य, 'सांस्कृतिक मानवविज्ञान (2002) अध्याय 12, पृष्ठ 134.

ए.आर.एन.श्रीवास्तव का लेख (संजाति इतिहास)

सांख्यिकी पत्रिका, विकास भवन इलाहाबाद, उ0प्र0, 1991.

इलाहाबाद गजेटियर, पृष्ठ 1.

इलाहाबाद गजेटियर.

वीन्द्रनाथ मुखर्जी, सामाजिक शोध व सांख्यिकी (1997) अध्याय 11, पृ0 59.

वी.एम. पाल्मर, "फील्ड स्टडीज़ इन सोशियोलाजी", शिकागो (1928), पृष्ठ 57.

लुण्डबर्ग, "सोशल रिसर्च, लांगमास, ग्रीन एण्ड को0, न्यूयार्क" (1951), पृष्ठ 122.

पी.बी. यंग, "साइंटिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च" (1960), पृ0 127.

ए.आर.एन. श्रीवास्तव, सामाजिक मानवविज्ञान (1994), अध्याय 3, पृष्ठ 33-35.

ए.आर.एन. श्रीवास्तव, सामाजिक मानवविज्ञान (1994), अध्याय 3, पृष्ठ 37, 38.

आर.एन. मुखर्जी, सामाजिक शोध व सांख्यिकी (1997) अध्याय 11, पृष्ठ 163.

मौलनॉवस्की, ''आरगुनेंट्स ऑफ वैस्टर्न पैसिफिक'' (1922).

विलियम स्अुर्टवेन्ट, संजातिविज्ञान (लेख) 1964.

मारवीन हैरिस, ''द नेचर ऑफ कल्चर थिंग्स'' (1964).

बेन्जामीन कोलबी, ''एथनोग्राफिक सीमैन्टीक्स'' (1966).

हैरोल्ड कौन्क्लीन, ''हनुन कलर कटेगरीज़'' (1955).

लार्ड गुडनाऊ, ''किनसिप टर्मस् कम्पोनेन्शीयल एनालिसिस'' (1965).

जी. बेट्सन, Naveen (1936).

लेराल्ड बेरीमैन, ''द हिन्दू ऑफ हिमालियन'' (1968).

ईभान्स प्रीचार्ड ''द नायर'' (1940).

एल.पी. विद्यार्थी, ''द मालेर'' (1964).

एम.एन. श्रीनिवास, ''द कुर्ग ऑफ साउथ इन्डिया'' (1965).

कोनिथ पाईक (1954).

श्रीवास्तव, ए.आर.एन. एवं अन्य, ''सांस्कृतिक मानवविज्ञान:सिद्धान्त एवं उपलब्धियां'' (1996), अध्याय 12, पृष्ठ 133, 134.

ए.आर.एन. श्रीवास्तव, ''संजाति इतिहास'' (लेख) (2002).

ए.आर.एन. श्रीवास्तव, भारत में मानवविज्ञान (1995), अध्याय-9, भाग-3, पृष्ठ 206-208.

रॉबर्ट रेडफील्ड, पीज़ेन्ट सोसाइटी एण्ड कल्चर (1956).

एल.पी. विद्यार्थी, ''द सेक्रेड कॉम्लैक्स ऑव हिन्दू गया'' (1961).

कोहन एवं मैरिअट (1959).

वैद्यनाथ सरस्वती -

(i) ''द होली सर्किट आफ नीमसार'' (1965).

(ii) ''द टमपुल आर्गनाइज़ेशन इन गोवा'' (1962).

(iii) ''काशी द मिथ एण्ड रियेलिटी ऑव ए क्लासिकल कल्चरल ट्रेडीशन'' (1975).

माखन झा, ''द सेक्रेड काम्प्लैक्स ऑव रतनपुर'' (1978).

महापात्र, ''लिंगराज टैम्पलःइट्स स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज''.

मोरब और गोस्वामी, ''चौमुण्डेश्वरी टैम्पुल'' (1995).

चक्रवर्ती, ''तारकेश्वरी टैम्पुल'' (1974).

----oOo---

परिशिष्ट

<u>परिशिष्ट-1</u>

<u>सारिणी-1</u>

साक्षात्कार अनुसूची

<u>भाग - एक</u> - <u>उत्तरदाताओं का संक्षिप्त परिचय</u>

1. उत्तरदाता का नाम . . . .
2. उत्तरदाता की आयु . . . .
3. शिक्षा का स्तर . . . .
4. निवास स्थान .. . .
5. व्यवसाय का नाम . . . .
6. व्यवसाय का आकार . . . .

<u>भाग - दो</u>- <u>उत्तादाताओं के विचार</u>

1. क्या पुरूरवा की राजधानी पूर्व प्रतिष्ठानपुर में थी? हां/नहीं
2. क्या पुरूरवा के वंश का ही राजा हरबोंग था? हां / नहीं
3. क्या पूर्व प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) में राजा हरबोंग की राजधानी थी? हाँ / नहीं
4. क्या राजा हरबोंग के समय इस नगर का नाम 'अंधेर नगरी' था? हाँ / नही
5. क्या झूँसी की राजधानी राजा हरबोंग के समय में ही उलटी थी? हाँ / नही
6. हरबोंग राजा के पतन के बाद उनके वंशज कहां गये?
7. क्या राजधानी को गुरू-चेला या सूफी संत फकीर ने उलटा था। गुरू-चेला/ सूफी संत फकीर
8. पूर्व प्रतिष्ठानपुर का नाम झूँसी कैसे पड़ा?

9. झूँसी क्षेत्र में कितने धार्मिक स्थल हैं?
10. झूँसी के तीर्थ-स्थलों पर क्या विदेशी भी आते हैं?
11. गंगोली शिवालय की स्थापना कब और किसके द्वारा हुई?
12. हंस तीर्थ की स्थापना कब और किसके द्वारा हुई?
13. हंस कूप का निर्माण कब और किसके द्वारा किया गया?
14. समुद्रकूप की स्थापना कब और किसके द्वारा की गयी?
15. ऐल तीर्थ की स्थापना कब और किसके द्वारा की गयी?
16. नाग तीर्थ की स्थापना कब और किसके द्वारा की गयी?
17. शंखमाधव की स्थापना कब और किसके द्वारा की गयी?
18. लाला किशोरी लाल की धर्मशाला की स्थापना कब हुई?
19. शेख तकी की मजार की स्थापना कब और कहां हुई?
20. विलायती इमली के विषय में आप क्या जानते हैं?
21. क्या विलायती इमली की उत्पत्ति बाबा शेख तकी की दातून से हुई?
22. आपके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन का रूप क्या है?

---0---

परिशिष्ट-2

सारणी - 2

झूँसी क्षेत्र की प्रमुख जातियां

संख्या	जति(समुदाय)	परिवारों की संख्या	कुल जनसंख्या
1	निषाद	250	3000
2	पण्डा	100	1500
3	चमार (हरिजन)	25	300
4	धोबी	08	70
5	पासी	50	350
6	मुसलमान	300	4000
7	ब्राह्मण	20	300
8	यादव	200	2500
9	तेली (गुप्ता)	10	70
10	प्रजापति	7	50
11	ठाकुर	नगण्य	न्गण्य
12	स्वर्णकार	3	25

13	लोहार	3	20
14	केसरवानी	50	500
15	बहेलिया	10	100
16	केवट (बिन्द)	100	600
17	श्रीवास्तव	2	20
18	अग्रवाल	7	50
19	कसाई (मुस्लिम)	8	55
20	नाई (हिन्दू)	2	15

परिशिष्ट-3

सारणी-3

नगर का नाम	भौगोलिक क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार			अनुसूचित जाति	साक्षरता दर प्रतिशत में 1991
		कुल	पुरुष	स्त्री		
झूँसी टाउन एरिया	1.16	7943	4745	3198	688	51.78

स्रोत- विकास भवन, इलाहाबाद (सांख्यिकी विभाग)

सारणी-4

पुरानी झूँसी के गांव	परिवारों की संख्या	पु0	स्त्री	कुल	एस. सी. पु0	एस. सी. स्त्री	एस. सी. कुल	एस. टी. पु0	एस. टी. स्त्री	एस. टी. कुल
कोहना	834	2766	2349	3115	310	256	566	0	0	0
हवेलिया	202	690	599	1289	112	105	217	0	0	0
नैका	386	1226	1051	2277	571	493	1064	0	0	0
छतनाग	249	982	850	1832	12	13	25	0	0	0

स्रोत- विकास भवन, इलाहाबाद (सांख्यिकी विभाग)

मानचित्र एवं छायाचित्र

AP 73 GENL RID 680 OFFSET